तृतीय सोपान

संज्ञा विचार

स्वरान्त संज्ञाएँ

पूज्य-गुरु

महामहोपाध्याय

श्री डा० गङ्गानाथ झा,

एम्० ए०, डी० लिट्०, एलेल्० डी० ।

वाइस चैंसलर

प्रयाग-विश्वविद्यालय

के

कर कमलों में

उनके प्रिय शिष्य

ग्रन्थकार

द्वारा

भक्तिपूर्वक समर्पित ।

तृतीय सोपान

संज्ञा विचार

स्वरान्त संज्ञाएँ

PREFACE

Several Grammars of Sanskrit written in English have been in use in Northern India at our Schools and Colleges With the adoption of the vernaculars, however, as the media of instruction and examination, there was felt a necessity of a standard Sanskrit Grammar in Hindi The present work is primarily intended to supply this need

It is impossible to say anything original in Sanskrit grammar But there may be some originality with respect to the treatment of the subject matter An effort has been made in this work to compare the Sanskrit usage with that of Hindi and thus to impress the student with the points of difference This *comparative* method, I hope, will eliminate Hindiism from Sanskrit composition which a teacher so often notices in students' exercises An endeavour has also been made to explain the technical terms of Sanskrit Grammar The following are some of the other points which have been kept in view

The *sū'ras* have been quoted in the footnotes throughout in order to enable the students to have the whole

चतुर्थ सोपान

सर्वनाम विचार

idea in a concise form The names of suffixes, etc, as used by Panini, have been retained in their original form e g, *lyap* has been written as such and not as *ya* This was felt necessary since the student feels confounded to find and to use the technical terms in higher classes when his training in the lower classes was different

Copious examples have been adduced to elucidate the rules particularly in *sandhi*, declension and conjugation The numerals have been treated in great detail since it is noticed that the students even in the University classes commit mistakes in them The treatment of the use of cases is full and the *sūtras* in this case have been given as head lines rather than as footnotes since they are the only sure guide for the student to understand the complicated system of case use The *samāsa*, *taddhita* and *kṛdanta* have been explained almost exhaustively Considerable attention has been paid to treat the verb in all its aspects and it has, therefore, taken up about one-third of the book Small but informing chapters on gender and indeclinables have been added and will, it is hoped, be found useful

Of the three appendices the first gives a very brief account of the Sanskrit grammarians, the second treats

पञ्चम सोपान

विशेषण विचार

of prosody and the third gives the transliteration alphabet

No effort has thus been spared to make the book as useful as possible The fulness of the treatment together with the choice of the type and spacings has increased the bulk of the book which I hope will not be grudged

The subject matter has been put into two grades—one for the lower classes being in bolder type than the other which is for the higher classes

In preparing this book I have freely consulted the existing grammars of Sanskrit, particularly Kale's Higher Sanskrit Grammar My best thanks are, therefore, due to their writers My pupil, Pt Ram Krishna Shukla, M A, Head Pandit, C A V High School, has kindly collaborated with me all through in the preparation of this book and has also looked through the proofs But for his enthusiasm, industry and disinterested work it would not have been possible to bring out the work this year

I tender my most respectful thanks to my revered teacher, Mahámahopádhyaya Dr Ganganatha Jha for his kind permission to dedicate the book to him

It is trusted that the work will prove useful Any suggestions for its improvement will be thankfully accepted

BABURAM SAKSENA

दशम सोपान

क्रिया—विचार (उत्तरार्ध)

एकादश सोपान

कृदन्त—विचार

" यद्यपि बहु नाधीषे पठ पुत्र तथापि व्याकरणम् ।
स्वजनः श्वजनो माभूत्सकलः शकलः सकृच्छकृत् ॥"

स्त्रीप्रत्यय

त्रयोदश सोपान

अव्यय—विचार

परिशेष

संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

प्रथम सोपान

वर्ण विचार

१–'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—संस्कार की हुई, परिमार्जित, शुद्ध वस्तु। सम्प्रति 'संस्कृत' शब्द से आर्यों की साहित्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य पण्डितों की बोली थी और इस के ही द्वारा चिरकाल तक आर्य-विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था। जन साधारण की भाषा का नाम 'प्राकृत' था। संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषत आज भी है, क्योंकि आर्य सभ्यता के द्योतक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं और इसी के ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

२–'व्याकरण' का अर्थ है—किसी वस्तु के टुकड़े टुकड़े करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना। यह शब्द 'भाषा' के सम्बन्ध में ही अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा वाक्यों का समूह है। वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे। बड़े वाक्य

हिन्दी भाषा को लें । जब हम सभाल २ कर बोलते हैं तब तो कहते हैं—चोर् ले गया, मार् डाला, पहुँच् जाऊँगा । किन्तु इन्हीं वाक्यों को यदि बहुत जल्दी में बोलें तो उच्चारण इस प्रकार होगा—चोल् ले गया, माड् डाला, पहुँज् जाऊगा । इसी प्रकार जितनी बोल चाल की भाषाएँ हैं उनमें परिवर्त्तन होता है । साधारण वक्ता इस परिवर्त्तन को नहीं जान पाता, किन्तु यदि हम ध्यान पूर्वक अपनी अथवा दूसरे की बोली को सुनें तो हमें इस कथन के सत्य का निश्चय हो जायगा । संस्कृत भाषा में इस प्रकार के परिवर्त्तन को "सन्धि" कहते हैं । सन्धि का साधारण अर्थ है "मेल" । दो शब्दों के निकट आने से जो मेल उत्पन्न होता है उसे इसीलिए सन्धि कहते हैं । सन्धि के लिए दोनों शब्द एक दूसरे के पास २ सटे हुए होने चाहिए, दूरवर्त्ती शब्दों में सन्धि नहीं हो सकती । इस लिए संस्कृत भाषा में सन्धि का नियम यह है कि जिन शब्दों में निकटता की घनिष्ठता हो उनमें सन्धि अवश्य हो, जहाँ निकटता घनिष्ठ न हो वहाँ सन्धि करना न करना बोलनेवाले की इच्छा पर निर्भर है । नियम है —

एकपद[1] के भिन्न भिन्न अवयवों में, धातु और उपसर्ग में और समास में सन्धि अवश्य होनी चाहिए, वाक्य के अलग २ शब्दों के

---

१ संहितैकपदे नित्या नित्या धातूपसर्गयोः ।
नित्या समासे वाक्ये तु सा विवक्षामपेक्षते ॥

बीच मे सन्धि करना न करना बोलनेवाले की इच्छा पर है। उदाहरणार्थ—

एक पद—पो+अक = पावक ।

उपसर्ग और धातु—नि+अपठत् =न्यपठत्, उत् +अलोकयत् =उद्लोकयत् ।

समास—कृष्ण+आश्रम् =कृष्णाश्रम्, श्री+ईश =श्रीश ।

वाक्य—राम गच्छति वनम्, अथवा रामो गच्छति वनम् ।

६ सन्धि के कारण नीचे लिखे परिवर्तन उपस्थित हो सकते हैं —

(१) लोप—प्रथम शब्द के अन्तिम अक्षर का (यथा रामः आयाति=राम आयाति), अथवा द्वितीय शब्द के प्रथम अक्षर का (यथा दोष +अस्ति=दोषोऽस्ति) ।

(२) दोनो के स्थान मे कोई नया वर्ण (यथा, रमा+ईश =

वाक्य में जो विवक्षा दी गई है, इसको भी अच्छी शैली के लेखक उचित नहीं समझते हैं और विवक्षा रहते हुए भी सन्धि करते ही हैं । पद्य में तो यदि सन्धि का अवकाश हो और न की जावे तो उसे विसन्धि दोष कहते हैं—

न संहिता विवक्षामीत्यसन्धानं पदेषु यत्तद्विसन्धीति निर्दिष्टम् (काव्यादर्श)

संस्कृत व्याकरण प्रवेशिका

प्रथम सोपान

वर्ण विचार

१—'संस्कृत' शब्द का अर्थ है—संस्कार की हुई, परिमार्जित, शुद्ध वस्तु। सम्प्रति 'संस्कृत' शब्द से आर्यों की साहित्यिक भाषा का बोध होता है। यह भाषा प्राचीन काल में आर्य पण्डितों की बोली थी और इस के ही द्वारा चिरकाल तक आर्य-विद्वानों का परस्पर व्यवहार होता था। जन साधारण की भाषा का नाम 'प्राकृत' था। संस्कृत भाषा का महत्त्व विशेषतः आज भी है, क्योंकि आर्य सभ्यता के द्योतक अधिकांश ग्रन्थ इसी में हैं और इसी के ज्ञान से उन तक पहुँच हो सकती है।

२—'व्याकरण' का अर्थ है—किसी वस्तु के टुकड़े टुकड़े करके उसका ठीक स्वरूप दिखाना। यह शब्द 'भाषा' के सम्बन्ध में ही अधिक प्रयोग में आता है। यदि देखा जाय तो प्रत्येक भाषा वाक्यों का समूह है। वाक्य कोई बड़े होते हैं, कोई छोटे। व"

रमेश =), अथवा दो में से किसी एक के स्थान में नया वर्ण (यथा, नि+अवसत्=न्यवसत्, कस्मिन्+चित्=कस्मिंश्चित्)।

(३) दो में से एक का द्वित्व (यथा, एकस्मिन्+अवसरे= एकस्मिन्नवसरे)

ऊपर बताया जा चुका है कि कोई भी अक्षर विसर्ग से आरम्भ नहीं हो सकता। शब्दों की निकटता इस लिए नीचे लिखे प्रकार की होगी —

(१) जहाँ प्रथम शब्द का अन्तिम वर्ण तथा द्वितीय का प्रथम वर्ण दोनों स्वर हों।

(२) जहाँ दो में से एक स्वर हो एक व्यञ्जन।

(३) जहाँ दोनों व्यञ्जन हों।

(४) जहाँ प्रथम का अन्तिम विसर्ग हो और द्वितीय का प्रथम स्वर अथवा व्यञ्जन।

इनमें से (१) को स्वर-सन्धि, (२) और (३) को व्यञ्जन सन्धि और (४) को विसर्ग-सन्धि कहते हैं।

बहुधा छोटे २ वाक्यों के सुसम्बद्ध समूह होते हैं। वस्तुत वाक्य ही भाषा का आधार है। वाक्य शब्दों का समूह होता है। प्रत्येक शब्द मे कई वर्ण होते हैं जिनको अक्षर भी कहते हैं। 'अक्षर' शब्द का अर्थ है अविनाशी—जिसका कभी नाश न हो। वर्ण को यह नाम इसलिए दिया जाता है, क्योकि प्रत्येक नाद (sound) अविनश्वर है। यदि किसी शब्द का उच्चारण करें तो उसके अक्षर उच्चारण काल मे 'नाद' कहलावेंगे और उस दशा में शब्द नादों का समूह होगा। सृष्टि मे इन नादों का भण्डार अनन्त है। प्रत्येक भाषा एक परिमित सख्या मे ही नादों का प्रयोग करती है। उदाहरणार्थ, चीनी भाषा मे बहुत से ऐसे नाद हैं जो सस्कृत भाषा मे नहीं, सस्कृत मे कई ऐसे हैं जो फारसी, अँगरेजी आदि में नहीं।

२—सस्कृत भाषा में—जिन अक्षरो का उपयोग होता है वे ये हैं —

अ[1]	इ	उ	ऋ	ऌ	—ह्रस्व (सादे)	स्वर
ए	ऐ	ओ	औ		—मिश्रविकृत दीर्घ Compound	
आ	ई	ऊ	ॠ		—दीर्घ (सादे)	
क	ख	ग	घ	ङ	—कवर्ग (कु)	
च	छ	ज	झ	ञ	—चवर्ग (चु)	
ट	ठ	ड	ढ	ण	—टवर्ग (टु)	

१ पाणिनि ने इन्हीं अक्षरों को इस क्रम में बाँधा है —

स्वर-सन्धि

७—यदि साधारण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर के अनन्तर सवर्ण ह्रस्व अथवा दीर्घ स्वर आवे तो दोनो के स्थान मे सवर्ण दीर्घ स्वर होता है, यथा —[1]

दैत्य+अरि=दैत्यारि ।

यहाँ पर "य" के "अकार" के पश्चात् "अरि" का ह्रस्व "अकार" आता है, इस लिए उपर्युक्त नियम के अनुसार दोनो ह्रस्व अकारो के स्थान मे दीर्घ "आ" हो गया ।

तव+आकार =तवाकार ।

यहाँ पर "व" मे जो ह्रस्व "अकार" है उसके उपरान्त "आकार" का दीर्घ "आ" आता है, इस लिए उपर्युक्त नियम के अनुसार दोनो के (ह्रस्व "अ" तथा दीर्घ "आ" के) स्थान मे दीर्घ "आ" हो गया ।

यदा+अभवत्=यदाभवत् ।

यहाँ पर "दा" मे जो दीर्घ "आकार" है उसके बाद "अभवत्" का ह्रस्व "अ" आता है, इस लिए इसी नियम के अनुसार दोनो के (दीर्घ "आ" तथा ह्रस्व "अ" के) स्थान मे दीर्घ "आ" हो गया ।

---

1 अक सवर्णे दीर्घः । ६ । १ । १०१ ।

त	थ	द	ध	न	—तवर्ग (तु)
प	फ	ब	भ	म	—पवर्ग (पु)
य	र	ल	व		—अन्तःस्थ
श	ष	स	ह		—ऊष्म वर्ण
				ं	—अनुस्वार
				ँ	—अनुनासिक
				ः	—विसर्ग

अइउण्[1] ऋऌक्[2], एओङ्[3], ऐऔच्[4],

हयवरट्[5], लण्[6],

ञमङणनम्[7],

झभञ्[8], घढधष्[9] जबगडदश्[10], खफछठथचटतव्[11], कपय्[12],

शषसर्[13], हल्[14]।

यही चौदह सूत्र माहेश्वर कहलाते हैं, यत पाणिनि को महेश्वर की कृपा से प्राप्त हुए थे। ऐसा सम्प्रदाय है। इनको प्रत्याहार सूत्र भी कहते हैं, क्योंकि इनके द्वारा सरलता से और सूक्ष्म रीति से सब अक्षरों का बोध हो जाता है। ऊपर के जो अक्षर हल् हैं वे इत् कहलाते हैं, जैसे ण्, क् आदि। इनके द्वारा प्रत्याहार बनते हैं। कोई वर्ण लेकर उसके साथ यदि इत् जोड़ दें तो उस अक्षर के और उस इत् के बीच के सभी वर्णों का (बीच में पड़ने वाले इतों को छोड़कर) बोध होता है, यथा अक् से अ इ उ ऋ ऌ का, शल् से श ष स ह का।

विद्या+आतुर =विद्यातुर ।

यहाँ पर "द्या" में जो "आकार" है उसके बाद "आतुर" का दीर्घ "आ" आता है, इस लिए इसी नियम के अनुसार दोनों दीर्घ " आ " के स्थान में दीर्घ "आ" हो गया । इसी प्रकार ।

इति	+	इव	=	इतीव ।
अपि	+	ईक्षते	=	अपीक्षते ।
श्री	+	ईश	=	श्रीश ।
राज्ञी	+	इह	=	राज्ञीह ।
विष्णु	+	उदय	=	विष्णूदय ।
साधु	+	ऊक्तं	=	साधूक्तं ।
चमू	+	ऊर्ज	=	चमूर्ज ।
वधू	+	उपरि	=	वधूपरि ।
अभिमन्यु	+	उपाख्यानम्	=	अभिमन्यूपाख्यानम् ।
शिशु	+	उद्रेक	=	शिशूद्रेक ।
कर्तृ	+	ऋद्धि	=	कर्तॄद्धि ।
ऋ	+	ऋकार	=	ॠकार ।
होतृ	+	ऌकार	=	होतॄकार ।

इन उदाहरणों को भी समझ लेना चाहिए ।

यदि ऋ या ॠ के बाद ह्रस्व ऋ या ऌ आवे तो दोनों के स्थान में ह्रस्व ऋ या ऌ भी स्वेच्छा से कर सकते हैं, जैसे—

'स्वर' का अर्थ है, ऐसा वर्ण जिसका उच्चारण अपने आप हो सके, उसको दूसरे वर्ण से मिलने की अपेक्षा न हो। ऐसे वर्ण जो बिना किसी दूसरे वर्ण (अर्थात् स्वर) से मिले हुए उच्चारण नहीं किये जा सकते 'व्यञ्जन' कहलाते हैं। ऊपर क से लेकर ह तक के सारे वर्ण व्यञ्जन हैं। क मे अ मिला हुआ है, इसका शुद्ध रूप केवल क् होगा। स्वरो का दूसरा नाम "अच्" भी है, यत पाणिनि के क्रमानुसार स्वरवाची प्रत्याहार सूत्र सब इसके अन्तर्गत आजाते हैं (प्रथम सूत्र का प्रथम अक्षर अ और चतुर्थ सूत्र का अन्तिम अक्षर च्)। इसी प्रकार व्यञ्जन का दूसरा नाम "हल्" भी है, क्योंकि व्यञ्जनवाची प्रत्याहार सूत्र सब (५ से १४ तक) इसके अन्तर्गत आजाते हैं। इसी कारण व्यञ्जन सूचक चिह्न (्) को भी हल् कहते हैं।

स्वर तीन प्रकार के होते हैं—ह्रस्व, दीर्घ और मिश्रविकृत दीर्घ। मिश्रविकृत दीर्घ किन्हीं दो भिन्न स्वरो के मिश्रण विशेष से बनता है, जैसे अ+इ=ए। स्वर के उच्चारण मे यदि एक मात्रा समय लगे तो वह ह्रस्व, जैसे अ, और यदि दो मात्रा समय लगे तो दीर्घ कहलाता है, जैसे आ। मिश्रविकृत स्वर दीर्घ होते हैं।

यदि तीन मात्रा समय लगे तो प्लुत कहलाता है, इस प्रकार के स्वर का प्रयोग प्राय पुकारने में होता है, यथा राम ३।

सभी स्वर फिर दो प्रकार के होते हैं। एक अनुनासिक जिनमे नासिका से भी उच्चारण में कुछ सहायता ली जाती है, यथा अँ, आँ,

होतृ+ऋकारः = होतृकार या होतृऋकार ।

इस प्रकार सब मिला कर तीन रूप हुए —

(१) होतॄकार (२) होतृकार (३) होतृऋकार ।

होतृ + ऌकार = होत्ऌकार अथवा होतृलकार ।

८—यदि[१] अ या आ के बाद (१) ह्रस्व इ या दीर्घ ई आवे तो दोनो के स्थान मे "ए" हो जाता है, (२) यदि ह्रस्व उ या दीर्घ ऊ आवे तो दोनो के स्थान मे "ओ" हो जाता है, (३) यदि ह्रस्व ऋ या दीर्घ ॠ आवे तो दोनो के स्थान मे "अर्" हो जाता है, (४) यदि ऌ आवे तो दोनो के स्थान में "अल्" हो जाता है। इस सन्धि का नाम गुण है। जैसे—

उप + इन्द्र = उपेन्द्र ।

यहाँ पर उप के "प" में जो "अ" है उसके बाद "इन्द्र" की "इ" आती है, इसलिए इस नियम के अनुसार दोनो के (प में के "अ", और "इन्द्र" में की "इ" के) स्थान में "ए" हो गया। इसी प्रकार।

गण	+	ईश	=	गणेश ।
देव	+	इन्द्र	=	देवेन्द्र ।
नर	+	ईश	=	नरेश ।

---

१ अदेङ् गुणः । आद्गुणः । १ । १ । २ ॥ ६ । १ । ८७ ।

, ऍ, ऐं आदि और दूसरे सार्द अर्थात् अननुनासिक यथा अ आ, ए, ऐ आदि।

व्यजनों के भी कई भेद हैं—क से लेकर म तक के "स्पर्श" कहलाते हैं। इनमें कवर्ग आदि पाँच वर्ग हैं। य र ल व 'अंत स्थ" हैं, अर्थात् स्वर और व्यञ्जन के बीच के हैं। श ष स ह "ऊष्म" हैं, अर्थात् इनका उच्चारण करने के लिए भीतर से जरा अधिक जोर से श्वास लानी पड़ती है। पाँचों वर्गों के प्रथम और द्वितीय अक्षर (क, ख, च, छ, ट, ठ, त, थ, प, फ) तथा ऊष्म वर्णों को "परुष व्यञ्जन" और शेष को "मृदुव्यञ्जन" भी कहते हैं।

विसर्ग को वस्तुत एक छोटा ह समझना चाहिए। यह सदा किसी स्वर के अन्त मे आता है। यह स् अथवा र् का एक रूपान्तर मात्र है, किन्तु उच्चारण की विशेषता के कारण इसका व्यक्तित्व अलग है।

क् और ख् के पूर्व कभी २ एक अर्धविसर्ग सा उच्चारण के प्रयोग में आता है उसे ᳵ इस चिह्न द्वारा व्यक्त करते हैं और उसकी सज्ञा जिह्वामूलीय बताते हैं। इसी प्रकार से प् और फ् के पूर्व वाले नाद को उपध्मानीय कहते हैं और उसी (ᳵ) चिह्न से व्यक्त करते हैं।

अनुस्वार यदि पञ्चवर्गीय अक्षरों के पूर्व आवे तो उसका उच्चारण उस वर्ग के पञ्चम अक्षर सा होता है, यदि अन्यत्र आवे

पुत्र + इष्टि = पुत्रेष्टि }
ईश्वर + इच्छा = ईश्वरेच्छा } इत्यादि को समझना चाहिए।

रमा + ईश = रमेश।

यहाँ पर "रमा" के "मा" में जो "आ" है उसके बाद "ईश" का "ईकार" आता है, इस लिए दोनों के ("अ" और "ई" के) स्थान में "ए" हो गया। इसी प्रकार —

गङ्गा + ईश्वर = गङ्गेश्वर।
ललना + इच्छति = ललनेच्छति।
द्वारका + इहैव = द्वारकेहैव।
पाठशाला + इत = पाठशालेत।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

तडाग + उदकम् = तडागोदकम्।

यहाँ पर तडाग के "ग" में जो "अ" है उसके बाद "उदकम्" का "उ" आता है, इस लिए दोनों के ("अ" और "उ" के) स्थान में "ओ" हो गया। इसी प्रकार —

वृत्त + उपरि = वृत्तोपरि।
गगन + ऊर्ध्वम् = गगनोर्ध्वम्।
विशाल + उदरम् = विशालोदरम्।
अत्र + उद्देशे = अत्रोद्देशे।
अस्य + उल्लेख = अस्योल्लेख।

तो एक विभिन्न ही उच्चारण होता है, इस कारण इसका व्यक्तित्व भी अलग है।

व्यंजनों का एक भेद अल्पप्राण और महाप्राण में भी किया जाता है। जिनके उच्चारण में कम साँस की आवश्यकता होती है वे अल्पप्राण, और जिनमें अधिक की वे महाप्राण होते हैं। वर्गों के प्रथम, तृतीय और पंचम वर्ण तथा अन्तस्थ अल्पप्राण हैं और शेष—अर्थात् वर्गों के द्वितीय और चतुर्थ तथा श, ष, स, ह महाप्राण हैं।

४—उच्चारण करने का उपाय यह है कि अन्दर से आती हुई श्वास को स्वच्छन्दता से न निकाल कर उसे मुख के अवयव विशेषों से तथा नासिका से विकृत करके निकाला जाय। यह विकार उत्पन्न करने में मुख के भाग तथा नासिका प्रयोग में आते हैं। विकार के कारण ही नादों में भेद पड़ जाता है। जिन जिन अवयवों से विकार उत्पन्न किया जाता है उनको उन नादों का स्थान कहते हैं।

हमारे वर्णों के स्थान इस प्रकार हैं।

अ	आ	विसर्ग	क	ख	ग	घ	ङ	ह	—कण्ठ
इ	ई	य	च	छ	ज	झ	ञ	श	—तालु
ऋ	ॠ	र	ट	ठ	ड	ढ	ण	ष	—मूर्धा
लृ		ल	त	थ	द	ध	न	स	—दाँत
उ	ऊ	उपध्मानीय	प	फ	ब	भ	म		—ओठ

नगर	+	उपकण्ठे	=	नगरोपकण्ठे।
शब्द	+	उच्चारणम्	=	शब्दोच्चारणम्।
सरल	+	उपाय	=	सरलोपाय।
संसार	+	उपकार	=	संसारोपकार।
युद्धाय	+	उद्यत	=	युद्धायोद्यत।
संग्राम	+	उपकरणम्	=	संग्रामोपकरणम्
सूर्य	+	उदय	=	सूर्योदय।
शिशिर	+	उपचार	=	शिशिरोपचार।
सागर	+	ऊर्मि	=	सागरोर्मि।
नव	+	ऊढा	=	नवोढा।
मम	+	ऊरु	=	ममोरु।
वृषभ	+	ऊढ	=	वृषभोढ।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

गङ्गा + उदकम् = गङ्गोदकम्।

यहाँ पर गङ्गा के "ङ्गा" में जो "आ" है उसके बाद "उदकम्" का "उ" आता है, इसलिए दोनों के ("आ" और "उ" के) स्थान में "ओ" हो गया। इसी प्रकार —

मायया	+	ऊर्जस्वि	=	माययोर्जस्वि।
भार्या	+	ऊरु	=	भार्योरु।
मया	+	ऊह्यते	=	मयोह्यते।

ञ, म, ङ, ण, न—इनके उच्चारण में नासिका की भी सहायता आवश्यक है, इस प्रकार ञ् के उच्चारण स्थान मिलकर तालु और नासिका दोनों हैं, ट के कण्ठ और नासिका —इत्यादि।

ए और	ऐ	—कण्ठ और तालु
ओ और	औ	—कण्ठ और ओठ
	व	—दाँत और ओठ
जिह्वामूलीय		—का जिह्वा की जड़
अनुस्वार		—का स्थान नासिका है।

एक ही स्थान से निकलनेवाले वर्ण "सवर्ण" कहलाते हैं। भिन्न स्थानों से उच्चारण किये हुए वर्ण परस्पर असवर्ण कहलाते हैं।

ऊपर वर्णों के उच्चारण के स्थान संस्कृत वैयाकरणों के अनुसार दिये ये हैं। आज कल इनके उच्चारण में किसी किसी वर्ण में भेद पड़ गया है, या ऋ का उच्चारण हम लोग शुद्ध नहीं करते। कोई रि करते हैं कोइ र। ' का उच्चारण मूर्धा (तालु के सब से ऊपर के भाग) से होना

ाकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।
ुयशानां तालु।
ृटुरषाणां मूर्धा।
ृतुलसानां दन्ताः।
ुपध्मानीयानाम् ओष्ठौ।
मङणनानां नासिका च।

एदैतोः कण्ठतालु।
ओदौतोः कण्ठोष्ठम्।
वकारस्य दन्तोष्ठम्।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
नासिकानुस्वारस्य।

मया	+	उपक्रियते	=	मयोपक्रियते।
भार्या	+	उपजीवी	=	भार्योपजीवी।
मया	+	उक्तम्	=	मयोक्तम्।
राज्ञा	+	उच्यते	=	राज्ञोच्यते।
राधा	+	उक्ति	=	राधोक्ति।
यमुना	+	उद्गम	=	यमुनोद्गम।
सीता	+	उत्तरम्	=	सीतोत्तरम्।
शय्या	+	उत्सङ्गे	=	शय्योत्सङ्गे।
शिला	+	उच्चये	=	शिलोच्चये।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

कृष्ण + ऋद्धि = कृष्णर्द्धि।

यहाँ पर "ण" में जो "अ" है, उसके बाद "ऋद्धि" का "ऋ" आता है, इसलिए इसी नियम के अनुसार दोनों ("अ" और "ऋ") के स्थान में "अर्" हो गया। इसी प्रकार —

ग्रीष्म	+	ऋतु	=	ग्रीष्मर्तु।
शीत	+	ऋतौ	=	शीतर्तौ।
ब्रह्म	+	ऋषि	=	ब्रह्मर्षि।
महा	+	ऋषि	=	महर्षि।
महा	+	ऋद्धि	=	महर्द्धि।

इत्यादि उदाहरणों को समझना चाहिए।

चाहिए किन्तु बहुधा लोग इसे रि की तरह बोलते हैं और कोई र स की तरह। लृ का उच्चारण तो साहित्यिक संस्कृत के समय में ही लुप्तप्राय होगया था।

वर्णमालाओं में ह के उपरान्त बहुधा क्ष, त्र, ज्ञ देने की रीति है, किन्तु ये शुद्ध वर्ण नहीं हैं—दो वर्णों के मेल हैं।

क्ष=क्+ष, त्र=त्+र, ज्ञ=ज्+ञ। इसकारण इनको वर्णमाला में सम्मिलित करना भूल है।

द्वितीय सोपान

सन्धि विचार

५—ऊपर कहा जाचुका है कि प्रत्येक वाक्य में कई शब्द रहते हैं। संस्कृत के शब्द किसी भी स्वर अथवा व्यञ्जन से आरम्भ होकर, किसी स्वर, व्यञ्जन, अनुस्वार अथवा विसर्ग में अन्त हो सकते हैं।

दो शब्द जब पास पास आते हैं तो एक दूसरे की निकटता के कारण पहले शब्द के अन्तिम वर्ण में अथवा दूसरे शब्द के प्रथम वर्ण में अथवा दोनों में कुछ परिवर्त्तन हो जाता है। उदाहरणार्थ

तव + ऌकार = तवल्कार ।

यहाँ पर "तव" के "व" में जो "अ" है उसके बाद "ऌकार" का "ऌ" आता है, इसी से दोनों ("अ" और "ऌ") के स्थान मे "अल्" हो गया।

कुछ स्थल ऐसे हैं जहाँ पर यह नियम नहीं लगता, वे नीचे दिखाए जाते हैं —

(क) अक्ष+ऊहिनी = अक्षौहिणी । यहाँ पर "न" के स्थान में "ण" कैसे हो गया, यह आगे बताया जायगा ।

(ख) जब "स्व" शब्द के बाद "ईर" और "ईरिन्" आते हैं तो 'स्व' के 'अकार' के, और "ईर" व "ईरिन्" के "ईकार" के स्थान में "ऐ" होजाता है, जैसे —

स्व + ईर = स्वैर (स्वेच्छाचारी)।
स्व + ईरिणी = स्वैरिणी ।
स्व + ईरम् = स्वैरम् ।
स्व + ईरी = स्वैरी (जिसका स्वेच्छानुसार आचरण करने का स्वभाव हो)।

(ग) यदि[1] अकारान्त उपसर्ग के बाद ऐसी धातु जिसके आदि में ह्रस्व "ऋ" हो आवे तो "अ" और "ऋ" के स्थान में "आर्" हो जाता है, जैसे —

[1] उपसर्गादृति धातौ ॥ ६ । १ । ९१ ॥

उप + ऋच्छति = उपार्च्छति ।

यहाँ पर "उप" उपसर्ग है उसके "प" में जो "अ" है उसके बाद "ऋच्छति" का ऋ" आता है, इसलिए इस नियम के अनुसार दोनों ("अ" और ऋ") के स्थान में 'आर्" होगया ।

इसी प्रकार, प्र+ऋच्छति=प्रार्च्छति ।

किन्तु यदि नामधातु हो तो "आर्" विकल्प करके होगा, जैसे —

प्र+ऋषभीयति=प्रार्षभीयति (बैल की तरह आचरण करता है) ।

९—जब "अ" अथवा "आ" के बाद (१) "ए" या "ऐ" आवे तो दोनो के स्थान मे "ऐ" हो जाता है, और (२) जब "ओ" या "औ" आवे तो दोनो के स्थान मे "औ" हो जाता है । इस सन्धि का नाम वृद्धि है ।[1]

क्रमश उदाहरण

कृष्ण	+	एकत्वम्	= कृष्णैकत्वम् ।
देव	+	ऐश्वर्यम्	= देवैश्वर्यम् ।
मम	+	एक	= ममैक ।
अत्र	+	एकदा	= अत्रैकदा ।
इह	+	एति	= इहैति ।
तत्र	+	एव	= तत्रैव ।

१ वृद्धिरेचि ॥ ६ । १ । ८८ ॥

वनाच् शश, वनाद् शश, वनाद् क्रुश भी।

(तच्छिव, तच्शिव, वनाच्छुश आदि में द् अथवा त के स्थान में नियम १४ के अनुसार च् हो गया)

२२—पदान्त म् के बाद[1] यदि व्यञ्जन आवे तो उसके स्थान में अनुस्वार करना या न करना अपनी इच्छा पर रहता है जैसे —

हरिम् + वन्दे = हरिं वन्दे।

गृहम् + चलति = गृहं चलति।

किन्तु गम् + य + ते = गम्यते, न कि गयते होगा, क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है बल्कि बीच में है। उसी तरह से सम् + राट् = सम्राट्। यहाँ भी अनुस्वार न होगा, क्योंकि म् पद के अन्त में नहीं है।

२३—अपदान्त[2] म्, न् के बाद यदि अनुनासिक व्यजन तथा अन्तस्थ और ह् को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो म्, न् के स्थान में अनुस्वार हो जाता है, जैसे —

आक्रम् + स्यते = आक्रंस्यते।

यशान् + सि = यशांसि।

परन्तु मन् + यते = मन्यते, न कि मयते होगा, क्योंकि यहाँ पर न् के बाद य आ जाता है जो कि अन्तस्थ है।

1 मोऽनुस्वार । ८ । ३ । २३ ।

२ नश्चापदान्तस्य झलि । ८ । ३ । २४ ।

तदा	+	एकदा	=	तदैकदा।
सा	+	एव	=	सैव
कदा	+	एते	=	कदैते।
सर्वदा	+	एकत्र	=	सर्वदैकत्र।
इन्द्र	+	ऐरावत	=	इन्द्रैरावत।
नर	+	ऐक्यम्	=	नरैक्यम्।
चित्त	+	ऐकाग्र्यम्	=	चित्तैकाग्र्यम्।
सर्वथा	+	ऐकमत्यम्	=	सर्वथैकमत्यम्।
शब्द	+	ऐकार्थ्यम्	=	शब्दैकार्थ्यम्।
तदा	+	ऐन्द्रजालिक	=	तदैन्द्रजालिक।
एषा	+	ऐन्द्री	=	एषैन्द्री
बाला	+	ऐडकी	=	बालैडकी।
भव	+	औषधम्	=	भवौषधम्।
राम	+	औदार्य्यम्	=	रामौदार्य्यम्।
विद्या	+	औत्सुक्यम्	=	विद्यौत्सुक्यम्।
गङ्गा	+	ओघ	=	गङ्गौघ।
कृष्ण	+	औत्कण्ठ्यम्	=	कृष्णौत्कण्ठ्यम्।

नियमातिरेक :—

(क) यदि अकारान्त उपसर्ग के बाद एकारादि या ओकारादि धातु आवे तो दोनों के स्थान में "ए" वा "ओ" हो जाता है, यथा —

ग्रामान् + गच्छति = ग्रामान्गच्छति।

यहाँ पर ग्रामा गच्छति नहीं होगा, क्योंकि न् पद के अंत में है।

२४—यदि[1] पद के मध्य मे स्थित अनुस्वार के बाद श्, ष्, स् और ह् को छोड़ कर कोई भी व्यञ्जन आवे तो अनुस्वार के स्थान मे सर्वदा ही उस वर्ग का पञ्चम वर्ण हो जाता है जिस वर्ग का व्यञ्जन वर्ण अनुस्वार के बाद रहता है, जैसे —

गम्	+	ता	=	गं	+	ता (२३)	=	गन्ता,
सन्	+	ति	=	सं	+	ति (२३)	=	सन्ति,
अनक्	+	इत	=	अंक्	+	इत (२३)	=	अङ्कित
शाम्	+	त	=	शां	+	त (२३)	=	शान्त
सम्	+	कटा	=	सं	+	कटा(२३)	=	सङ्कटा
शम्	+	भु	=	शं	+	भु (२३)	=	शम्भु,
अनच्	+	इत	=	अंच्	+	इत (२३)	=	अञ्चित

(क) यदि[2] अनुस्वार किसी पद के अन्त मे रहे तो ऊपर वाला नियम लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है, जैसे —

त्वम् + करोषि = त्वं करोषि या त्वङ्करोषि,
तृणम् + चरति = तृणं चरति या तृणञ्चरति,
ग्रामम् + गच्छति = ग्रामं गच्छति या ग्रामङ्गच्छति
इदम् + भवति = इदं भवति या इदम्भवति,

१ अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः। ८।४।५८।
२ वा पदान्तस्य। ८।४।५९।

प्र + एजते = प्रेजते।

उप + ओपति = उपोपति।

किन्तु यदि वह धातु नामधातु हो तो विकल्प करके वृद्धि होती है, जैसे —

उप + एडकीयति = उपेडकीयति या उपैडकीयति।

प्र + ओघीयति = प्रोघीयति या प्रौघीयति।

१०—यदि[1] ह्रस्व या दीर्घ इ, उ, ऋ तथा ऌ के बाद असवर्ण स्वर आवे तो इ, उ, ऋ, ऌ के स्थान में क्रमश य्, व्, र् और ल् हो जाते हैं, जैसे —

दधि	+	अत्र	= दध्यत्र।
इति	+	आह	= इत्याह।
बीजानि	+	अवपन्	= बीजान्यवपन्।
कलि	+	आगम	= कल्यागम
मधु	+	अरि	= मध्वरि।
गुरु	+	आदेश	= गुर्वादेश
प्रभु	+	आज्ञा	= प्रभ्वाज्ञा।
शिशु	+	ऐक्यम्	= शिश्वैक्यम्।
धातृ	+	अंश	= धात्रंश।
पितृ	+	आकृति	= पित्राकृति।

१ इको यणचि ॥ ६ । १ । ७७ ॥

सवितृ + उदय = सवितुदय ।
मातृ + औदार्य्यम् = मातौदार्य्यम् ।
ऌ + आकृति = लाकृति ।

[1] अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, तथा ॡ जब किसी शब्द के अन्त में रहें, और इनके बाद ह्रस्व "ऋ" आवे तो सन्धि करना न करना इच्छा पर निर्भर है। किन्तु जब सन्धि नहीं होती तो दीर्घ आ, ई, ॠ, तथा ॡ ह्रस्व हो जाते हैं जैसे —

ब्रह्मा + ऋषि = ब्रह्मर्षि, ब्रह्म ऋषि ।
सप्त + ऋषीणाम् = सप्तर्षीणाम्, सप्त ऋषीणाम् ।

[2] जब ओ या औ के बाद में यकारादि प्रत्यय (ऐसा प्रत्यय जिसके आरम्भ में 'य्' हो) आवे तो "ओ" और "औ" के स्थान में क्रम से अव् और आव् हो जाते हैं, यथा —

गो + यम् = गव्यम् ।
नौ + यम् = नाव्यम् ।

[3] ११—ए, ऐ, ओ, औ के उपरान्त यदि कोई स्वर आवे तो उनके स्थान में क्रम से अय्, आय्, अव्, आव् हो जाते हैं, यथा —

---

१ ऋत्यक ॥ ६ । १ । १२७ ॥
२ वान्तो यि प्रत्यये ॥ ६ । १ । ७९ ॥
३ एचोऽयवायावः ॥ ६ । १ । ७८ ॥

यह नियम नहीं लगता जैसे, रामान्, पितॄन्, वृषभान ऋषीन्।

२६—यदि[२] अ, आ को छोड़कर किसी स्वर के अनन्तर अथवा अन्तःस्थ वर्ण अथवा कण्ठस्थानीय वर्ण अथवा ह् के सम्बन्धी स् या किसी दूसरे वर्ण के स्थान मे आदेश किया हुआ स् आवे तो उस स् के स्थान मे ष् हो जाता है। इस विधि का नाम षत्वविधान है, यथा —

रामे	+	सु	=	रामेषु।
वने	+	सु	=	वनेषु।
ए	+	साम्	=	एषाम्।
अन्ये	+	साम्	=	अन्येषाम्।

इसी प्रकार मतिषु, नदीषु, धेनुषु, वधूषु, धातृषु, गोषु, ग्लौषु आदि जानना चाहिये।

किन्तु राम+स्य=रामस्य, यहाँ ष् नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ स् के पूर्व 'अ' आया है, इसी प्रकार विद्यासु मे भी षत्व नहीं हुआ। पेस्+अति=पेसति (पेषति नहीं), क्योंकि यह स् न तो किसी प्रत्यय का है न आदेश का।

(क) यदि स् पद के अन्त मे हो तो षत्वविधान न होगा, यथा हरि (यहाँ हरि शब्द के अनन्तर 'स्' सु प्रत्यय वाला अवश्य है, किन्तु पद के अन्त में है, इस कारण षत्व नहीं हुआ)।

२ अपदान्तस्य मूर्धन्य। इणको। आदेशप्रत्यययोः। ८।३।५५,५७,५९।

हरे	+	ए	=	हरये।
नै	+	अक	=	नायक।
विष्णो	+	ए	=	विष्णवे।
पो	+	अक	=	पावक।

शब्दान्त य् या व् के ठीक पूर्व यदि अ या आ रहे और पश्चात् कोई स्वर आवे तो य् और व् का लोप करना न करना अपनी इच्छा पर निर्भर रहता है, जैसे —

हरे	+ एहि	=	हरयेहि या हर एहि।
विष्णो	+ इह	=	विष्णविह या विष्ण इह।
तस्यै	+ इमानि	=	तस्यायिमानि या तस्या इमानि
श्रियै	+ उत्सुक	=	श्रियायुत्सुक या श्रिया उत्सुक।
गुरौ	+ उत्क	=	गुरावुत्क या गुरा उत्क।
रात्रौ	+ आगत	=	रात्रावागत या रात्रा आगत।
मृतौ	+ अन्नम्	=	मृतावन्नम् या मृता अन्नम्।

मध्यस्थ व्यञ्जन अथवा विसर्ग के लोप हो जाने पर जब कोई दो स्वर समीप आ जायँ तो उनकी आपस में सन्धि नहीं होती।

१२—पदान्त एकार या ओकार के बाद यदि "अ" आवे तो "अकार" का लोप हो जाता है (और ऽ चिह्न लोप की सूचना-मात्र देने को रख दिया जाता है जैसे —

---

१ लोपः शाकल्यस्य॥ ८। ३। १९॥

२ एङः पदान्तादति॥ ६।१।१०९॥

(ख) ऊपर[1] वर्णित वर्णों में से यदि कोई वर्ण स् के ठीक पहले न हो किन्तु अनुस्वार (न् के स्थान में आया हुआ), विसर्ग, श, ष, स् में से कोई वर्ण और पूर्व वर्णित वर्णों के बीच में आजाय तब भी षत्वविधि होगी, यथा —

धेनून् + सि = धेनूं + सि = धेनूंषि ।

२७—सम् उपसर्ग के म् के उपरान्त यदि कृधातु का कोई रूप आवे तो म् के स्थान में अनुस्वार और विसर्ग दोनों मिलकर आ जाते हैं, यथा — सम् + कर्ता = सं + कर्ता = संस्कर्ता । कभी कभी इस अनुस्वार के स्थान में अनुनासिक (ँ) हो जाता है, यथा —सँस्कर्ता अथवा संस्कर्ता ।

२८—छ्[2] तथा छ् के पूर्व वाले ह्रस्व या दीर्घ स्वर के बीच में त् अवश्य आता है, जैसे —

शिव + छाया = शिवच्छाया ।
वृक्ष + छाया = वृक्षच्छाया ।
लता + छवि = लताच्छवि ।

(क) किन्तु[3] छ के पूर्व आ उपसर्ग को तथा "मा" के आ को छोड़कर कोई पदान्त दीर्घ स्वर आवे तो ऊपर वाला नियम इच्छानुसार लगता है और नहीं भी लगता है, जैसे—

१ नुम्विसर्जनीयशर्व्यवायेऽपि । ८ । ३ । ५८ ।

२ छे च । ६ । १ । ७३ ।

३ आङ्माङोश्च । दीर्घात् । पदान्ताद्वा । ६ । १ । ७४-७६ ।

हरे +अव =हरेऽव । हे हरि रक्षा कीजिए।
विष्णो+अव =विष्णोऽव । हे विष्णु रक्षा कीजिए।

१३–यदि[1] प्लुत स्वर के उपरान्त अथवा प्रगृह्यसंज्ञक वर्णों के उपरान्त स्वर आवे तो सन्धि नहीं होती। प्रगृह्यसंज्ञा वाले वर्ण इस प्रकार हैं —

(क) जब[2] कि संज्ञा अथवा सर्वनाम अथवा क्रिया के द्विवचन के अन्त में "ई" "ऊ" या "ए" रहता है तो उस "ई" "ऊ" और "ए" को प्रगृह्य कहते हैं, जैसे, हरी एतौ, विष्णू इमौ, गङ्गे अमू, पचेते इमौ।

[ख] जब[3] अदस् शब्द के मकार के बाद ई या ऊ आते हैं तो वे प्रगृह्य होते हैं, जैसे, अमी ईशा, अमू आसाते।

[ग] जब[4] कि अव्यय ओकारान्त हो तो ओ को प्रगृह्य बोलते हैं, जैसे, अहो ईशा।

संज्ञा शब्दों के सम्बोधन के अन्त के ओकार के बाद यदि "इति" शब्द आवे तो विकल्प करके सन्धि होती है, जैसे —

---

१ प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्।

२ ईदूदेदन्तद्विवचनं प्रगृह्यम्।

३ अदसो मात्॥ १।१।११।१२॥

४ निपात एकाजनाङ्। ओत्। सम्बुद्धौ शाकल्यस्येतावनार्षे॥ १।१४-१६॥

३३–यदि तिरस् के बाद क्, ख्, प्, फ् आवे तो स् विकल्प करके लिया जाता है, जैसे —[1]

तिरस् + करोति = तिरस्करोति या तिरः करोति ।

३४–द्वि, त्रि और चतु पौनःपुन्यवाचक क्रियाविशेषण अव्यय हैं । यदि इनके बाद क्, ख्, प्, फ् आवें तो विसर्ग के स्थान विकल्प करके ष् हो जाता है, जैसे —[2]

द्विः + करोति = द्विष्करोति या द्विः करोति

किन्तु चतुः + कपालम् = चतुः कपालम् (चतुष्कपालम् नहीं) कपालों में बना हुआ अन्न, क्योंकि चतुः क्रियाविशेषण अव्यय नहीं है।

३५–स् के स्थान में किए हुए विसर्ग के (र् के स्थान में हुए विसर्ग के नहीं) पूर्व यदि ह्रस्व "अ" आवे और बाद को "अ" अथवा मृदु व्यञ्जन आवे तो विसर्ग का "उ" हो जाता है, जैसे शिवः + अर्च्यः = शिव + उ + अर्च्यः = शिवो + अर्च्यः = शिवोऽर्च्यः
इसी प्रकार

देवः	+	वन्द्यः	=	देवो वन्द्यः ।
रामः	+	अस्ति	=	रामोऽस्ति ।
सः	+	अपि	=	सोऽपि ।

१ तिरसोऽन्यतरस्याम् । ८ । ३ । ४२ ।
२ द्विस्त्रिश्चतुरिति कृत्वोऽर्थे । ८ । ३ । ४३ ।

विष्णो + इति = विष्णविति, विष्ण इति, विष्णो इति ।

प्लुतों के साथ भी सन्धि नहीं होती, जैसे—एहि कृष्ण ३ अत्र गौश्चरति ।

हल्-सन्धि

१४-जब " स् " अथवा दंतस्थानीय कोई व्यञ्जन श् या किसी तालुस्थानीय व्यञ्जन के समीप आता है तो दंत-स्थानीयों के स्थान मे सवर्ण तालुस्थानीय और " स् " के स्थान मे " श् " हो जाता है, जैसे —[1]

हरिस् + शेते = हरिश्शेते — हरि सोता है ।
राम + चिनोति = रामश्चिनोति — राम इकट्ठा करता है ।
सत् + चित् = सच्चित् — सत्य और ज्ञान ।
शार्ङ्गिन् + जय = शार्ङ्गिञ्जय — हे विष्णु जय हो ।

नियमातिरेक —जब दन्तस्थानीय व्यञ्जन 'श्' के बाद आते हैं तो उनके स्थान में सवर्ण तालुस्थानीय नहीं होते, जैसे —

विश् + न = विश्न । प्रश् + न = प्रश्न ।

(ख) जब स् अथवा दन्तस्थानीय व्यञ्जन के बाद ष् या कोई मूर्धन्य वर्ण आवे तो स् के स्थान मे ष् और दन्तस्थानीय के स्थान में मूर्धा स्थान वाले वर्ण हो जाते हैं, जैसे —[2]

---

१ स्तोःश्चुनाश्चुः । ८ । ४ । ४० ।
२ ष्टुना ष्टुः । ८ । ४ । ४१ ।

एष	+	अब्रवीत	=	एषोऽब्रवीत् ।
बाल	+	गच्छति	=	बालो गच्छति ।
हर	+	याति	=	हरा याति ।
वृक्ष	+	वर्धते	=	वृक्षा वर्धते ।

किन्तु प्रात +अत्र=प्रातरत्र । यहाँ पर विसर्ग का उ नहीं हुआ, क्योंकि यह विसर्ग र् के स्थान में किया गया है न कि स् के स्थान में, इसी प्रकार प्रात +गच्छ=प्रातर्गच्छ।

३६—यदि विसर्ग के पूर्व आ रहे और बाद में कोई मृदु व्यञ्जन आवे तो विसर्ग का लोप हो जाता है जैसे —

बाला	+	गच्छन्ति	=	बाला गच्छन्ति ।
भक्ता	+	जपन्ति	=	भक्ता जपन्ति ।
नरा	+	वदन्ति	=	नरा वदन्ति ।
अश्वा	+	धावन्ति	=	अश्वा धावन्ति ।
जना	+	ध्यायन्ति	=	जना ध्यायन्ति ।
कन्या	+	याति	=	कन्या यान्ति ।

किन्तु जब विसर्ग के पूर्व आ और बाद को कोई स्वर आवे, या विसर्ग के बाद अ को छोड़कर कोई स्वर और पूर्व में अ तो विसर्ग का लोप करना न करना इच्छा पर निर्भर है, और लोप नहीं होता तो विसर्ग के स्थान में य् हो जाता है, जैसे —

देवा +इह =देवा इह या देवायिह ।

रामस्	+	षष्ठ	=	रामष्षष्ठ ।
रामस्	+	टीकते	=	रामष्टीकते—राम जाते हैं।
तत्	+	टीका	=	तट्टीका—उसकी व्याख्या।
चक्रिन्	+	ढौकसे	=	चक्रिण्ढौकसे— हे कृष्ण, तू जाता है।
पेष्	+	ता	=	पेष्टा—पीसने वाला।

१५—यदि[1] तवर्ग के किसी अक्षर के बाद ष् आवे तो उसके स्थान पर मूर्धन्य नहीं होता, जैसे —

सन् + षष्ठ = सन्षष्ठ ।

१६—जब[2] अन्त स्थ और अनुनासिक व्यजन को छोड़कर और किसी भी व्यजन के उपरात किसी वर्ग का तृतीय अथवा चतुर्थ वर्ण आवे तो पूर्ववर्ती व्यञ्जन अपने वर्ग के तृतीय वर्ण मे परिणत हो जाता है , जसे —

पतत् + दुष्ट = पतद्दुष्ट ।

जलमुक् + गर्जति = जलमुग्गर्जति ।

१७—यदि[3] र् और ह् को छोड़कर किसी पदान्त व्यञ्जन के बाद कोई नासिका स्थानवाला वर्ण आने तो उसके स्थान

१ तो षि ॥ ८ । ४ । ४३ ॥
२ झलां जश् झशि । ८ । २ । ३९ ।
३ यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ॥ ८ । ४ । ४५ ॥
विधिरय रेफेऽपि न प्रवर्त्तते (सि० कौ०)

नरा +आगच्छन्ति =नरा आगच्छन्तिया ।१५

राम +पति =राम पति ।

जन +इच्छति =जन इच्छति ।

शत्रव +आपतन्ति =शत्रव आपतन्ति ।

मुनय +आप्नुवन्ति =मुनय आप्नुवन्ति ।

ऋषय +एते =ऋषय एते ।

कवय +ऊहन्ति =कवय ऊहन्ति

२७-विसर्ग के पूर्व यदि अ और आ को छोड़कर कोई स्वर हो और बाद को कोई स्वर अथवा मृदु व्यञ्जन हो तो विसर्ग के स्थान में र् हो जाता है, जैसे—

हरि	+	जयति	=	हरिर्जयति
भानु	+	उदेति	=	भानुरुदेति
कवि	+	वर्णयति	=	कविर्वर्णयति
मुनि	+	ध्यायति	=	मुनिर्ध्यायति
यति[1]	+	गदति	=	यतिर्गदति
ऋषि	+	हसति	=	ऋषिर्हसति
लक्ष्मी	+	याति	=	लक्ष्मीर्याति
श्री	+	एषा	=	श्रीरेषा
सुधी	+	पति	=	सुधीर्पति

(क) र् के बाद यदि र् आवे और ढ् के बाद यदि ढ

१ रोरि। ढ्लोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः। ८।३।१४, १११।

में उसी वर्गवाला नासिकास्थानीय वर्ण विकल्प करके होता है। जैसे —

एतद्	+	मुरारि	=	एतन्मुरारि ।
षट्	+	मासा	=	षण्मासा ।
षट्	+	नगर्य	=	षण्णगर्य ।

१८—दन्तस्थान वाले अक्षर के बाद यदि ल् आवे तो उसके स्थान में ल् हो जाता है, और न् के स्थान में अनुनासिक ल् (अर्थात् ँल्) होता है, जैसे —

तत्	+	लय	=	तल्लय (उसका नाश)।
वृक्षात्	+	लगुडम्	=	वृक्षाल्लगुडम्।
तस्मात्	+	लालयेत्	=	तस्माल्लालयेत्।
पराक्रमात्	+	लावण्यम्	=	पराक्रमाल्लावण्यम्।
विद्वान्	+	लिखति	=	विद्वाँल्लिखति।

१९—यदि वर्गों के प्रथम द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्णों के बाद ह् आवे तो ह् के स्थान में उसी वर्ग का चौथा अक्षर कर देना या न कर देना अपनी इच्छा पर रहता है, जैसे —

वाक् + हरि = वाग्घरि अथवा वाग्हरि।

यहाँ कवर्ग के प्रथम अक्षर क् के उपरान्त ह् आया, इस कारण ह् के

---

१ तोर्लि ॥ ८ । ४ । ६० ॥

२ झयो होऽन्यतरस्याम् ॥ ८ । ४ । ६२ ॥

आवे तो र् और ढ् का लोप हो जाता है, और पूर्व में आए हुए "अ" "इ" "उ" यदि ह्रस्व रहे तो साथ ही साथ वे दीर्घ हो जाते हैं।

जैसे—पुनर्	+	रमते	=	पुना रमते
हरिर्	+	रम्य	=	हरी रम्य
शम्भुर्	+	राजते	=	शम्भू राजते
कविर्	+	रचयति	=	कवी रचयति
गुरुर्	+	रुष्ट	=	गुरू रुष्ट
शिशुर	+	रोदिति	=	शिशू रोदिति
वृढ्	+	ढ	=	वृढ

३८—यदि[1] किसी व्यंजन के पूर्व स अथवा एष शब्द आवे तो उनके विसर्ग का लोप हो जाता है, जैसे—

स + शम्भु = स शम्भु । एष + विष्णु = एष विष्णु ।

(क) यदि नञ् तत्पुरुष में ये स और एष (अर्थात् असः अनेष शब्द) आवें अथवा क में परिणत होकर आवें (अर्थात् सकः, एषकः) तब विसर्ग लोप की यह विधि नहीं लगती, यथा—असः शिवः का असः शिव न होगा और न एषकः हरिः का एषक हरिः होगा।

---

१ एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि । ६ । १ । १३२ ।

स्थान में कवर्ग का चतुर्थ अक्षर घ् हो गया। (क् के स्थान में ग् कैसे हुआ इसके लिए ऊपर देखिए नियम १६)

२०—अनुनासिक व्यञ्जन (ञ्, म्, ङ्, ण्, न्) तथा अन्त स्थ वर्णों को छोड़ कर और किसी व्यञ्जन के उपरान्त यदि क्, ख्, च्, छ्, ट्, ठ्, त्, थ्, प्, फ् में से कोई वर्ण आवे तो पूर्वोक्त व्यञ्जन के स्थान में उसी वर्ग का प्रथम वर्ण हो जाता है परन्तु जब उसके बाद कुछ भी नहीं रहता तब उसके स्थान मे प्रथम अथवा तृतीय वर्ण हो जाता है, जैसे —

भयात् करोति = भयात्करोति।
सुहृद् क्रीडति = सुहृत्क्रीडति।
वृक्षाद् पतति = वृक्षात्पतति।
वाक्। वाग्। रामात्। रामाद्।

२१—श्[1] यदि किसी ऐसे शब्द के बाद आवे जिसके अन्त मे वर्गों के प्रथम, द्वितीय, तृतीय या चतुर्थ वर्ण हों और श् के बाद कोई स्वर, अन्त स्थ, अनुनासिक व्यञ्जन या ह् रहे तो श् के स्थान मे कभी छ् हो जाता है, कभी नहीं, जैसे .—

तद् + शिव = तच्छिव, तत् शिव।
{ तच्शिव, तद् शिव, तद् छिव भी होता है। }
धनात् + शश = धनाच्छश, धनात् शश

१ शश्छोऽटि। सरि च। ८। ४। ६३॥ ८। ४। ६५।

तृतीय सोपान

संज्ञा-विचार

३९—वाक्य भाषा का आधार है और शब्द वाक्य का यह पी
कह आए हैं। संस्कृत में शब्द दो प्रकार के होते हैं—एक तो ऐ
जिनका रूप वाक्य के और शब्दों के कारण बदलता रहता है और दूस
ऐसे जिनका रूप सदा समान ही रहता है। न बदलने वालों में यद
कदा आदि अव्यय हैं तथा कर्तुं, गत्वा आदि कुछ क्रियाओं के रूप है
बदलने वालों में संज्ञा, विशेषण, सर्वनाम, क्रिया आदि हैं।

४०—हिन्दी की भांति संस्कृत में भी तीन पुरुष होते हैं-उत्त
पुरुष, मध्यम पुरुष और अन्य पुरुष। अन्य पुरुष को प्रथ
पुरुष भी कहते हैं। हिन्दी में केवल दो वचन होते हैं—एकवच
बहुवचन। किन्तु संस्कृत में इनके अतिरिक्त एक द्विवचन भी होता
जिससे दो का बोध कराया जाता है। संज्ञाएँ सब अन्य पुरुष
होती हैं।

४१—संज्ञा के तीन लिङ्ग होते हैं—पुलिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंस
लिङ्ग। संस्कृत भाषा में यह लिङ्गभेद किसी स्वाभाविक स्थिति
निर्भर नहीं है, ऐसा नहीं है कि सब नर वस्तुएँ पुलिङ्ग श
द्वारा दिखाई जाय, मादा स्त्रीलिङ्ग द्वारा और निर्जीव वस्तुए न
सक लिङ्ग द्वारा। प्रत्युत यह लिङ्गभेद कृत्रिम है। उदाहरणार्थ 'स
का अर्थ बताने के लिए कई शब्द हैं—स्त्री, महिला, गृहिणी, द

आदि। इनमें 'दार' शब्द स्त्री का बोधक है, तिसपर भी यह पुलिङ्ग में है। इसी प्रकार निर्जीव शरीर का बोध कराने के लिए कई शब्द हैं—तनु (स्त्रीलिङ्ग), देह (पुलिङ्ग) और शरीर (नपुंसक लिङ्ग) तथा जल के लिए आप् (स्त्री०) और जल (नपुंसक)। कई शब्द ऐसे हैं जिनके रूप एक से अधिक लिङ्गों में चलते हैं, जैसे गो शब्द पुलिङ्ग में 'बैल' वाचक है और स्त्रीलिङ्ग में 'गाय' वाचक। किन्हीं किन्हीं पुलिङ्ग शब्दों में प्रत्यय जोड़ने से भी स्त्रीलिङ्ग के शब्द होते हैं और किन्हीं से नपुंसक लिङ्ग के शब्द बन जाते हैं। उदाहरणार्थ सर्वनाम शब्द 'अन्यत्' के रूप तीनों लिङ्गों में अलग अलग होते हैं। पुत्र—पुत्री, नायक—नायिका, ब्राह्मण—ब्राह्मणी आदि जोड़ी वाले शब्द हैं। इनका सविस्तर विचार आगे चलकर होगा। परन्तु अधिकांश ऐसे शब्द हैं जो एक ही लिङ्ग के हैं—या तो पुलिङ्ग, या स्त्रीलिङ्ग या नपुंसकलिङ्ग।

४२—हिन्दी में कर्त्ता, कर्म आदि सम्बन्ध दिखाने के लिए ने, को, से आदि शब्द संज्ञा के पीछे अथवा सर्वनाम के पीछे जोड़ देते हैं, जैसे—गोविन्द ने मारा, गोविन्द को मारा, तुमने बिगाड़ा, तुमको डाटा आदि। किन्तु संस्कृत में यह सब सम्बन्ध दिखाने के लिए संज्ञा या सर्वनाम आदि का रूप ही बदल देते हैं, यथा 'गोविन्द ने' की जगह " गोविन्दः ", 'गोविन्द को' की जगह 'गोविन्दम्' और 'गोविन्द का' की जगह ' गोविन्दस्य '। इस प्रकार एक ही शब्द के

४९—ऊकारान्त पुलिङ्ग शब्द

स्वयम्भू—ब्रह्मा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वयम्भू	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुव
स०	हे स्वयम्भू	हे स्वयम्भुवौ	हे स्वयम्भुव
द्वि०	स्वयम्भुवम्	स्वयम्भुवौ	स्वयम्भुव
तृ०	स्वयम्भुवा	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभि
च०	स्वयम्भुवे	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्य
प०	स्वयम्भुव	स्वयम्भूभ्याम्	स्वयम्भूभ्य
ष०	स्वयम्भुव	स्वयम्भुवो	स्वयम्भुवाम्
स०	स्वयम्भुवि	स्वयम्भुवो	स्वयम्भूषु

सुभ्रू (सुन्दर भौं वाला) स्वभू (स्वय पैदा हुआ), प्रतिभू (जामिन) के रूप इसी प्रकार होते हैं।

५०—ऋकारान्त पुलिङ्ग शब्द

(क) पितृ—बाप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पिता	पितरौ	पितर
स०	हे पित	हे पितरौ	हे पितर

कई रूप हो जाते हैं। प्रथमा, द्वितीया आदि से लेकर सप्तमी तक सात विभक्तियां (अथवा भाग) होते हैं।

किसी शब्द में जब विभक्ति के प्रत्यय नहीं लगे रहते तब उसे 'प्रातिपदिक' कहते हैं। प्रातिपदिक में प्रत्यय जोड़ जोड़ कर विभक्तियों के रूप तय्यार किये जाते हैं। पाणिनि के अनुसार वे प्रत्यय इस प्रकार हैं —

विभक्ति		एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	—	सु	औ	जस्
द्वितीया	—	अम्	औट्	शस्
तृतीया	—	टा	भ्याम्	भिस्
चतुर्थी	—	ङे	भ्याम्	भ्यस्
पञ्चमी	—	ङसि	भ्याम्	भ्यस्
षष्ठी	—	ङस्	ओस्	आम्
सप्तमी	—	ङि	ओस्	सुप्

सम्बोधन के लिए अलग प्रत्यय नहीं दिये गये, क्योंकि इसके रूप बहुधा प्रथमा विभक्ति के अनुसार चलते हैं, केवल कहीं कहीं एकवचन में अन्तर पड़ जाता है। विभक्तिसूचक इन प्रत्ययों को सुप् कहते हैं। इनके जोड़ने की विधि बड़ी जटिल है। उदाहरणार्थ "सु" का "उ" उड़ा दिया जाता है, केवल स् रह जाता है, यथा— राम+सु=रामस्=राम । कहीं कहीं यह स् भी नहीं जोड़ा जाता, यथा—विद्या+सु=विद्या। टा का ट् लोप करके यह प्रत्यय जुड़ता

शेष रूप पहिले वाले सखी के समान होते हैं। (सुतमिच्छतीति) सुती, (सुखमिच्छतीति) सुखी, (लूनमिच्छतीति) लूनी, (क्षाममिच्छतीति) क्षामी, (प्रस्तीममिच्छतीति) प्रस्तीमी के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

४८—उकारान्त पुलिङ्ग शब्द

भानु—सूर्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भानुः	भानू	भानवः
सं०	हे भानो	हे भानू	हे भानवः
द्वि०	भानुम्	भानू	भानून्
तृ०	भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः
च०	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
पं०	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
ष०	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
स०	भानौ	भान्वोः	भानुषु

साधु, रिपु, विष्णु, गुरु, ऊरु (जाँघ), जन्तु, प्रभु, शिशु, विधु (चन्द्रमा), पशु, शम्भु, वेणु (बाँस) इत्यादि समस्त उकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप भानु की तरह चलते हैं।

है, यथा—भगवत् + टा = भगवत् + आ = भगवता। किन्तु कहीं टा का स्थान इन ले लेता है, यथा—नर + इन = नरेण। इसी कारण जब तक पाणिनि के व्याकरण का अच्छे प्रकार ज्ञान प्राप्त न करले तब तक प्रातिपदिकों में सुप् प्रत्यय जोड़ कर रूप सिद्ध करना दुःसाध्य है। इसी कारण नीचे साधारणतया प्रचलित प्रातिपदिकों के सिद्ध रूप दिये जाते हैं।

43—संस्कृत में प्रातिपदिक पहले दो भागों में विभक्त किये जाते हैं—(1) स्वरान्त, (2) व्यञ्जनान्त। स्वरान्त में अकारान्त शब्द प्रायः सभी पुलिङ्ग अथवा नपुंसक लिङ्ग में होते हैं। आकारान्त प्रायः स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, थोड़े से ही पुलिङ्ग में होते हैं। इकारान्त शब्द कोई पुलिङ्ग में, कोई स्त्री लिङ्ग में और कोई नपुंसक लिङ्ग में होते हैं। ईकारान्त प्रायः स्त्री लिङ्ग में, किन्तु कुछ पुलिङ्ग में भी होते हैं। उकारान्त प्रायः तीनों लिङ्गों में होते हैं। ऊकारान्त बहुधा स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग में होते हैं। ऋकारान्त प्रायः सभी पुलिङ्ग में होते हैं। ऐकारान्त, ओकारान्त और औकारान्त बहुत कम शब्द हैं। शेष स्वरों में अन्त होने वाले प्रातिपदिक प्रायः नहीं के बराबर हैं।

व्यञ्जनान्त प्रातिपदिक प्रायः ङ्, ञ्, मृ, य् इन वर्णों को छोड़ कर सभी व्यञ्जनों में अन्त होने वाले पाये जाते हैं। इनमें भी बहुधा चकारान्त, जकारान्त, तकारान्त, दकारान्त, धकारान्त, नकारान्त, शकारान्त, षकारान्त, सकारान्त और हकारान्त ही अधिक प्रयोग में आते हैं। नीचे क्रमानुसार उनके रूप दिखाये जाते हैं।

(ग) दातृ—देने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दाता	दातारौ	दातार
स०	हे दात	हे दातारौ	हे दातार
द्वि०	दातारम्	दातारौ	दातॄन्
तृ०	दात्रा	दातृभ्याम्	दातृभि
च०	दात्रे	,,	दातृभ्य
प०	दातु	,,	,,
ष०	,,	दात्रो	दातॄणाम्
स०	दातरि	,,	दातृषु

धातृ (ब्रह्मा), कर्तृ (करने वाला), गन्तृ (जाने वाला), नेतृ (ले जाने वाला), कर्तृ (कोई कार्य करने वाला) आदि शब्दो के तथा नप्तृ (पोता) के रूप दातृ के समान चलते हैं।

५१—ऐकारान्त पुलिङ्ग शब्द

रै—धन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	रा	रायौ	राय
स०	हे रा	हे रायौ	हे राय
द्वि०	रायम्	रायौ	राय

स्वरान्त संज्ञाएँ

४४—अकारान्त पुलिङ्ग शब्द

बालक—लड़का

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	बालक	बालकौ	बालका
सम्बोधन	हे बालक	हे बालकौ	हे बालका
द्वितीया	बालकम्	बालकौ	बालकान
तृतीया	बालकेन	बालकाभ्याम्	बालकै
चतुर्थी	बालकाय	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य
पञ्चमी	बालकात्	बालकाभ्याम्	बालकेभ्य
षष्ठी	बालकस्य	बालकयो	बालकानाम्
सप्तमी	बालके	बालकयो	बालकेषु

राम, वृक्ष, अश्व, सूर्य, चन्द्र, नर, पुत्र, सुर, देव, रथ, सुत, गज, रासभ (गदहा), मनुष्य, जन, दन्त, लोक, ईश्वर, पाद, भक्त, मास, गण, वृष, कुक्कुर, वृक (भेड़िया), व्याघ्र, सिंह, इत्यादि समस्त अकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप बालक के समान होते हैं। इसी प्रकार यादृश, तादृश, भवादृश, मादृश, त्वादृश, एतादृश आदि शब्द भी चलते हैं। स्पष्टता के लिए तादृश के रूप दिए जाते हैं।

द्वि०	पितरम्	पितरौ	पितॄन्
तृ०	पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभि
च०	पित्रे	,,	पितृभ्य
प०	पितु	,,	,,
ष०	,,	पित्रो.	पितॄणाम्
स०	पितरि	,,	पितृषु

भ्रातृ (भाई), देवृ (देवर), जामातृ (दामाद) इत्यादि पुलिङ्ग सम्बन्धसूचक ऋकारान्त शब्दोंके रूप पितृ के समान होते हैं।

(ख) नृ—मनुष्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा०	ना	नरौ	नर
स०	हे न	हे नरौ	हे नर
द्वि०	नरम्	नरौ	नॄन्
तृ०	न्रा	नृभ्याम्	नृभि
च०	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्य
प०	नु	नृभ्याम्	नृभ्य
ष०	नु	न्रो	नृणाम् नॄणाम्
स०	नरि	न्रो	नृषु

तादृश—उसकी तरह

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृश	तादृशौ	तादृशा
स०	हे तादृश	हे तादृशौ	हे तादृशा
द्वि०	तादृशम्	तादृशौ	तादृशान्
तृ०	तादृशेन	तादृशाभ्याम्	तादृशै
च०	तादृशाय	तादृशाभ्याम्	तादृशेभ्य
प०	तादृशात्	तादृशाभ्याम्	तादृशेभ्य
ष०	तादृशस्य	तादृशयो	तादृशानाम्
स०	तादृशे	तादृशयो	तादृशेषु

नोट—यही शब्द इसी अर्थ में शकारान्त होते हैं। उनके रूप व्यञ्जनान्त संज्ञाओं में मिलेंगे।

४५—आकारान्त पुलिङ्ग शब्द

विश्वपा—संसार का रक्षक

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	विश्वपा	विश्वपौ	विश्वपा
स०	हे विश्वपा	हे विश्वपौ	हे विश्वपा
द्वि०	विश्वपाम्	विश्वपा	विश्वप

५३—औकारान्त पुलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
स०	हे ग्लौः	हे ग्लावौ	हे ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
ष०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौपु

और भी औकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
	हे फल	हे फले	हे फलानि

तृ०	विश्वपा	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभि
च०	विश्वपे	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्य
प०	विश्वप.	विश्वपाभ्याम्	विश्वपाभ्य
ष०	विश्वप	विश्वपो	विश्वपाम्
स०	विश्वपि	विश्वपो	विश्वपासु

गोपा (गाय का रक्षक), शखध्मा (शंख बजाने वाला), सोमपा (सोमरस पीनेवाला), धूम्रपा (धुआँ पीने वाला), बलदा (बल देने वाला या इन्द्र), तथा और भी दूसरे आकारान्त धातुओं से निकले हुए सम्मन सज्ञा शब्दों के रूप विश्वपा के समान होते हैं ।

४६–इकारान्त पुलिङ्ग शब्द

(क) कवि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	कवि	कवी	कवय
स०	हे कवे	हे कवी	हे कवय
द्वि०	कविम्	कवी	कवीन्
तृ०	कविना	कविभ्याम्	कविभि
च०	कवये	कविभ्याम्	कविभ्य
प०	कवे	कविभ्याम्	कविभ्य

तृ०	राया	राभ्याम्	राभि
च०	राये	राभ्याम्	राभ्य
प०	राय	राभ्याम्	राभ्य
प०	राय	रायो	रायाम्
स०	रायि	रायो	रासु

५२—ओकारान्त पुलिङ्ग

गो—साँड, बैल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गौ	गावौ	गाव
स०	हे गौ	हे गावौ	हे गाव
द्वि०	गाम्	गावौ	गा
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गवो	गवाम्
स०	गवि	गवो	गोषु

समस्त ओकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

उ०	कवे	कव्यो	कवीनाम्
स०	कवौ	कव्यो	कविषु

हरि, मुनि, ऋषि, कपि, यति, विधि (ब्रह्मा), विरञ्चि (ब्रह्मा), जलधि, गिरि (पहाड़), सप्ति (घोड़ा), रवि (सूर्य), वह्नि (आग), अग्नि, इत्यादि इकारान्त पु लिङ्ग शब्दों के रूप कवि के समान होते हैं।

नोट —विधि (विधान तरकीब, के अर्थ में) हिन्दी म स्त्रीलिङ्ग है, किन्तु सस्कृत में यही शब्द पुलिङ्ग में है, इसका ध्यान रखना चाहिए।

(ख) पति शब्द के रूप बिलकुल भिन्न प्रकार से होते हैं

पति—स्वामी, मालिक, दूल्हा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पति	पती	पतय
स०	हे पते	हे पती	हे पतय
द्वि०	पतिम्	पती	पतीन्
तृ०	पत्या	पतिभ्याम्	पतिभि
च०	पत्ये	,,	पतिभ्य
प०	पत्यु	,,	,
ष०	,	पत्यो	पतीनाम्
स०	पत्यौ	,,	पतिषु

५३—औकारान्त पुलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
स०	हे ग्लौ	हे ग्लावौ	हे ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
ष०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौषु

और भी औकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान ते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
फलम्	फले	फलानि
हे फल	हे फले	हे फलानि

किन्तु जब पति शब्द किसी शब्द के साथ समास के अन्त में आता है तो उसके रूप कवि के ही समान होते हैं, जैसे —

भूपति—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भूपति	भूपती	भूपतय
स०	हे भूपते	हे भूपती	हे भूपतय
द्वि०	भूपतिम्	भूपती	भूपतीन्
तृ०	भूपतिना	भूपतिभ्याम्	भूपतिभि
च०	भूपतये	,,	भूपतिभ्य
प०	भूपते	,	,,
ष०	,,	भूपत्यो	भूपतीनाम्
स०	भूपतौ	,,	भूपतिषु

महीपति, गृहपति, नरपति, लोकपति, अधिपति, सुर... गजपति, गणपति (गणेश), जगत्पति, बृहस्पति, पृथ्वी... इत्यादि शब्दों के रूप भूपति के समान कवि शब्द की भाँति हो...

(ग) सखि (मित्र) शब्द के भी रूप बिलकुल भिन्न प्र... होते हैं, जैसे —

तृ०	राया	राभ्याम्	राभि
च०	राये	राभ्याम्	राभ्य
प०	राय	राभ्याम्	राभ्य
ष०	राय	रायो	रायाम्
स०	रायि	रायो	रासु

५२—ओकारान्त पुलिङ्ग

गो—साँड़, बैल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गौ	गावौ	गाव
स०	हे गौ	हे गावौ	हे गाव
द्वि०	गाम्	गावौ	गा
तृ०	गवा	गोभ्याम्	गोभि
च०	गवे	गोभ्याम्	गोभ्य
प०	गो	गोभ्याम्	गोभ्य
ष०	गो	गवो	गवाम्
स०	गवि	गवो	गोपु

समस्त ओकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप गो के समान होते हैं।

शुकी, पकी, सुश्री, शुद्धधी, परमधी के रूप भी सुधी के समान होते हैं।

(ग) सखी (सखायमिच्छतीति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथ०	सखा	सखायौ	सखाय
स०	हे सखी	हे सखायौ	हे सखाय
द्वि०	सखायम्	सखायौ	सख्य
तृ०	सख्या	सखीभ्याम्	सखीभि
च०	सख्ये	,,	सखीभ्य
प०	सख्यु	,,	,,
ष०	,,	सख्यो	सख्याम्
स०	सख्यि	,,	सखीषु

(घ) सखी (सखमिच्छतीति)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सखी	सख्यौ	सख्य
स०	हे सखी	हे सख्यौ	हे सख्य
द्वि०	सख्यम्	सख्यौ	सख्य

५३—औकारान्त पुलिङ्ग शब्द

ग्लौ—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ग्लौ	ग्लावौ	ग्लाव
स०	हे ग्लौ,	हे ग्लावौ	हे ग्लाव
द्वि०	ग्लावम्	ग्लावौ	ग्लाव
तृ०	ग्लावा	ग्लौभ्याम	ग्लौभि
च०	ग्लावे	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
प०	ग्लाव	ग्लौभ्याम्	ग्लौभ्य
ष०	ग्लाव	ग्लावो	ग्लावाम्
स०	ग्लावि	ग्लावो	ग्लौषु

और भी औकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप ग्लौ के समान होते हैं।

५४—अकारान्त नपुंसकलिङ्ग-शब्द

फल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	फलम्	फले	फलानि
स	हे फल	हे फले	हे फलानि

ष०	प्रध्य	प्रध्यो	प्रध्याम्
स०	प्रध्यि	,,	प्रधीषु

वेगी (फुर्ती से जानेवाला) तथा ऊजवी के रूप प्रधी के समान होते हैं।

उन्नी, ग्रामणी, सेनानी शब्दों के रूप भी प्रधी के समान होते हैं, केवल सप्तमी के एक वचन में उन्न्याम्, ग्रामण्याम्, सेनान्याम् ऐसे रूप हो जाते हैं।



(ख) सुधी—पण्डित, विद्वान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सुधीः	सुधियौ	सुधियः
सं०	हे सुधी	,,	,,
द्वि०	सुधियम्	,,	,,
तृ०	सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः
च०	सुधिये	,,	सुधीभ्यः
पं०	सुधियः	,,	,,
ष०	,,	सुधियोः	सुधियाम्
स०	सुधियि	,,	सुधीषु

द्वि०	फलम्	फले	फलानि
तृ०	फलेन	फलाभ्याम्	फलै.
च०	फलाय	फलाभ्याम्	फलेभ्य
प०	फलात्	फलाभ्याम्	फलेभ्य
ष०	फलस्य	फलयो	फलानाम्
स०	फले	फलयो	फलेपु

मित्र, धन, अरण्य (जंगल), मुख, कमल, कुसुम, पुष्प, पर्ण (पत्ता), नक्षत्र, पत्र (कागज या पत्ता), बीज, जल, तृण (घास), गगन, शरीर, पुस्तक, ज्ञान इत्यादि समस्त अकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दो के रुप फल के समान होते हैं।

५५—इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

(क) वारि—पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वारि	वारिणी	वारीणि
स०	हे वारि, हे वारे	हे वारिणी	हे वारीणि
द्वि०	वारि	वारिणी	वारीणि
तृ०	वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभि
च०	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्य
प०	वारिण	वारिभ्याम्	वारिभ्य

ष०	वारिण	वारिणो	वारीणाम्
स०	वारिणि	वारिणो	वारिषु

अस्थि (हड्डी), दधि (दही), सक्थि (जाँघ), अक्षि (आँख) को छोड़ कर समस्त इकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्दों के रूप वारि के समान होते हैं।

(ख) दधि—दही

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दधि	दधिनी	दधीनि
सं०	हे दधि, दधे	दधिनी	दधीनि
द्वि०	दधि	दधिनी	दधीनि
तृ०	दध्ना	दधिभ्याम्	दधिभिः
च०	दध्ने	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
प०	दध्नः	दधिभ्याम्	दधिभ्यः
ष०	दध्नः	दध्नोः	दध्नाम्
स०	दध्नि, दधनि	दध्नोः	दधिषु

६२—उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

धेनु—गाय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	धेनु	धेनू	धेनव
स०	हे धेनो	हे धेनू	हे धेनव
द्वि०	धेनुम्	धेनू	धेनू
तृ०	धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभि
च०	धेनवे, धेन्वै	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य
प०	धेनो, धेन्वा	धेनुभ्याम्	धेनुभ्य
ष०	धेनो, धेन्या	धेन्वो	धेनूनाम्
स०	धेनौ, धेन्वाम्	धेन्वो	धेनुषु

तनु (शरीर), रेणु [(धूलि) पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी], हनु [(ठुड्डी), पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग भी] इत्यादि सभी उकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप धेनु के समान होते हैं।

६३—ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

वधू—बहू

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वधू	वध्वौ	वध्व

अक्षि—आँख

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
सं०	हे अक्षि, अक्षे	हे अक्षिणी	हे अक्षीणि
द्वि०	अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि
तृ०	अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः
च०	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
प०	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
ष०	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
स०	अक्ष्णि, अक्षणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु

अस्थि और सक्थि के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

(ग) जब इकारान्त तथा उकारान्त विशेषण शब्दों का नपुसक लिङ्ग वाले संज्ञा शब्दों के साथ होता है तो उनके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी, सप्तमी विभक्तियों के एक वचन में और षष्ठी तथा सप्तमी के द्विवचन में विकल्प करके इकारान्त तथा उकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के समान होते हैं, जैसे—शुचि (पवित्र), गुरु (भारी)।

सं०	हे वधु	हे वध्वौ	हे वध्वः
द्वि०	वधूम्	वध्वौ	वधूः
तृ०	वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः
च०	वध्वै	,,	वधूभ्यः
प०	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
ष०	,,	वध्वोः	वधूनाम्
स०	वध्वाम्	,,	वधूषु

चमू (सेना), रज्जू (रस्सी), श्वश्रू (सास), कर्कन्धू (बेर) इत्यादि सभी ऊकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप वधू के समान होते हैं।

(क) भू—पृथ्वी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भूः	भुवौ	भुवः
सं०	हे भूः	हे भुवौ	हे भुवः
द्वि०	भुवम्	भुवौ	भुवः
तृ०	भुवा	भूभ्याम्	भूभिः
च०	भुवै, भुवे	भूभ्याम्	भूभ्यः
प०	भुवाः, भुवः	भूभ्याम्	भूभ्यः
ष०	भुवाः, भुवः	[illegible]	[illegible]
स०	भुवाम्, भुवि	[illegible]	[illegible]

शुचि (पवित्र)

एक वचन	द्विवचन	बहुवचन
शुचि	शुचिनी	शुचीनि
हे शुचि, शुचे	हे शुचिनी	हे शुचीनि
शुचि	शुचिनी	शुचीनि
शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभि
शुचये, शुचिने	"	शुचिभ्य
शुचे , शुचिन	शुचिभ्याम्	शुचिभ्य
" "	शुच्यो , शुचिनो	शुचीनाम्
शुचौ, शुचिनि	" "	शुचिपु

५६—उकारान्त नपुंसकलिङ्ग शब्द

वस्तु—चीज

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
हे वस्तु, हे वस्तो	हे वस्तुनी	हे वस्तूनि
वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि
वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभि

स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुलिङ्ग के समान होते हैं।
उदाहरणार्थ—नौ।

ओंकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नौ—नाव

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नौ	नावौ	नाव
सं०	हे नौ	हे नावौ	हे नाव
द्वि०	नावम्	नावौ	नाव
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभि
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्य
प०	नाव	नौभ्याम्	नौभ्य
ष०	नाव	नावो	नावाम्
स०	नावि	नावो	नौषु

इसी प्रकार द्यो (आकाश) तथा और भी औकारान्त स्त्रीलिङ्ग
होते हैं।

संज्ञाएँ

का क्रम सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार
लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

च०	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य
प०	वस्तुन	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्य
ष०	वस्तुन	वस्तुनो	वस्तूनाम्
स०	वस्तुनि	वस्तुनो	वस्तुषु

दारु (काठ), जानु (घुटना), जतु (लाख), जनु (कन्धे की सन्धि), तालु, मधु (शहद), [सानु (पर्वत की चोटी पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग भी] इत्यादि शब्दों के रूप वस्तु के समान होते हैं।

(क) उकारान्त विशेषण शब्दोंके रूप चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी सप्तमी विभक्तियों के एक वचन में तथा षष्ठी व सप्तमी के द्विवचन मे उकारान्त पुलिङ्ग शब्द के समान विकल्प करके होते हैं, जैसे-वहु (बहुत)।

वहु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	बहु	बहुनी	बहूनि
स०	हे बहु, बहो	हे बहुनी	हे बहूनि
द्वि०	बहु	बहुनी	बहूनि
तृ०	बहुना	बहुभ्याम्	बहुभि
च०	बहुने, बहवे	बहुभ्याम्	बहुभ्य

तृ०	मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभि
च०	मात्रे	,,	मातृभ्य
प०	मातु	,,	,,
ष०	,,	मात्रो	मातृणाम्
स०	मातरि	,,	मातृषु

यातृ (देवरानी), दुहितृ (लड़की) के रूप मातृ के समान होते हैं।

स्वसृ—बहिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्वसा	स्वसारौ	स्वसार
स०	हे स्वस	हे स्वसारौ	हे स्वसार
द्वि०	स्वसारम्	स्वसारौ	स्वसृ
तृ०	स्वस्रा	स्वसृभ्याम्	स्वसृभि
च०	स्वस्रे	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्य
प०	स्वसु	स्वसृभ्याम्	स्वसृभ्य
ष०	स्वसु	स्वस्रो	स्वसृणाम्
स०	स्वसरि	स्वस्रो	स्वसृषु

६५—ऐकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के तथा ओकारान्त स्त्रीलिङ्ग गो आदि शब्दों के रूप पुंलिङ्ग के समान होते हैं। ओकारान्त

०—भ्यो	बहुने	बहुभ्याम्	बहुभ्य
	बहुन	बह्वो, बहुनो	बहूनाम्
०,	बहुनि	बह्वो, बहुनो	बहुषु

(मृदु, कटु, लघु पटु इत्यादि के रूप होते हैं।

५७—ऋकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्द

, नेतृ, धातृ, रक्षितृ, इत्यादि शब्द विशेषण हैं, इसलिए प्रयोग तीनो लिङ्गो मे होता है। यहाँ पर नपुसकलिङ्ग के ।,खाए जाते हैं —

कर्तृ—करने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
०	{ हे कर्तृ { हे कर्तः	हे कर्तृणी	हे कर्तॄणि
०	कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि
०	{ कर्त्रा { कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभि
०	{ कर्त्रे { कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्य
०	{ कर्तुः { कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्य

ीलिङ्ग शब्दों के रूप भी पुलिङ्ग के समान होते हैं।
दाहरणार्थ—नौ।

औकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नौ—नाव

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नौ	नावौ	नाव
स०	हे नौ	हे नावौ	हे नाव
द्वि०	नावम्	नावौ	नाव
तृ०	नावा	नौभ्याम्	नौभि
च०	नावे	नौभ्याम्	नौभ्य
प०	नाव	नौभ्याम्	नौभ्य
ष०	नाव	नावो	नावाम्
स०	नावि	नावो	नौषु

इसी प्रकार द्यौ (आकाश) तथा और भी औकारान्त स्त्रीलिङ्ग
ब्दों के रूप होते हैं।

व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ

नोट—ऊपर स्वरान्त संज्ञाओं का क्रम सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार
लिङ्ग, नपुंसकलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग आदि लिङ्गानुसार दिया गया है। किन्तु

प०	कर्तुः / कर्तृणः	कर्त्रोः / कर्तृणोः	कर्तृणाम्
स०	कर्तरि	कर्त्रोः / कर्तृणोः	कर्तृषु

इसी प्रकार धातृ, नेतृ इत्यादि के भी रूप होते हैं।

५८—आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

विद्या

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विद्या	विद्ये	विद्याः
स०	हे विद्ये	हे विद्ये	हे विद्याः
द्वि०	विद्याम्	विद्ये	विद्याः
तृ०	विद्यया	विद्याभ्याम्	विद्याभिः
च०	विद्यायै	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
प०	विद्यायाः	विद्याभ्याम्	विद्याभ्यः
ष०	विद्यायाः	विद्ययोः	विद्यानाम्
स०	विद्यायाम्	विद्ययोः	विद्यासु

रमा (लक्ष्मी), बाला (स्त्री), निशा (रात), कन्या, ल
(स्त्री), भार्या (स्त्री), वडवा (घोड़ी), राधा, सुमित्रा,

व्यञ्जनान्त संज्ञाएँ सभी लिङ्गों में प्राय एकसी चलती हैं, इस लिए यहाँ वे वर्णक्रम से रक्खी गई हैं।

६६—चकारान्त शब्द

(क) पुलिङ्ग जलमुच्—बादल

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्रथमा	जलमुक्	जलमुचौ	जलमुच
स०	हे जलमुक्	हे जलमुचो	हे जलमुच
द्वि०	जलमुचम्	जलमुचौ	जलमुच
तृ०	जलमुचा	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भि
च०	जलमुचे	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
प०	जलमुच	जलमुग्भ्याम्	जलमुग्भ्य
ष०	जलमुच	जलमुचो	जलमुचाम्
स०	जलमुचि	जलमुचो	जलमुक्षु

सत्यवाच् आदि सभी चकारान्त शब्दों के रूप इसी प्रकार होते हैं। केवल प्राञ्च्, प्रत्यञ्च्, तिर्यञ्च्, उदञ्च् के रूपों में कुछ भेद होता है। ये सब शब्द अञ्च् (जाना) धातु से बने हैं।

सिल्या, कला इत्यादि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप विद्या समान होते हैं।

५९—इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

रुचि

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	रुचि	रुची	रुचय
स०	हे रुचे	हे रुची	हे रुचय
द्वि०	रुचिम्	रुची	रुची
तृ०	रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभि
च०	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्य
प०	रुच्या, रुचे	रुचिभ्याम्	रुचिभ्य.
ष०	रुच्या, रुचे	रुच्यो	रुचीनाम्
स०	रुच्याम्, रुचौ	रुच्यो	रुचिषु

धूलि (धूर), मति, बुद्धि, गति, शुद्धि, भक्ति, शक्ति, श्रुति, स्मृति, शान्ति, नीति, रीति, रात्रि, जाति, पङ्क्ति, गीति इत्यादि सभी इकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप रुचि के समान होते हैं।

प्राञ्च् (पूर्वी) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्च
स०	हे प्राङ्	हे प्राञ्चौ	हे प्राञ्च
द्वि०	प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राच
तृ०	प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भि
च०	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
पं०	प्राच	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्य
ष०	प्राच	प्राचो	प्राचाम्
स०	प्राचि	प्राचो	प्राक्षु

प्रत्यञ्च् (पश्चिमी) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्च
०	हे प्रत्यङ्	हे प्रत्यञ्चौ	हे प्रत्यञ्च
०	प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीच
	प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भि
	प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्य
	प्रतीच	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्य
	प्रतीच	प्रतीचो	प्रतीचाम्
	प्रतीचि	प्रतीचो	प्रत्यक्षु

६०—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नदी	नद्यौ	नद्यः
सं०	हे नदि	हे नद्यौ	हे नद्यः
द्वि०	नदीम्	नद्यौ	नदीः
तृ०	नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः
च०	नद्यै	,,	नदीभ्यः
पं०	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
ष०	,,	नद्योः	नदीनाम्
स०	नद्याम्	,,	नदीषु

"स्त्री" आदि कुछ शब्दों को छोड़कर सभी ईकारान्त स्त्रीलि
शब्दों के रूप नदी के समान होते हैं, जैसे—राज्ञी (रानी), गौ
पार्वती, जानकी, अरुन्धती, नटी, पृथ्वी, नन्दिनी, द्रौपदी, कैके
देवी, पाञ्चाली, त्रिलोकी, पञ्चवटी, अटवी (जंगल), गान्
कादम्बरी, कौमुदी (चन्द्रमा की रोशनी), माद्री, कुन्ती, देव
सावित्री, गायत्री, कमलिनी, नलिनी इत्यादि।

(क) केवल अवी (रजस्वला स्त्री), तरी (नाव), त
(वीणा), लक्ष्मी, स्तरी (धुआँ) के प्रथमा के एक वचन में
होता है ; जैसे —

तिर्यञ्च् (तिरछा जाने वाला) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः
स०	हे तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्च
द्वि०	तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्च
तृ०	तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भि
च०	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
प०	तिरश्च	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्य
ष०	तिरश्च	तिरश्चो	तिरश्चाम्
स०	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु

उदञ्च् (उत्तरी) शब्द

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्च
स०	हे उदङ्	हे उदञ्चौ	हे उदञ्च
द्वि०	उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीच
तृ०	उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भि
च०	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्य
प०	उदीच	उदग्भ्याम्	उदग्भ्य
ष०	उदीच	उदीचो	उदीचाम्
स०	उदीचि	उदीचो	उदक्षु

प्रथमा एक वचन —श्री, तरी, तन्त्री, लक्ष्मी, स्तरी ।

लक्ष्मी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	लक्ष्मी	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्य
स०	हे लक्ष्मि	हे लक्ष्म्यौ	हे लक्ष्म्य
द्वि०	लक्ष्मीम्	लक्ष्म्या	लक्ष्मी
तृ०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभि
च०	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्य
प०	लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्य
ष०	लक्ष्म्या	लक्ष्म्यो	लक्ष्मीणाम्
स०	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्यो	लक्ष्मीषु

स्त्री

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रिय
स०	हे स्त्रि	हे स्त्रियौ	हे स्त्रिय
द्वि०	स्त्रियम् स्त्रीम्	स्त्रियौ	स्त्रिय, स्त्री
तृ०	स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभि

(ख) स्त्रीलिङ्ग वाच्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वाक्, वाग्	वाचौ	वाचः
सं०	हे वाक्, हे वाग्	हे वाचौ	हे वाचः
द्वि०	वाचम्	वाचौ	वाचः
तृ०	वाचा	वाग्भ्याम्	वाग्भिः
च०	वाचे	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
पं०	वाचः	वाग्भ्याम्	वाग्भ्यः
ष०	वाचः	वाचोः	वाचाम्
स०	वाचि	वाचोः	वाक्षु

रुच्, त्वच् (चमड़ा, पेड़ की छाल), शुच् (सोच), ऋच् (ऋग्वेद के मन्त्र) इत्यादि सभी चकारान्त स्त्री लिङ्ग शब्दों के रूप वाच् के तरह होते हैं।

६७—जकारान्त शब्द

(क) पु० ऋत्विज् (पुजारी)

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	ऋत्विक्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः
सं०	हे ऋत्विक्	हे ऋत्विजौ	हे ऋत्विजः
द्वि०	ऋत्विजम्	ऋत्विजौ	ऋत्विजः

च०	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्
प०	स्त्रियाः	,,
ष०	,,	स्त्रियोः
स०	स्त्रियाम्	,,

६१—ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्द

श्री—लक्ष्मी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	श्री	श्रियौ	श्रिय
सं०	हे श्री	हे श्रियौ	हे श्रिय
द्वि०	श्रियम्	श्रियौ	श्रिय
तृ०	श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभि
च०	श्रियै श्रिये	,	श्रीभ्य
प०	श्रिया , श्रिय	,,	,,
ष०	,, ,	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रिया
स०	श्रियाम्, श्रियि	,,	श्रीषु

भी (डर), ह्री (लज्जा), धी (बुद्धि), सुश्री इत्यादि के रू श्री के समान होते हैं।

तृ०	ऋत्विजा	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भि
च०	ऋत्विजे	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्य
प०	ऋत्विज	ऋत्विग्भ्याम्	ऋत्विग्भ्य
ष०	ऋत्विज	ऋत्विजो:	ऋत्विजाम्
स०	ऋत्विजि	ऋत्विजो	ऋत्विक्षु

भूभुज् (राजा), हुतभुज् (अग्नि), भिषज् (वैद्य), वणिज् (बनिया), पयोमुच् (बादल) के रूप ऋत्विज् के समान होते हैं

भिषज्—वैद्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भिषक्	भिषजा	भिषज
स०	हे भिषक्	हे भिषजौ	हे भिषज
द्वि०	भिषजम्	भिषजौ	भिषज
तृ०	भिषजा	भिषग्भ्याम्	भिषग्भि

इत्यादि ।

वणिज्—बनिया

प्र०	वणिक्	वणिजौ	वणिज
स०	हे वणिक्	हे वणिजा	हे वणिज:
द्वि०	वणिजम्	वणिजौ	वणिज,
तृ०	वणिजा	वणिग्भ्याम्	वणिग्भि

इत्यादि ।

पयोमुच्—बादल

प्र०	पयोमुक्	पयोमुचौ	पयोमुच

स०	हे पयोमुक्	हे पयोमुचौ	हे पयोमुच
द्वि०	पयोमुचम्	पयोमुचौ	पयोमुच
तृ०	पयोमुचा	पयोमुग्भ्याम्	पयोमुग्भि

इत्यादि ।

परिव्राज्—सन्यासी

	एकवचन	द्विवचा	बहुवचन
प्र०	परिव्राट्	परिव्राजौ	परिव्रान
स०	हे परिव्राट्	हे परिव्राजौ	हे परिव्राज
द्वि०	परिव्राजम्	परिव्राजौ	परिव्राज
तृ०	परिव्राजा	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भि
च०	परिव्राजे	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्य
प०	परिव्राज	परिव्राड्भ्याम्	परिव्राड्भ्य
प०	परिव्राज	परिव्राजो	परिव्राजाम्
स०	परिव्राजि	परिव्राजो	परिव्राट्सु

इसी प्रकार सम्राज् (महाराजा), विश्वसृज् (सन्सार का रचने ा), विराज् (बडा) के रूप होते हैं ।

सम्राज्

प्र०	सम्राट्	सम्राजौ	सम्राज
द्वि०	सम्राजम्	सम्राजौ	सम्रान

ष०	दृषद्	दृषदो	दृषदाम्
स०	दृषदि	दृषदो	दृषत्सु

शरद्, आपद्, विपद्, सम्पद् (धन), संसद् (सभा) के दृषद् के समान होते हैं।

(ख) नपु० हृद्—हृदय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हृत्	हृदी	हृन्दि
सं०	हे हृत्	हे हृदी	हे हृन्दि
द्वि०	हृत्	हृदी	हृन्दि
तृ०	हृदा	हृद्भ्याम्	हृद्भि
च०	हृदे	हृद्भ्याम्	हृद्भ्य
पं०	हृद	हृद्भ्याम्	हृद्भ्य
ष०	हृद	हृदा	हृदाम्
स०	हृदि	हृदो	हृत्सु

७०—धकारान्त शब्द

स्त्री० समिध्—यज्ञ की लकड़ी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	समित्	समिधौ	समिध
सं०	हे समित्	हे समिधौ	हे समिध

तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान।

विराज्

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्र०	विराट्	विराजौ	विराजः
द्वि०	विराजम्	विराजौ	विराजः
तृ०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भिः

इत्यादि परिव्राज् के समान।

(ख) स्त्री० स्रज्—माला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्रक्	स्रजौ	स्रजः
स०	हे स्रक्	हे स्रजौ	हे स्रजः
द्वि०	स्रजम्	स्रजौ	स्रजः
तृ०	स्रजा		ग्भिः
च०	स्रजे		ग्भ्यः
प०			
ष०		स्र०	
स०			

स्रज् (... के

याता), हृदयन्तुद् (हृदय को पीड़ा पहुँचानेवाला) दकारान्त पुंलिङ्ग शब्दों के रूप सुहृद् के समान होते हैं।

पद्—पैर

द्वि०			पद
तृ०	पदा	पद्भ्याम्	पद्भि
च०	पदे	पद्भ्याम्	पद्भ्य
पं०	पद	पद्भ्याम्	पद्भ्य
ष०	पद	पदो	पदाम्
स०	पदि	पदो	पत्सु

नोट—दकारान्त पद् शब्द के प्रथम पाँच रूप नहीं होते। आवश्यक पड़ने पर अकारान्त, पद, के रूपों का प्रयोग होता है।

(क) स्त्री० दृषद्—पत्थर, चट्टान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दृषद्	दृषदौ	दृषद
स०	हे दृषद्	हे दृषदौ	हे दृषद
द्वि०	दृषदम्	दृषदौ	दृषदं
तृ०	दृषदा	दृषद्भ्याम्	दृषद्भि
च०	दृषदे	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्य
पं०	दृषद्	दृषद्भ्याम्	दृषद्भ्यः

(ग) नपुं० असृज्—लोहू

प्र०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
सं०	हे असृक्	हे असृजी	हे असृञ्जि
द्वि०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
तृ०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भि
च०	असृजे	असृग्भ्याम्	असृग्भ्य
पं०	असृज	असृग्भ्याम्	असृग्भ्य
ष०	असृज	असृजो	असृजाम्
स०	असृजि	असृजो	असृक्षु

सभी जकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप असृज् के समान हैं।

६८—तकारान्त शब्द

(क) पुलिङ्ग भूभृत्—राजा, पहाड़

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृत
०	हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृत
०	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृत
०	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भि

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), ब्रह्मन् (ब्रह्मा), सुशर्मन् (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का नाम), कृतवर्मन् (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान होते हैं।

नोट—आत्मा शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, किन्तु संस्कृत में यह शब्द पुंलिङ्ग है, यह ध्यान में रखना चाहिए।

पु० राजन्—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः

तृ०	सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भि

इत्यादि परिव्राज् के समान।

विराज्

	एकवचन	द्विवचन	बहु वचन
प्र०	विराट्	विराजौ	विराज.
द्वि०	विराजम्	विराजौ	विराज
तृ०	विराजा	विराड्भ्याम्	विराड्भि

इत्यादि परिव्राज् के समान।

(ख) स्त्री० स्रज्—माला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	स्रक्	स्रजौ	स्रज
स०	हे स्रक्	हे स्रजौ	हे स्रज
द्वि०	स्रजम्	स्रजौ	स्रज
तृ०	स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भि
च०	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्य
प०	स्रज	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्य
ष०	स्रज	स्रजो	स्रजाम्
स०	स्रजि	स्रजो	स्रक्षु

रुज् (रोग) के भी रूप स्रज् के समान होते हैं।

		समिधौ	समिध
द्वि०	समिधम्	समिधौ	समिधि
तृ०	समिधा	समिद्भ्याम्	समिद्भि
च०	समिधे	समिद्भ्याम्	समिद्भ्य
प०	समिध	समिद्भ्याम्	समिद्भ्य
ष०	समिध	समिधो	समिधाम्
स०	समिधि	समिधो	समित्सु

वीरुध् (लता), क्षुध् (भूख), क्रुध् (क्रोध) युध् (… इत्यादि सभी धकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों के रूप समिध् के … होते हैं।

७४—नकारान्त शब्द

पु० आत्मन्—आत्मा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आत्मा	आत्मानौ	आत्मान
स०	हे आत्मन्	हे आत्मानौ	हे आत्मान
द्वि०	आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मन
तृ०	आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभि
च०	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य
प०	आत्मन	आत्मभ्याम्	आत्मभ्य
ष०	आत्मन	आत्मनो	आत्मनाम्
स०	आत्मनि	आत्मनो	आत्मसु

(ग) नपुं० असृज्—लोहू

प्र०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
सं०	हे असृक्	हे असृजी	हे असृञ्जि
द्वि०	असृक्	असृजी	असृञ्जि
तृ०	असृजा	असृग्भ्याम्	असृग्भिः
च०	असृजे	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
पं०	असृजः	असृग्भ्याम्	असृग्भ्यः
ष०	असृजः	असृजोः	असृजाम्
स०	असृजि	असृजोः	असृक्षु

सभी जकारान्त नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप असृज् के समान ... हैं।

६८–तकारान्त शब्द

(क) पुलिङ्ग भूभृत्—राजा, पहाड़

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	भूभृत्	भूभृतौ	भूभृतः
०	हे भूभृत्	हे भूभृतौ	हे भूभृतः
०	भूभृतम्	भूभृतौ	भूभृतः
०	भूभृता	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भिः

अध्वन् (मार्ग), अश्मन् (पत्थर), यज्वन् (यज्ञ करने वाला), (ब्रह्मा), सुशर्मन् (महाभारत की लड़ाई में एक योद्धा का), कृतवर्मन् (एक योद्धा का नाम) के रूप आत्मन् के समान ते हैं।

नोट—आत्मा शब्द हिन्दी में स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त होता है, किन्तु कृत में यह शब्द पुंलिङ्ग है, यह ध्यान में रखना चाहिए।

पु० राजन्—राजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	राजा	राजानौ	राजानः
सं०	हे राजन्	हे राजानौ	हे राजानः
द्वि०	राजानम्	राजानौ	राज्ञः
तृ०	राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः
च०	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
पं०	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
ष०	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
स०	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द राज्ञी (ईकारान्त) है जिसके नदी के समान चलते हैं।

च०	भूभृते	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्य
प०	भूभृत	भूभृद्भ्याम्	भूभृद्भ्य
ष०	भूभृत	भूभृतो	भूभृताम्
स०	भूभृति	भूभृतो	भूभृत्सु

महीभृत् (राजा, पहाड़), दिनकृत् (सूर्य), शशभृत् (चन्द्रमा), परभृत् (कोयल), मरुत् (वायु), विश्वजित् (संसार का जीतने वाला या एक प्रकार का यज्ञ) के रूप भूभृत् के समान होते हैं।

श्रीमत्—भाग्यवान्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्रीमान्	श्रीमन्तौ	श्रीमन्त
स०	हे श्रीमन्	हे श्रीमन्तौ	हे श्रीमन्त
द्वि०	श्रीमन्तम्	श्रीमन्तौ	श्रीमत
तृ०	श्रीमता	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भि
च०	श्रीमते	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्य
पं०	श्रीमत	श्रीमद्भ्याम्	श्रीमद्भ्य
ष०	श्रीमत	श्रीमतो	श्रीमताम्
स०	श्रीमति	श्रीमतो	श्रीमत्सु

धीमत् (बुद्धिमान्), बुद्धिमत्, भानुमत् (चमकने वाला), सानुमत् (पहाड़), धनुष्मत् (धनुर्धारी), अंशुमत् (सूर्य), विद्याव

पु० महिमन्—बड़प्पन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महिमा	महिमानौ	महिमानः
स०	हे महिमन्	हे महिमानौ	हे महिमानः
द्वि०	महिमानम्	महिमानौ	महिम्नः
तृ०	महिम्ना	महिमभ्याम्	महिमभिः
च०	महिम्ने	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
प०	महिम्नः	महिमभ्याम्	महिमभ्यः
ष०	महिम्नः	महिम्नोः	महिम्नाम्
स०	महिम्नि / महिमनि	महिम्नोः	महिमसु

मूर्धन् (शिर), सीमन् [(चौहद्दी) स्त्रीलिङ्ग], (बड़प्पन), लघिमन् (छोटापन), अणिमन् (छोटापन), (सफेदी), कालिमन् (कालापन), द्रढिमन् (मजबूती), अ... इत्यादि समस्त अन्नन्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप महिमन् के होते हैं।

नोट – हिन्दी में महिमा, कालिमा, नीलिमा आदि शब्द स्त्रीलिङ्ग प्रयुक्त किए जाते हैं किन्तु संस्कृत में पुलिङ्ग में, इसका ध्यान चाहिए।

(धैर्यवाला), बलवत् (बलवान्), भगवत् (पूज्य), भाग्यवत् (भाग्यवान्), गतवत् (गया हुआ), उक्तवत् (बोल चुका हुआ), श्रुतवत् (सुन चुका हुआ) के रूप श्रीमत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में इनके जोड़ के प्रातिपदिक ई प्रत्यय लगाकर श्रीमती, बुद्धिमती आदि बनते हैं और इनके रूप ईकारान्त नदी शब्द के समान चलते हैं।

भवत्—आप

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भवान्	भवन्तौ	भवन्त
स०	हे भवन्	हे भवन्तौ	हे भवन्त
द्वि०	भवन्तम्	भवन्तौ	भवत
तृ०	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भि
च०	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्य
प०	भवत	भवद्भ्याम्	भवद्भ्य
ष०	भवत	भवतो	भवताम
स०	भवति	भवतो	भवत्सु

इसीसे स्त्रीलिङ्ग भवती शब्द बनता है।

पु० युवन्—जवान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	युवा	युवानौ	युवानः
०	हे युवन्	हे युवानौ	हे युवानः
०	युवानम्	युवानौ	यूनः
०	यूना	युवभ्याम्	युवभिः
०	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
०	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
०	यूनः	यूनोः	यूनाम्
०	यूनि	यूनोः	युवसु

सके जो॰ का स्त्रीलिङ्ग शब्द युवती है जिसके रूप नदी के
। चलते हैं।

पु० श्वन्—कुत्ता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
०	श्वा	श्वानौ	श्वानः
०	हे श्वन्	हे श्वानौ	हे श्वानः
०	श्वानम्	श्वानौ	शुनः
०	शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः
०	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः

महत्–बड़ा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	महान्	महान्तौ	महान्त
स०	हे महन्	हे महान्तौ	हे महान्त
द्वि०	महान्तम्	महान्तौ	महत
तृ०	महता	महद्भ्याम्	महद्भि
च०	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्य
५०	महत	महद्भ्याम्	महद्भ्य
ष०	महत	महतो	महताम्
स०	महति	महतो	महत्सु

इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द महती है।

पठत्—पढ़ता हुआ

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पठन्	पठन्तौ	पठन्त
स०	हे पठन्	हे पठन्तौ	हे पठन्त
द्वि०	पठन्तम्	पठन्तौ	पठत
तृ०	पठता	पठद्भ्याम	पठद्भि
च०	पठते	पठद्भ्याम्	पठद्भ्य
पं०	पठत	पठद्भ्याम्	पठद्भ्य
ष०	पठत	पठतो	पठताम्
स०	पठति	पठतोः	पठत्सु

प०	शुन	श्वभ्याम्	श्वभ्य
ष०	शुन	शुनो	शुनाम्
स०	शुनि	शुनो	श्वसु

पु० अर्वन्—घोड़ा, इन्द्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्त
स०	हे अर्वन्	हे अर्वन्तौ	हे अर्वन्त
द्वि०	अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वत
तृ०	अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भि
च०	अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्य
प०	अर्वत	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्य
ष०	अर्वत	अर्वतो	अर्वताम्
स०	अर्वति	अर्वतो	अर्वत्सु

पु० मघवन्—इन्द्र

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मघवा	मघवानौ	मघवान
स०	हे मघवन्	हे मघवानौ	हे मघवान
द्वि०	मघवानम्	मघवानौ	मघोन

धावत् (दौड़ता हुआ), गच्छत् (जाता हुआ), वदत् (बोलता हुआ), पश्यत् (देखता हुआ) गृह्णत् (लेता हुआ), पतत् (गिरता हुआ), शोचत् (सोचता हुआ), पिबत् (पीता हुआ), भवत् (होता हुआ) इत्यादि सभी शतृ प्रत्ययान्त पुल्लिङ्ग शब्दों के रूप पठत् के समान होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में पठन्ती, धावन्ती आदि होते हैं और रूप नदी के समान चलते हैं।

दत्—दाँत

द्वि०			दतः
तृ०	दता	दद्भ्याम्	दद्भिः
च०	दते	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
पं०	दतः	दद्भ्याम्	दद्भ्यः
ष०	दतः	दतोः	दताम्
स०	दति	दतोः	दत्सु

नोट—इस शब्द के प्रथम पाँच रूप संस्कृत में नहीं पाए जाते, उनके स्थान पर अकारान्त दन्त शब्द के रूपों का प्रयोग होता है।

(ग) स्त्रीलिङ्ग सरित्—नदी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सरित्	सरितौ	सरितः
सं०	हे सरित्	हे सरितौ	हे सरितः

तृ०	मघोना	मघवभ्याम्	मघवभि
च०	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्य
प०	मघोन	मघवभ्याम्	मघवभ्य
ष०	मघोन	मघोनो	मघोनाम्
स०	मघोनि	मघोनो	मघवसु

मघवन् का रूप विकल्प करके इस प्रकार भी होता है —

प्र०	मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्त
स०	हे मघवन्	हे मघवन्तौ	हे मघवन्त
द्वि०	मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवत
तृ०	मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भि
च०	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य
प०	मघवत	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्य
ष०	मघवत	मघवतो	मघवताम्
स०	मघवति	मघवतो	मघवत्सु

पु० पूषन्—सूर्य

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूषा	पूषणौ	पूषण
स०	हे पूषन्	हे पूषणौ	हे पूषण
द्वि०	पूषणम्	पूषणौ	पूष्ण
तृ०	पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभि

द्वि०	सरितम्	सरितौ	सरित
तृ०	सरिता	सरिद्भ्याम्	सरिद्भि
च०	सरिते	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य
प०	सरित	सरिद्भ्याम्	सरिद्भ्य
ष०	सरित	सरितो	सरिताम्
स०	सरिति	सरितो	सरित्सु

विद्युत् (बिजली), योषित् (स्त्री) के रूप सरित् के स चलते हैं।

(ग) नपु० जगत्—ससार

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	जगत् जगद्	जगती	जगन्ति
स०	हे जगत्, हे जगद्	हे जगती	हे जगन्ति
द्वि०	जगत्	जगती	जगन्ति
तृ०	जगता	जगद्भ्याम्	जगद्भि
च०	जगते	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य
प०	जगत	जगद्भ्याम्	जगद्भ्य
ष०	जगत	जगतो	जगताम्
स०	जगति	जगतो	जगत्सु

श्रीमत्, भवत् (होता हुआ), तथा और भी तकारान्त सकलिङ्ग शब्दों के रूप जगत् के समान होते हैं।

च०	पूष्णे	पूषभ्याम्	पूषभ्य
प०	पूष्ण	पूषभ्याम्	पूषभ्य
ष०	पूष्ण	पूष्णोः	पूष्णाम्
स०	पूष्णि, पूषणि	पूष्णो	पूषसु

पु० हस्तिन्—हाथी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हस्ती	हस्तिनौ	हस्तिन
स०	हे हस्तिन्	हे हस्तिनौ	हे हस्तिन
द्वि०	हस्तिनम्	हस्तिनौ	हस्तिन
त०	हस्तिना	हस्तिभ्याम्	हस्तिभि
च०	हस्तिने	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्य
प०	हस्तिन	हस्तिभ्याम्	हस्तिभ्य
ष०	हस्तिन	हस्तिनो	हस्तिनाम्
स०	हस्तिनि	हस्तिनो	हस्तिषु

स्वामिन्, करिन् (हाथी), गुणिन् (गुणी), मन्त्रिन् (मन्त्री), शशिन् (चन्द्रमा), पक्षिन् (पक्षी, चिड़िया), धनिन् (धनी), वाजिन् (घोड़ा), तपस्विन् (तपस्वी), एकाकिन् (अकेला), बलिन् (बली), सुखिन् (सुखी), सत्यवादिन् (सच बोलने वाला) साधिन् इत्यादि इन् में अन्त होनेवाले शब्दों के रूप हस्तिन् के समान होते हैं।

इन्नन्त शब्दों के जोड़ के स्त्रीलिङ्ग शब्द ईकार जोड़ कर
(स्तिनी, एकाकिनी, भाविनी आदि ईकारान्त होते हैं जिनके रूप
(दी के समान चलते हैं।

पथिन् शब्द के रूपों में जो भेद होता है वह नीचे दिखाया
(जाता है —

पुलिङ्ग पथिन्—मार्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पन्था	पन्थानौ	पन्थान
स०	हे पन्था	हे ,,	हे पन्थान
द्वि०	पन्थानम्	पन्थानौ	पथ
तृ०	पथा	पथिभ्याम्	पथिभि
च०	पथे	पथिभ्याम्	पथिभ्य
प०	पथ	पथिभ्याम्	पथिभ्य
ष०	पथ	पथो	पथाम्
स०	पथि	पथो	पथिषु

(क) स्त्री० सीमन्—चौहद्दी

सीमन् के रूप महिमन् के समान होते हैं, जैसे —

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सीमा	सीमानौ	सीमान
स०	हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमान

स० आ० प० ...

निशे	निज्भ्याम् / निड्भ्याम्	निज्भ्य / निड्भ्य
निश	निज्भ्याम् / निड्भ्याम्	निज्भ्य / निड्भ्य
निश	निशो	निशाम्
निशि	निशो	निक्षु / निट्सु / निट्त्सु

७७—षकारान्त शब्द

पु० द्विष्—शत्रु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
	द्विट्	द्विषौ	द्विष
	हे द्विट्	हे द्विषौ	हे द्विष
०	द्विषम्	द्विषौ	द्विष
०	द्विषा	द्विड्भ्याम्	द्विड्भि
०	द्विषे	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्य
०	द्विष	द्विड्भ्याम्	द्विड्भ्य
०	द्विष	द्विषो	द्विषाम्
००	द्विषि	द्विषो	द्विट्सु

द्वि०	सीमानम्	सीमानौ	सीम्न
तृ०	सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभि
च०	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्य
प०	सीम्न	सीमभ्याम्	सीमभ्य
ष०	सीम्न	सीम्नो	सीम्नाम्
स०	सीम्नि, सीमनि	सीम्नो	सीमसु

(ख) नपु० नामन्—नाम

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
स०	हे नाम, हे नामन्	हे नाम्नी, नामनी	हे नामानि
द्वि०	नाम	नाम्नी, नामनी	नामानि
तृ०	नाम्ना	नामभ्याम्	नामभि
च०	नाम्ने	नामभ्याम्	नामभ्य
प०	नाम्न	नामभ्याम्	नामभ्य
ष०	नाम्न	नाम्नो	नाम्नाम्
स०	नाम्नि, नामनि	नाम्नो	नामसु

धामन् (घर, चमक), व्योमन् (आकाश), सामन् (स वेद का मन्त्र), प्रेमन् (प्यार), दामन् (रस्सी) के रूप नामन् समान होते हैं।

स्त्री० प्रावृष्—वर्षा ऋतु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	प्रावृट्, प्रावृड्	प्रावृषौ	प्रावृषः
सं०	हे प्रावृट्, प्रावृड्	हे प्रावृषौ	हे प्रावृषः
द्वि०	प्रावृषम्	प्रावृषौ	प्रावृषः
तृ०	प्रावृषा	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भिः
च०	प्रावृषे	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
पं०	प्रावृषः	प्रावृड्भ्याम्	प्रावृड्भ्यः
ष०	प्रावृषः	प्रावृषोः	प्रावृषाम्
स०	प्रावृषि	प्रावृषोः	प्रावृट्सु

७८—सकारान्त शब्द

पु० चन्द्रमस्—चन्द्रमा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चन्द्रमाः	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
सं०	हे चन्द्रमः	हे चन्द्रमसौ	हे चन्द्रमसः
द्वि०	चन्द्रमसम्	चन्द्रमसौ	चन्द्रमसः
तृ०	चन्द्रमसा	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभिः
च०	चन्द्रमसे	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
पं०	चन्द्रमसः	चन्द्रमोभ्याम्	चन्द्रमोभ्यः
ष०	चन्द्रमसः	चन्द्रमसोः	चन्द्रमसाम्
स०	चन्द्रमसि	चन्द्रमसोः	चन्द्रमःसु

नपु० चर्मन्—चमड़ा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
स०	हे चर्म, हे चर्मन्	हे चर्मणी	हे चर्माणि
द्वि०	चर्म	चर्मणी	चर्माणि
तृ०	चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभि
च०	चर्मणे	चर्मभ्याम्	चर्मभ्य
प०	चर्मण	चर्मभ्याम्	चर्मभ्य
ष०	चर्मण	चर्मणो	चर्मणाम्
स०	चर्मणि	चर्मणो	चर्मसु

पर्वन् (पौर्णमासी, या अमावास्या या त्योहार), ब्रह्मन् (ब्रह्म), वर्मन् (कवच, जिरह बख्तर), जन्मन् (जन्म), वर्त्मन् (रास्ता), शर्मन् (सुख) के रूप चर्मन् के समान होते हैं।

नपु० अहन्—दिन

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अह	अह्नी, अहनी	अहानि
स०	हे अह	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि
द्वि०	अह	अह्नी, अहनी	अहानि
तृ०	अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभि
च०	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्य

दिवौकस् (देवता), महौजस् (बड़ा तेजवाला), वेधस् (ब्रह्मा), सुमनस् (अच्छा चित्त वाला), महायशस् (बड़ा यशस्वी), महातेजस् (बड़ी कान्ति वाला), विशालवक्षस् (बड़ी छाती वाला), दुर्वासस् (दुर्वासा—बुरे कपड़े वाला), इतम् इत्यादि सभी सकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के रूप चन्द्रमस् के समान होते हैं।

पु० मास्—महीना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०			मास
तृ०	मासा	माभ्याम्	माभि
च०	मासे	माभ्याम्	माभ्य
प०	मास	माभ्याम्	माभ्य
ष०	मास	मासो	मासाम्
स०	मासि	मासो'	मा सु / मास्सु

पु० पुम्स्—पुरुष

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पुमान्	पुमांसौ	पुमांस
स०	हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांस
द्वि०	पुमांसम्	पुमांसौ	पुंस

पं०	अह्न	अहोभ्याम्	अहोभ्य
ष०	अह्न	अह्नो	अह्नाम्
स०	अह्नि, अहनि	अह्नो	अह सु, अहस्सु

नपु० भाविन्—होने वाला

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	भावि	भाविनी	भावीनि
स०	हे भावि	हे भाविनी	हे भावीनि
द्वि०	भावि	भाविनी	भावीनि
तृ०	भाविना	भाविभ्याम्	भाविभि
च०	भाविने	भाविभ्याम्	भाविभ्य
पं०	भाविन	भाविभ्याम्	भाविभ्य
ष०	भाविन	भाविनो	भाविनाम्
स०	भाविनि	भाविनो	भाविषु

इसी प्रकार सभी इन्नन्त नपुसक लिङ्ग शब्दों के रूप होते

७२—पकारान्त शब्द

स्त्री० अप्-पानी

अप् के रूप केवल बहुवचन में होते हैं —

	बहुवचन
प्र०	आप
स०	हे आप

तृ०	पुसा	पुम्भ्याम्	पुम्भि
च०	पुसे	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
प०	पुस	पुम्भ्याम्	पुम्भ्य
ष०	पुंस	पुसो	पुसाम्
स०	पुसि	पुसो	पुसु

पु० विद्वस्—विद्वान्

	ए०व०	द्विव०	ब०व०
प्र०	विद्वान्	विद्वासौ	विद्वास
स०	हे विद्वन्	हे विद्वासौ	हे विद्वास
द्वि०	विद्वासम्	विद्वासौ	विदुष
तृ०	विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भि
च०	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
प०	विदुष	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्य
ष०	विदुष	विदुषो	विदुषाम्
स०	विदुषि	विदुषो	विद्वत्सु

वस् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप इसी प्रकार चलते हैं।
इसके जोड़ का स्त्रीलिङ्ग शब्द "विदुषी" है, जिसके रूप नदी के समान चलते हैं।

पु० लघीयस्—उससे छोटा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	लघीयान्	लघीयासौ	लघीयास
स०	हे लघीयन्	हे लघीयासौ	हे लघीयास

स्त्री० पुर्—नगर

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पूः	पुरौ	पुरः
स०	हे पूः	हे पुरौ	हे पुरः
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुरः
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भिः
च०	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
पं०	पुरः	पूर्भ्याम्	पूर्भ्यः
ष०	पुरः	पुरोः	पुराम्
स०	पुरि	पुरोः	पूर्षु

धुर् (धुरा) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

७५—वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्—आकाश, स्वर्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्यौः	दिवौ	दिवः
स०	हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिवः
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः
च०	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः

द्वि०	लघीयासम्	लघीयासौ	लघीयस
तृ०	लघीयसा	लघीयोभ्याम्	लघीयोभि
च०	लघीयसे	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्य
प०	लघीयम	लघीयोभ्याम्	लघीयोभ्य
ष०	लघीयस	लघीयसो	लघीयमाम्
स०	लघीयसि	लघीयसो	लघीय सु, लघीयस्सु

श्रेयस्, गरीयस् (अधिक वडा,) द्रढीयस् (अधिक मजबूत), द्राघीयस् (अधिक लम्बा), प्रथीयस् (अधिक मोटा या वडा), इत्यादि ईयस् प्रत्यय से बने हुए पुलिङ्ग शब्दों के रूप लघीयस् के समान होते हैं।

इनके जोड वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द श्रेयसी, गरीयसी, द्रढीयसी, द्राघीयसी इत्यादि "ई" जोडकर बनते हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

पु० श्रेयस्—अधिक प्रशंसनीय

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	श्रेयान्	श्रेयासौ	श्रेयास
स०	हे श्रेयन्	हे श्रेयासौ	हे श्रेयास
द्वि०	श्रेयासम्	श्रेयासौ	श्रेयस
तृ०	श्रेयसा	श्रेयाभ्याम्	श्रेयोभि
च०	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्य

७४—रकारान्त शब्द

नपु० वार—पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	वा	वारी	वारि
द्वि०	वा	वारी	वारि
तृ०	वारा	वार्भ्याम्	वार्भि
च०	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्य
प०	वार	"	,
ष०	"	वारो·	वाराम्
स०	वारि	"	वार्षु

(क) स्त्री० गिर्—वाणी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	गी	गिरौ	गिर
स०	हे गी	हे गिरौ	हे गिर
द्वि०	गिरम्	गिरौ	गिर
तृ०	गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भि
च०	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्य
प०	गिर	गीर्भ्याम्	गीर्भ्य
ष०	गिर	गिरो	गिराम्
स०	गिरि	गिरो	गीर्षु

प०	श्रेयस	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्य
ष०	श्रेयस	श्रेयसो	श्रेयसाम्
स०	श्रेयसि	श्रेयसो	श्रेयस्सु श्रेयःसु

पु० दोस्—भुजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दो	दोषौ	दोष
स०	हे दो	हे दोषौ	हे दोष
द्वि०	दो	दोषौ	दोष, दो
तृ०	दोषा दोष्णा	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भि दोषभि
च०	दोषे दोष्णे	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्य दोषभ्य
प०	दोष दोष्ण	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्य दोषभ्य
ष०	दोष दोष्ण	दोषो दोष्णो	दोषाम् दोष्णाम्
स०	दोषि दोष्णि दोषणि	दोषो दोष्णो	दोष्षु दो पु दोषषु

(क) स्त्री० अप्सरस्-अप्सरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अप्सरा	अप्सरसौ	अप्सरस

स्त्री० पुर्—नगर

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पू	पुरौ	पुर
स०	हे पू	हे पुरौ	हे पुर
द्वि०	पुरम्	पुरौ	पुर
तृ०	पुरा	पूर्भ्याम्	पूर्भि
च०	पुरे	पूर्भ्याम्	पूर्भ्य
प०	पुर	पूर्भ्याम्	पूर्भ्य
ष०	पुर	पुरो	पुराम्
स०	पुरि	पुरो	पूर्षु

धुर् (धुरा) के रूप भी इसी प्रकार होते हैं।

७५—वकारान्त शब्द

स्त्री० दिव्—आकाश, स्वर्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	द्यौ	दिवौ	दिव
स०	हे द्यौ	हे दिवौ	हे दिव
द्वि०	दिवम्	दिवौ	दिव
तृ०	दिवा	द्युभ्याम्	द्युभि
च०	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्य

स०	हे अप्सर	हे अप्सरसौ	हे अप्सरस
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरस
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभि
च०	अप्सरसे	,,	अप्सरोभ्य
प०	अप्सरस	,,	अप्सरोभ्य
ष०	,,	अप्सरसो	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	,,	अप्सरःसु अप्सर सु

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन में ही होता है।

स्त्री० आशिस्–आशीर्वाद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आशी	आशिषौ	आशिष
स०	हे आशी	हे आशिषौ	हे आशिष
द्वि०	आशिषम्	आशिषौ	आशिष
तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भि
च०	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्य
प०	आशिष	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्य
ष०	आशिष	आशिषो	आशिषाम्
स०	आशिषि	आशिषो	आशी षु आशीष्षु

(ख) नपु० पयस्—दूध या पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पय	पयसी	पयांसि

प०	दिव	द्युभ्याम्	द्युभ्य
ष०	दिव	दिवो॰	दिवाम्
स०	दिवि	दिवो	द्युषु

७६—शकारान्त शब्द

पु० विश्—बनिया

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	विट्	विशौ	विश
स०	हे विट्	हे विशौ	हे विश
द्वि०	विशम्	विशौ	विश
तृ०	विशा	विड्भ्याम्	विड्भि
च०	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्य
प०	विश	विड्भ्याम्	विड्भ्य
ष०	विश	विशो	विशाम्
स०	विशि	विशो	विट्सु

पु० तादृश्—उसके समान

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	तादृग्	तादृशौ	तादृश
स०	हे तादृक्	हे तादृशौ	हे तादृश

प०	श्रेयस	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्य
ष०	श्रेयस	श्रेयसो	श्रेयसाद्
स०	श्रेयसि	श्रेयसो	श्रेयस्सु श्रेयःसु

पु० दोस्—भुजा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दो	दोषौ	दोष
स०	हे दो	हे दोषो	हे दोष
द्वि०	दो	दोषौ	दोष, दोष्ण
तृ०	दोषा दोष्णा	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भि दोषभि
च०	दोषे दोष्णे	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्य दोषभ्य
प०	दोष दोष्ण	दोर्भ्याम् दोषभ्याम्	दोर्भ्य दोषभ्य
ष०	दोष दोष्ण	दोषो दोष्णो	दोषाम् दोष्णाम्
स०	दोषि दोष्णि दोषणि	दोषो दोष्णो	दोष्षु दो षु दोषषु

(क) स्त्री० अप्सरस्-अप्सरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अप्सरा	अप्सरसौ	अप्सरस

तादृशम्	तादृशौ	तादृश
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि
तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्य
तादृश	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्य
तादृश	तादृशो	तादृशाम्
तादृशि	तादृशो	तादृक्षु

दृश् (जैसा), मादृश् (मेरे समान), भवादृश् (आप के), त्वादृश् (तुम्हारे समान), एतादृश् (इसके समान) के रूप तादृश के समान होते हैं।

के जोड़ वाले स्त्रीलिङ्ग शब्द तादृशी मादृशी, यादृशी, ी आदि हैं जिनके रूप नदी के समान चलते हैं।

ुसक लिङ्ग में तादृश्, मादृश्, त्वादृश् इत्यादि के रूप इस होंगे —

नपु० तादृश्—उसके समान

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
तादृक्	तादृशी	तादृंशि
हे तादृक्	हे तादृशी	हे तादृंशि
तादृक्	तादृशी	तादृंशि
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भि

इत्यादि पुलिङ्ग के समान।

स०	हे अप्सर	हे अप्सरसौ	हे अप्सरस
द्वि०	अप्सरसम्	अप्सरसौ	अप्सरस
तृ०	अप्सरसा	अप्सरोभ्याम्	अप्सरोभि
च०	अप्सरसे	,,	अप्सरोभ्य
प०	अप्सरस	,,	अप्सरोभ्य
ष०	,,	अप्सरसो	अप्सरसाम्
स०	अप्सरसि	,	अप्सरस्सु अप्सर सु

अप्सरस् शब्द का प्रयोग बहुधा बहुवचन मे ही होता है।

स्त्री० आशिस्-आशीर्वाद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	आशी	आशिषौ	आशिष
स०	हे आशी	हे आशिषौ	हे आशिष
द्वि०	आशिषम्	आशिषौ	आशिष
तृ०	आशिषा	आशीर्भ्याम्	आशीर्भि
च०	आशिषे	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्य
प०	आशिष	आशीर्भ्याम्	आशीर्भ्य
ष०	आशिष	आशिषो	आशिषाम्
स०	आशिषि	आशिषो	आशी षु आशीष्षु

(ख) नपु० पयस्—दूध या पानी

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	पय	पयसी	पयांसि

तादृश्, मादृश्, भवादृश्, त्वादृश् इत्यादि के जोड़के अकारान्त शब्द तादृश, मादृश, भवादृश, त्वादृश आदि हैं और उनके रूप अकारान्त शब्दों के समान होते हैं जैसा कि नियम ४४ में पहिले ही दिखा चुके हैं।

(क) स्त्री० दिश्—दिशा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	दिक्, दिग्	दिशौ	दिशः
सं०	हे दिक् दिग्	हे दिशौ	हे दिशः
द्वि०	दिशम्	दिशौ	दिशः
तृ०	दिशा	दिग्भ्याम्	दिग्भिः
च०	दिशे	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
पं०	दिशः	दिग्भ्याम्	दिग्भ्यः
ष०	दिशः	दिशोः	दिशाम्
स०	दिशि	दिशोः	दिक्षु

स्त्री० निश्—रात

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
द्वि०	निशम्	निशौ	निशः
तृ०	निशा	{ निज्भ्याम् { निड्भ्याम्	{ निज्भिः { निड्भिः

स०	हे पय	हे पयसी	हे पयांसि
द्वि०	पय	पयसी	पयांसि
तृ०	पयसा	पयोभ्याम्	पयोभि
च०	पयसे	पयोभ्याम्	पयोभ्य
प०	पयस	पयोभ्याम्	पयोभ्य
ष०	पयस	पयसो	पयसाम्
स०	पयसि	पयसो	पयसु प

अम्भस् (पानी), नभस् (आकाश), आगस (पाप उरस् (छाती), मनस् (मन), वयस् (उम्र), रजस् (धूल वक्षस् (छाती), तमस् (अंधेरा), अयस् (लोहा), व (वचन, बात), यशस् (यश, कीर्त्ति), सरस् (तालाव), तप (तपस्या), शिरस् (शिर), इत्यादि सभी असन्त नपुंसकलि शब्दों के रूप पयस् के समान होते हैं।

नपु० हविस्—होम की वस्तु

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	हवि	हविषी	हवींषि
स०	हे हवि	हे हविषी	हे हवींषि
द्वि०	हवि	हविषी	हवींषि
तृ०	हविषा	हविर्भ्याम्	हविर्भि
च०	हविषे	हविर्भ्याम्	हविर्भ्य

प०	हविष	हविर्भ्याम्	हविर्भ्यं
ष०	हविष	हविषो	हविषाम्
स०	हविषि	हविषो	हवि षु, हविष्षु

सब 'इस्' में अन्त होनेवाले नपुंसक लिङ्ग शब्दों के रूप
इस् की तरह होते हैं।

नपुं० चक्षुस्—आँख

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	चक्षु	चक्षुषी	चक्षूंषि
सं०	हे चक्षु	हे चक्षुषी	हे चक्षूंषि
द्वि०	चक्षु	चक्षुषी	चक्षूंषि
तृ०	चक्षुषा	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भि
च०	चक्षुषे	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यः
पं०	चक्षुष	चक्षुर्भ्याम्	चक्षुर्भ्यं
ष०	चक्षुष	चक्षुषो	चक्षुषाम्
स०	चक्षुषि	चक्षुषो	चक्षु षु, चक्षुष्षु

धनुस् (धनुष), वपुस् (शरीर), आयुस् (उम्र), यजुस्
(यजुर्वेद) इत्यादि सब 'उस्' में अन्त होने वाले नपुंसकलिङ्ग शब्दों
के रूप चक्षुस् के समान होते हैं।

नपुंसक लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते	एतानि
द्वि०	एतत्, एतद् एनत्, एनद्	एते	एतानि
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतै
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्मात्, एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्य
ष०	एतस्य	एतयो, एनयो	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयो, एनयो	एतेषु

स्त्री लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एषा	एते	एता
द्वि०	एताम्, एनाम्	एते, एने	एता, एना
तृ०	एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभि
च०	एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्य
प०	एतस्या	एताभ्याम्	एताभ्य
ष०	एतस्या	एतयो, एनयो	एतासाम्
स०	एतस्याम्	एतयो, एनयो	एतासु

७९—हकारान्त शब्द

पु० मधुलिह्—शहद की मक्खी, भौंरा

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	मधुलिट्	मधुलिहौ	मधुलिहः
स०	हे मधुलिट्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिहः
द्वि०	मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः
तृ०	मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः
च०	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
प०	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
ष०	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
स०	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु

पु० अनडुह्—बैल

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः
स०	हे अनड्वन्	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः
द्वि०	अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः
तृ०	अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः
च०	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
प०	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः

प०	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
स०	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु

स्त्री० उपानह्—जूता

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः
स०	हे उपानत्, हे उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानहः
द्वि०	उपानहम्	उपानहौ	उपानहः
तृ०	उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः
च०	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
पं०	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
ष०	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
स०	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु

चतुर्थ सोपान

सर्वनाम-विचार

८०—हिंदी में 'सर्वनाम' शब्द का अर्थ 'किसी संज्ञा के स्थान में आया हुआ शब्द' है और यह अर्थ अँगरेजी के 'प्रोनाउन' शब्द का भी है। किन्तु संस्कृत में सर्वनाम शब्द से ऐसे ३५

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	सा	ते	ता
द्वि०	ताम्	ते	ता
तृ०	तया	ताभ्याम्	ताभि
च०	तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्य
प०	तस्या	ताभ्याम्	ताभ्य
प०	तस्या	तयो	तासाम्
स०	तस्याम्	तयो	तासु

(घ) अदस्—वह

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	नहुवचन
प्र०	असौ	अमू	अमी
द्वि०	अमुम्	अमू	अमून्
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्य
प०	अमुष्मात्	अमुभ्याम्	अमीभ्य
प०	अमुष्य	अमुयो	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयो	अमीषु

शब्दो का बोध होता है जो सर्व शब्द से आरम्भ होते हैं और जिनके रूप प्राय एक से चलते हैं (सर्वादीनि सर्वनामानि)।

इन ३५ शब्दों मे

(१) कुछ तो जिस अर्थ मे हिन्दी मे सर्वनाम शब्द आता है उस अर्थ में सर्वनाम हैं।

(२) कुछ विशेषण हैं, और

(३) कुछ सख्यावाची शब्द हैं।

इस परिच्छेद मे केवल प्रथम श्रेणी के शब्दों पर विचार किया जायगा।

८१—उत्तम पुरुषवाची 'अस्मद्' शब्द के रूप इस प्रकार चलते हैं —

अस्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अहम्	आवाम्	वयम्
द्वि०	माम्, मा	आवाम्, नौ	अस्मान्, न
तृ०	मया	आवाभ्याम्	अस्माभि
च०	मह्यम्, मे	आवाभ्याम्, नौ	अस्मभ्यम्,
प०	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
ष०	मम, मे	आवयो, नौ	अस्माकम्,
स०	मयि	आवयो	अस्मासु

नपुंसक लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अद	अमू	अमूनि
द्वि०	अद	अमू	अमूनि
तृ०	अमुना	अमूभ्याम्	अमीभि
च०	अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्य
प०	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्य
ष०	अमुष्य	अमुयो	अमीषाम्
स०	अमुष्मिन्	अमुयो	अमीषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	असौ	अमू	अमू
द्वि०	अमूम्	अमू	अमू
तृ०	अमुया	अमूभ्याम्	अमूभि
च०	अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्य
प०	अमुष्या	अमूभ्याम्	अमूभ्य
ष०	अमुष्या	अमुयो	अमूषाम्
स०	अमुष्याम्	अमुयो	अमूषु

(क) इन में से 'मा, नौ, न, मे, नौ, न, मे, नौ, न' ये वैकल्पिक रूप सब जगह प्रयोग मे नहीं लाए जा सकते। वाक्य के आरम्भ में, पद्य के चरण के आदि में, तथा च, वा, ह, हा, अह, एव इन अव्ययों के ठीक पूर्व तथा सम्बोधन शब्द (हे बालक! आदि) के ठीक अनन्तर इनका प्रयोग वर्जित है, जैसे "मे गृहम्" कहना संस्कृत व्याकरण के अनुसार निषिद्ध है क्योंकि 'मे' वाक्य के आरम्भ में है।

(ख) 'अस्मद्' शब्द के रूप लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलते। वक्ता चाहे पुरुष हो या स्त्री 'अहं' का ही प्रयोग होगा। इसी प्रकार अन्य विभक्तियों में भी समझना चाहिए।

८२—मध्यमपुरुषवाची 'युष्मद्' शब्द के रूप इस प्रकार होते हैं।

युष्मद्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	त्वम्	युवाम्	यूयम्
द्वितीया	त्वाम्, त्वा	युवाम्, वाम्	युष्मान्, व
तृतीया	त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभि
चतुर्थी	तुभ्यम्, ते	युवाभ्याम्, वाम्	युष्मभ्यम् व
पञ्चमी	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्

८५-सम्बन्धसूचक हिन्दी के 'जो' शब्द के लिए संस्कृत मे 'यद्' शब्द है। इसके रूप तीनों लिङ्गों में भिन्न भिन्न होते हैं जो कि नीचे दिये जाते हैं। इसके साथ के 'सो' शब्द के लिए 'अदम्' अथवा 'तद्' शब्द के रूप आवश्यकता के अनुसार प्रयोग में आते हैं। यथा —

सोऽय तव पुत्र आगत य देव्या स्वकरकमलैरुपलालित यह तुम्हारा वह पुत्र आगया जिसका देवी जी ने अपने हस्त मलों से लालन पालन किया),

ये परीक्षायामुत्तीर्णास्ते पारितोषिक लप्स्यन्ते—(जो परीक्षा उत्तीर्ण हुए वे इनाम पायेंगे),

या षोडशवर्षीया आसीत् सा ब्रह्मचारिणोढा—(जो सोलह र्ष की थी उसके साथ ब्रह्मचारी ने व्याह किया),

यद्यदग्नौ पतित तत्तद्भस्मीभूतम्—(जो चीज आग मे पड़ी वह स्म हो गई)

असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृता ।
तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ।

(जो मनुष्य आत्महत्या करते हैं वे मर कर ऐसे लोकों में हुँचते हैं जो असुरों के हैं तथा जिनमे सदा अँधेरा रहता है)

षष्ठी	तव,ते	युवयो , वाम्	युष्माकम्, व
सप्तमी	त्वयि	युवयो	युष्मासु

ऊपर ८२ (क) मे उल्लिखित नियम युष्मद् शब्द के वैकल्पिक (त्वा, वाम्, व , ते, वाम्, व , ते, वाम्, व,) रूपो पर भी ठीक उसी प्रकार लागू है। ८२ (ख) नियम भी यहाँ लागू है।

८३—संस्कृत के 'भवत्' शब्द का अर्थ 'आप' है। इसके रूप तीनों लिङ्गो और तीनो वचनो मे चलते हैं और क्रिया आदि का प्रयोग करने के लिए यह अन्य पुरुष वाची है। यथा-भवान् आगच्छतु न कि भवान् आगच्छ। पुलिङ्ग में इसके रूप श्रीमत् (देखिए ६८ के अन्तर्गत श्रीमत् शब्द के रूप) के समान भवान् भवन्तौ भवन्त इत्यादि चलते हैं , नपुंसक लिङ्ग मे जगत् (देखिए ६८ (ग)) के समान 'भवत्, भवती, भवन्ति 'आदि होते हैं। स्त्रीलिङ्ग में यह शब्द 'भवती' ईकारान्त हो जाता है और नदी (देखिए ६०) के समान भवती, भवत्यौ, भवत्य आदि इसके रूप होते हैं।

(क) भवत् के पूर्व कभी २ 'अत्र' और 'तत्र' शब्द जोड़कर 'अत्रभवत्' और ' तत्रभवत् ' शब्द होते हैं। इन शब्दों के रूप भी ठीक भवत् के समान चलते हैं, केवल अर्थ में थोड़ा भेद है। 'अत्र भवत्' का प्रयोग निकटवर्ती किसी मान्य पुरुष के सम्बन्ध मे होता है और 'तत्रभवत्' दूरवर्ती के सम्बन्ध में, यथा—अत्रभवान् आचार्य अस्मान् आज्ञापयति, तत्रभवान् कालिदास प्रख्यात —विरासीत्—इत्यादि।

यद्—जो

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	य	यौ	ये
द्वि०	यम्	यौ	यान्
तृ०	येन	याभ्याम्	यै
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्य
प०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्य
ष०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु

नपुसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	यत् यद्	ये	यानि
द्वि०	यत्, यद्	ये	यानि
तृ०	येन	याभ्याम्	यै
च०	यस्मै	याभ्याम्	येभ्य
प०	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्य
ष०	यस्य	ययो	येषाम्
स०	यस्मिन्	ययो	येषु

८४—'यह' शब्द के लिए संस्कृत में दो शब्द हैं 'इदम्' और 'एतद्'। इसी प्रकार 'वह' के लिए भी दो शब्द हैं 'तद्' और 'अदस्'। इनके प्रयोग में कुछ भेद है वह इस प्रकार है —

इदमस्तु सन्निकृष्टं समीपतरवर्ति चैतदो रूपम्।
अदसस्तु विप्रकृष्टं तदिति परोक्षे विजानीयात्॥

अर्थात् 'इदम्' शब्द के रूपो का प्रयोग तब करना चाहिए जब किसी निकटस्थ वस्तु का बोध कराना हो, यदि किसी बहुत ही निकट की वस्तु का बोध कराना हो तो 'एतद्' शब्द के रूपों का प्रयोग करना चाहिए। यदि दूरस्थ वस्तु का बोध कराना हो तो 'अदस्' शब्द के रूपों को काम मे लाना चाहिए। 'तद्' शब्द के रूपों का प्रयोग केवल ऐसी वस्तुओं के विषय मे करना चाहिए जो सामने नहीं हैं—परोक्ष हैं। उदाहरणार्थ यदि मेरे पास दो पुरुष बैठे हैं तो जो बहुत निकट बैठा है उसके विषय में 'एतद्' शब्द और जो जरा दूर है उसके विषय मे 'इदम्' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। इसी प्रकार यदि कोई पुरुष दूर खड़ा है और उसके विषय में कोई बात कहनी है तो अदस् शब्द का प्रयोग करेंगे। 'तद्' शब्द का प्रयोग ऐसे लोगो के विषय मे होगा जो इस समय दृष्टिगोचर नहीं हैं।

इन चारों शब्दो के रूप तीनो लिङ्गों मे चलते हैं जो कि नीचे दिखाए जाते हैं —

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	या	ये	या
द्वि०	याम्	ये	या
तृ०	यया	याभ्याम्	याभि
च०	यस्यै	याभ्याम्	याभ्य
प०	यस्या	याभ्याम्	याभ्य
ष०	यस्या	ययो	यासाम्
स०	यस्याम्	ययो	यासु

८६–प्रश्नवाची सर्वनाम 'कौन, क्या' के लिए संस्कृत मे 'किम्' शब्द है, इसके रूप तीनों लिङ्गों में नीचे लिखे प्रकार से चलते हैं। उदाहरणार्थ क आगत ? (कौन आया है ?), का आगता ? (कौन स्त्री आई है ?),

किमस्ति ? (क्या है ?) आदि इसके प्रयोग होते हैं।

(क) इसी शब्द के रूपों के साथ 'अपि' 'चित्' अथवा 'चन' जोड़ देने से, हिन्दी के किसी, कोई, कुछ आदि अनिश्चयवाचक सर्वनामों का बोध होता है; यथा —

कोऽपि आगतोऽस्ति
कश्चिदागतोऽस्ति
कश्चनागतोऽस्ति
}—कोई आया है।

इदम् और एतद् के रूपों को देखने से प्रकट होगा कि इनके कुछ वैकल्पिक रूप भी हैं—इदम् के (पु०) एनम्, एनौ, एनान्; एनेन, एनयो, एनयो, (नपु०) एनत्, एने, एनानि, एनेन, एनयो, एनयो, और (स्त्री०) एनाम्, एने, एना, एनया, एनयो, एनयो। एतद् के भी ये ही रूप हैं। इन विशेष रूपों का प्रयोग तब होता है जब इदम् शब्द अथवा एतद् शब्द के साधारण रूपों में से किसी का प्रयोग हो चुका होता है और फिर उसी वस्तु के विषय में कुछ और बात कहनी रहती है; यथा—

एतद् वस्त्र सुष्ठु धावयैनत् पाटय—इस कपड़े को अच्छी तरह धोओ, इसे फाड़ मत डालना।

यहाँ "इसे" के स्थान मे वैकल्पिक 'एनत्' प्रयुक्त हुआ है, किन्तु " इस " के स्थान मे " एनत् " नहीं आसकता।

एष पञ्चविंशतिवर्षदेशीयोऽधुना एनम् उद्वाहय—यह पचीस वर्ष के लगभग हो गया, इसका अब व्याह कर दो।

यहाँ भी पहले एष आया, तदनन्तर एनम्।

काऽप्यागताऽस्ति
काचिदागताऽस्ति
काचन आगताऽस्ति
}—कोई आई है।

किमप्यस्ति
किञ्चिदस्ति
किञ्चनास्ति
}—कुछ है।

इसी प्रकार कमपि मा हिंसी, कामपि मा त्रासय, किमपि मा चोरय, इत्यादि प्रयोग होते हैं।

किम्—कौन

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	क	कौ	के
द्वि०	कम्	कौ	कान्
तृ०	केन	काभ्याम्	कै
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्य
ष०	कस्य	कयो	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयो	केषु

(क) इदम्—यह

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अयम्	इमौ	इमे
द्वि०	इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभि.
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्य
ष०	अस्य	अनयो , एनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयो , एनयो	एषु

नपुंसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इदम्	इमे	इमानि
द्वि०	इदम्, एनत्	इमे, एने	इमानि, एनानि
तृ०	अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभि
च०	अस्मै	आभ्याम्	एभ्य
प०	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्य
ष०	अस्य	अनयो , एनयो	एषाम्
स०	अस्मिन्	अनयो , एनयो	एषु

नपुसकलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	किम्	के	कानि
द्वि०	किम्	के	कानि
तृ०	केन	काभ्याम्	कै
च०	कस्मै	काभ्याम्	केभ्य
प०	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्य
ष०	कस्य	कयो	केषाम्
स०	कस्मिन्	कयो	केषु

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	का	के	का
द्वि०	काम्	के	का
तृ०	कया	काभ्याम्	काभि
च०	कस्यै	काभ्याम्	काभ्य
प०	कस्या	काभ्याम्	काभ्य
ष०	कस्या	कयो	कासाम्
स०	कस्याम्	कयो	कासु

८७—हिन्दी निजवाचक सर्वनाम (reflexive pronoun) पने आप' 'अपने को' आदि अर्थ बोध कराने के लिये संस्कृत

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	इयम्	इमे	इमा
द्वि०	इमाम्, एनाम्	इमे, एने	इमा , एना
तृ०	अनया, एनया	आभ्याम्	आभि
च०	अस्यै	आभ्याम्	आभ्य
प०	अस्या	आभ्याम्	आभ्य
ष०	अस्या	अनयो , एनयो	आसाम्
स०	अस्याम्	अनयो , एनयो	आसु

(ख) एतद्—यह

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	एष	एतौ	एते
द्वि०	एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्
तृ०	एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतै
च०	एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्य
प०	एतस्मात् एतस्माद्	एताभ्याम्	एतेभ्य
ष०	एतस्य	एतयो एनयो	एतेषाम्
स०	एतस्मिन्	एतयो , एनयो	एतेषु

मे तीन शब्दो का प्रयोग होता है—(१) आत्मन्, (२) स्व, (३) स्वयम्। इस अर्थ का बोध कराने के लिये आत्मन् शब्द के रूप केवल पुलिङ्ग एक वचन में चलते हैं और सब लिङ्गों और वचनों में निजवाचकता का अर्थ देते हैं, जैसे —

स आत्मानं निन्दितवान्,

सा आत्मानं निन्दितवती,

सर्वाः राजकन्या आत्मानं मुकुरे अद्राक्षुः,

सा आत्मानमपराधिनीममन्यत,

सा आत्मनि कमपि दोषं नाद्राक्षीत्,

तच्छरीरमात्मनैव विनष्टम् इत्यादि।

'स्व' शब्द के तीन अर्थ होते हैं—नातेदार, धन और 'अपने आप'। इन में से जब इसका अर्थ 'अपने आप' का होता है तभी यह सर्वनाम होता है। तब इसके रूप सर्व शब्द (६५) के समान तीनों लिङ्गों मे अलग २ चलते हैं, केवल पु० प्रथमा बहुवचन तथा पञ्चमी और सप्तमी के एकवचन में बालक के समान रूप होते हैं—स्वे, स्वाः, स्वात्, स्वस्मात्, स्वे, स्वस्मिन्। 'स्वयम्' शब्द का कोई और रूप नहीं होता, सब लिङ्गों और सब वचनों मे यह ऐसा ही प्रयोग मे आता है, यथा —

सा स्वयमपराधं कृत्वा दोषं मयि क्षिप्तवती, राजा स्वयमुत्कोचं गृह्णाति मन्त्रिणां का कथा, इत्यादि।

(क) परस्परवाची सर्वनाम सस्कृत मे तीन होते हैं—परस्पर, अन्योन्य और इतरेतर। इनके रूप बालक के समान होते हैं और एक वचन मे—

परस्पर विवाद कृतवान्,
अन्योन्येन मिलितम्,
इतरेतरस्य सौभाग्य दूषयति।

येही शब्द जब क्रियाविशेषण होते हैं तब इनके रूप नहीं चलते, केवल परस्परम्, अन्योन्यम् और इतरेतरम् होते हैं, यथा —

तौ परस्पर मिलितौ।

८८—निश्चयवाचक सर्वनाम (यही, वही, उसी ने) का निश्चयात्मक अर्थ बतलाने के लिए, सर्वनाम के रूपो के साथ 'एव' शब्द जोड़ कर सस्कृत मे निश्चय का बोध कराते हैं, यथा —

क आगत ? स एव पुन आगत।

केनेद कृतम् ? तेनैव तु कृतम् इत्यादि।

अनिश्चयात्मक ८६ (क) सर्वनामो को छोड़ कर ऊपर लिखे और सब सर्वनामो के साथ इस प्रकार 'एव' जोड़ कर 'ही' का निश्चयात्मक अर्थ प्रकट किया जा सकता है।

इसी प्रकार अशीति, नवति के भी रूप होते हैं।

(थ) शत, सहस्र अयुत, लक्ष, प्रयुत, अर्बुद, अब्ज, खर्व, निखर्व, महापद्म, अन्त्य, मध्य, परार्ध, शब्द केवल नपुंसक लिङ्ग में होते हैं और इनके रूप फल के अनुसार तीनों वचनों मे चलते हैं।

(द) लक्षा (स्त्री०) के रूप विद्या के समान और कोटि के रूप रुचि के समान होते हैं।

(ध) खर्व (पु०) निखर्व (पुं०) के रूप बालक के समान, जलधि (पु०) के रूप कवि के समान तथा शङ्कु के भानु (४८) के समान चलते हैं।

१००—पूरक सख्यावाची (ordinal numeral adjectives) शब्दों के रूप इस प्रकार चलते हैं —

(क) प्रथम शब्द के रूप ६६ (क) मे उल्लिखित हैं, अग्रिम और आदिम के रूप लिङ्गानुसार बालक, फल और विद्या के समान होते हैं।

(ख) द्वितीय और तृतीय शब्दों के रूप तीनो लिङ्गों मे ऊपर ६५ (ग) मे उदाहृत हैं।

(ग) चतुर्थ और इसके आगे के पूरक सख्यावाची शब्दों के रूप यदि अकारान्त पु० हो तो बालक के समान, अकारान्त नपुसक हो तो फल के समान, यदि आकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो

पञ्चम सोपान

विशेषण विचार

८९—हिन्दी में कभी कभी तो विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार विशेषण बदलता है (जैसे अच्छा लड़का, अच्छे लड़के, अच्छी लड़की, अच्छी लड़कियाँ), किन्तु बहुधा नहीं बदलता (जैसे लाल घोड़ा, लाल घोड़ी, लाल घोड़े, लाल घोड़ियाँ) । संस्कृत में विशेष्य के लिङ्ग, वचन और विभक्ति के अनुसार विशेषण का रूप बदलता है, जिस लिङ्ग, जिस वचन और जिस विभक्ति का विशेष्य होता है, उसी लिङ्ग उसी वचन और उसी विभक्ति का विशेषण भी होता है। यहाँ तक कि ऐसे विशेष्यों के साथ भी विशेषण बदलता है जो लिङ्ग के लिए भिन्न रूप नहीं रखते, किन्तु जिनके प्रकरण आदि से लिङ्ग अवगत हो जाता है, यथा हिन्दी मे 'मै सुन्दर हूँ' इस वाक्य का अनुवाद संस्कृत मे 'अहं सुन्दरोऽस्मि' और 'अहं सुन्दरी अस्मि' इन दोनों वाक्यों से होगा। यदि बोलने वाला पुरुष है तो प्रथम वाक्य प्रयोग में आवेगा और यदि वह स्त्री है तो दूसरा वाक्य । हिन्दी में विशेषण के साथ अलग विभक्तिसूचक परसर्ग (का, में आदि) नहीं लगाये जाते, जैसे—'पढ़े लिखे मनुष्यों का आदर होता है' इस वाक्य में 'का' शब्द केवल 'मनुष्यों' के उपरान्त लगाया गया है, विशेषण 'पढ़े लिखे' के उपरान्त नहीं , परन्तु संस्कृत में विशेषण और विशेष्य दोनों में विभक्तियाँ लगती हैं। ऊपर के वाक्य का अनुवाद होगा

विद्या के समान और ईकारान्त स्त्री० हों तो नदी के समान चलते हैं।

(अ) शत और इसके आगे की सख्याओं के पूरक सख्यावाच शब्द पु० तथा नपुसक में तम जोड़ कर और स्त्रीलिङ्ग में तमी जोड़ कर बनते हैं। जैसे—सहस्रतम, सहस्रतम, सहस्रतमी आदि।

१०१—ऊपर सख्यावाची शब्द एक से लेकर सौ तक तथा सहस्र, दश सहस्र, लक्ष, दशलक्ष आदि के लिये दिये गये हैं। ऐसी सख्याएँ जैसे १३५, ११०६, १०५१५ आदि बीच की सख्याओं के लिये विशेष उपाय से काम लिया जाता है जो कि नीचे दिखाया जाता है।

(१) सौ या सहस्र या लक्ष के पूर्व 'अधिक' शब्द या 'उत्तर' शब्द जोड़ देना यथा —

एक सौ पैंतीस मनुष्य उपस्थित हैं—पञ्चत्रिंशदधिकं शतं मनुष्याणामुपस्थितम्। अथवा पञ्चत्रिंशदुत्तर शतम्

दो सौ इकतालीस आदमियों के ऊपर जुर्माना लगाया गया, और तीन सौ उनसठ को सजा हुई। मनुष्याणामेकचत्वारिंशदधिकयोः शतयोः (एकचत्वारिंशदुत्तरयोः शतयोः वा) उपरि अर्थदण्ड आदिष्ट, एकोनषष्ट्यधिकाना त्रयाणा शतानामुपरि कायदण्ड।

एक लाख पन्द्रह हजार तीन सौ बत्तीस—द्वात्रिंशदधिक॰ . . . सहस्राणि एक लक्षञ्च।

६६ { षट्षष्ट्यधिकषट्शतम्, षट्षष्ट्यधिक षट्शतम्
{ षट्षष्ट्युत्तरषट्शतम्, षट्षष्ट्युत्तर षट्शतम्

७३ { त्रिसप्तत्यधिकषट्शतम्, त्रिसप्तत्यधिक षट्शतम्
{ त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम्, त्रिसप्तत्युत्तर षट्शतम्

८४ { चतुरशीत्यधिकषट्शतम्, चतुरशीत्यधिक षट्शतम्
{ चतुरशीत्युत्तरषट्शतम्, चतुरशीत्युत्तर षट्शतम्

९५ { पञ्चनवत्यधिकषट्शतम्, पञ्चनवत्यधिक षट्शतम्
{ पञ्चनवत्युत्तरषट्शतम्, पञ्चनवत्युत्तर षट्शतम्

१३२५ { पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम्
या
{ पञ्चविंशत्यधिकत्रिशताधिकसहस्रम्

१९२८ { अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्
या
{ अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम्

१९३९ { एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम्
या
{ एकोनचत्वारिंशदधिकनवशताधिकसहस्रम्

९६६३७ सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

९९—इस गिनती के शब्दों के रूपों में जो भेद है वह नीचे दिखाया जाता है।

(क) जब 'एक' शब्द का अर्थ संख्यावाचक 'एक' होता है तो इसका रूप केवल एक वचन में होता

सी प्रकार 'अधिक' और 'उत्तर' शब्द के योग मे और भी
एँ बनाई जासकती हैं।
कभीकभी 'च' जोड़ते जाते हैं, जैसे—२३५ द्वे शते पञ्चत्रिंशच्च।

२) कभी कभी सख्याओ के बोलने मे हम लोग दो कम् दो,
कम पाँच सौ इत्यादि मे कम शब्द का प्रयोग करते हैं—सस्कृत
कम शब्द का बोधक ऊन शब्द जोड़ा जाता है, यथा—दो कम
—द्व्यूने शते द्व्यून शतद्वय, द्व्यूनशतद्वयी इत्यादि । चार
पाँच सौ—चतुरूनपञ्चशतानि चतुरून शतपञ्चतयम् इत्यादि।
रण के लिए कुछ ऐसी सख्याएँ ऊपर दे दी गई हैं।

१०२—क्रम का भेद बतलाने के लिए सस्कृत के शब्द बहुधा
नाम' में सम्मिलित किये जाते हैं। वस्तुत यह क्रमवाची विशे-
हैं इस लिए यहाँ दिये जाते हैं। मुख्य ये हैं —

(क) अन्य (दूसरा), अन्यतर (जब दो दूसरो मे से एक के
य मे कुछ व्यवहार हो चुका हो तो दूसरे के लिये यह शब्द
मे आता है), इतर (दूसरा) तथा (किम्, यद् और तद्
ामों से डतर और डतम प्रत्यय जोड़ कर बने हुए) कतर
मे से कौन सा), कतम (दो से अधिक मे से कौन सा), यतर
मे से जो सा), यतम (दो से अधिक मे से जो सा), ततर
मे से वह सा), ततम (दो से अधिक मे से वह सा) शब्दों के
तीनों लिङ्गो मे चलते हैं और एक समान हाते हैं। उदाहरण

५०४	चतुरधिकपञ्चशत, चतुरधिक पञ्चशतं	चतुरुत्तरपञ्चशत, चतुरुत्तरं पञ्चशतम् ।
५०५	पञ्चाधिकपञ्चशत, पञ्चाधिक पञ्चशत	पञ्चोत्तर पञ्चशत, पञ्चोत्तरं पञ्चशतम् ।
५०६	षडधिकपञ्चशत, षडधिक पञ्चशत	षडुत्तरपञ्चशत, षडुत्तर पञ्चशतम् ।
५०७	सप्ताधिकपञ्चशत, सप्ताधिकपञ्चशतं	सप्तोत्तरपञ्चशत, सप्तोत्तर पञ्चशतम् ।
५०८	अष्टाधिकपञ्चशत, अष्टाधिक पञ्चशत	अष्टोत्तरपञ्चशतम्, अष्टोत्तर पञ्चशतम् ।
५०९	नवाधिकपञ्चशत, नवाधिक पञ्चशत	नवोत्तरपञ्चशतम्, नवोत्तर पञ्चशतम् ।
५१०	दशाधिकपञ्चशत, दशाधिक पञ्चशत	दशोत्तरपञ्चशतम् दशोत्तर पञ्चशतम् ।
५१७	सप्तदशाधिकपञ्चशतं, सप्तदशाधिक पञ्चशत	सप्तदशोत्तरपञ्चशतम् सप्तदशोत्तर पञ्चशतम्
६००	षट्शत	
६२५	पञ्चविंशत्यधिकषट्शतम्, पञ्चविंशत्युत्तरषट्शतम्	पञ्चविंशत्यधिकषट्शतम् पञ्चविंशत्युत्तर षट्शतम्
६३७	सप्तत्रिंशदधिकषट्शतम्, सप्तत्रिंशदुत्तरषट्शतम्,	सप्तत्रिंशदधिक षट्शतम् सप्तत्रिंशदुत्तर षट्शतम्
६४६	षट्चत्वारिंशदधिकषट्शतम्, षट्चत्वारिंशदुत्तरषट्शतम्,	षट्चत्वारिंशदधिक षट्शतम् षट्चत्वारिंशदुत्तर षट्शतम्
६५५	पञ्चपञ्चाशदधिकषट्शतम्, पञ्चपञ्चाशदुत्तरषट्शतम्,	पञ्चपञ्चाशदधिक षट्शतम् पञ्चपञ्चाशदुत्तर षट्शतम्

अन्यत्–दूसरा

पुंलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्य	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत	अ्न्ये	अन्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

---

६६६ (षट्षष्ट्यधिकषट्शतम्, षट्षष्ट्यधिक षट्शतम्
(षट्षष्ट्युत्तरषट्शतम्, षट्षष्ट्युत्तर षट्शतम्

६७३ { त्रिसप्तत्यधिकषट्शतम् त्रिसप्तत्यधिक षट्शतम्
{ त्रिसप्तत्युत्तरषट्शतम्, त्रिसप्तत्युत्तर षट्शतम्

६८४ { चतुरशीत्यधिकषट्शतम्, चतुरशीत्यधिक षट्शतम्
{ चतुरशीत्युत्तरषट्शतम्, चतुरशीत्युत्तर षट्शतम्

६९५ { पञ्चनवत्यधिकषट्शतम्, पञ्चनवत्यधिक षट्शतम्
{ पञ्चनवत्युत्तरषट्शतम्, पञ्चनवत्युत्तर षट्शतम्

१३२५ (पञ्चविंशत्यधिकत्रयोदशशतम्
या
(पञ्चविंशत्यधिकत्रिशताधिकसहस्रम्

१९२८ (अष्टाविंशत्यधिकैकोनविंशतिशतम्
या
(अष्टाविंशत्यधिकनवशताधिकसहस्रम्

१९३९ (एकोनचत्वारिंशदधिकैकोनविंशतिशतम्
या
(एकोनचत्वारिंशदधिकनवशताधिकसहस्रम्

५९६३७ सप्तत्रिंशदधिकषट्शताधिकनवसहस्राधिकपञ्चायुतम्

९९—इस गिनती के शब्दों के रूपों में जो भेद है वह नीचे दिखाया जाता है।

(क) जब 'एक' शब्द का अर्थ संख्यावाचक 'एक' होता है तो इसका रूप केवल एक वचन में होता

स्त्रीलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्या	अन्ये	अन्या
द्वि०	अन्याम्	अन्ये	अन्या
तृ०	अन्यया	अन्याभ्याम्	अन्याभि
च०	अन्यस्यै	अन्याभ्याम्	अन्याभ्य
पं०	अन्यस्या	अन्याभ्याम्	अन्याभ्य
ष०	अन्यस्या	अन्ययो	अन्यासाम्
स०	अन्यस्याम्	अन्ययो	अन्यासु

(ख) पूर्व (पहला अथवा पूर्वी), अवर (बादवाला अथवा पच्छिमी), दक्षिण (दक्खिनी), उत्तर (उत्तरी), पर (दूसरा), अपर (दूसरा) और अधर (नीचेवाला) इन शब्दों के रूप एक समान चलते हैं और तीनो लिङ्गो मे होते हैं। उदाहरण के लिए 'पूर्व' शब्द के रूप दिए जाते हैं।

पूर्व

पुलिङ्ग

प्र०	पूर्वं	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वा

है, इसके अतिरिक्त[1] अर्थों में इसके रूप तीनों वचनों में होते हैं।

एक–शब्द

	पुलिङ्ग	नपुं०	स्त्रीलिङ्ग
	एकवचन	एकवचन	एकवचन
प्र०	एक	एकम्	एका
द्वि०	एकम्	एकम्	एकाम्
तृ०	एकेन	एकेन	एकया
च०	एकस्मै	एकस्मै	एकस्यै
पं०	एकस्मात्	एकस्मात्	एकस्याः
ष०	एकस्य	एकस्य	एकस्याः
स०	एकस्मिन्	एकस्मिन्	एकस्याम्

१ 'एक' शब्द के इतने अर्थ होते हैं —

एकोऽल्पार्थे प्रधाने च प्रथमे केवले तथा।

साधारणे समानेऽपि सङ्ख्यायां च प्रयुज्यते॥

अर्थात् अल्प (थोड़ा कुछ), प्रधान, प्रथम, केवल, साधारण, समान और एक, इतने अर्थों में एक शब्द का प्रयोग होता है।

बहुवचन में इसका अर्थ होता है—'कुछ लोग,' 'कोई कोई' यथा 'एके पुरुषाः, एकाः नार्यः,' 'एकानि फलानि' इत्यादि।

अन्यत्–दूसरा

पुलिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र०	अन्य	अन्यौ	अन्ये
द्वि०	अन्यम्	अन्यौ	अन्यान्
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

नपुंसकलिङ्ग

प्र०	अन्यत्	अन्ये	अन्यानि
द्वि०	अन्यत	अन्ये	अन्यानि
तृ०	अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यै
च०	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
प०	अन्यस्मात्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्य
ष०	अन्यस्य	अन्ययो	अन्येषाम्
स०	अन्यस्मिन्	अन्ययो	अन्येषु

प० अष्टानाम्

स० अष्टासु, अष्टसु

(ट) नवन् (नौ), दशन् (दस), तथा सभी नकारान्त सख्यावाची (एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि) शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक ही समान होते हैं। अष्टन् में जो भेद होता है सो दिखा दिया गया।

(ठ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविंशति से लेकर जितने सख्यावाची शब्द हैं उन सब के रूप केवल एक वचन ही में होते हैं।

(ड) ह्रस्व इकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक ऊनविंशति विंशति एकविंशति आदि विंशति में अन्त होने वाले शब्दों के रूप रुचि शब्द के समान होते हैं।

	एकवचन	
प्र०	विंशति	अर्थात् रुचि के समान।
द्वि०	विंशतिम्	
तृ०	विंशत्या	
च०	विंशत्यै, विंशतये	
प०	विंशत्या, विंशते	
प०	विंशत्या, विंशते	
स०	विंशत्याम्, विंशतौ	

(ढ) नित्य स्त्रीलिङ्ग सख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) के तथा शत् में अन्त होनेवाले सख्यावाची शब्दों के रूप सरित् के समान होते हैं, जैसे —

ःदिताना मनुष्याणामादरः क्रियते (अथवा भवति)। इस प्रकार
ज्ञा की तरह संस्कृत विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के
न्न भिन्न रूप होते हैं। [कुछ सख्यावाची विशेषण शत, विंशति,
शत् आदि जिनके सब लिङ्गों में और एक ही वचन में रूप होते
वे विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते
न्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही हैं। विशेष विशेष स्थलों पर
स्तृत वर्णन किया गया है]।

अधिकतर विशेषणों के रूप संज्ञाओं के समान ही होते
—जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के
लिङ्ग में अकारान्त बालक के समान और नपुंसक लिङ्ग में
कारान्त फल के समान रूप होते हैं। इसी प्रकार ईकारान्त
शेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी, सुमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के
मान होते हैं। थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं जिनके रूप भिन्न होते
उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है।

९०—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में से
दम्, एतद्, तद्, अदस् (८४), यद् (८५), किम् (८६) तथा
ानिश्चयवाचक (८७क) और निश्चयवाचक (८८) सर्वनाम सभी
ा प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है, जैसे, अयं पुरुषः, एषा
ारी, एतच्छरीरं, ते भृत्याः, अमी जनाः, यो विद्यार्थी, का नारी,
कस्मिंश्चिन्नगरे, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि।

(ज) सप्तन्–सात

पुल्लिङ्ग, नपुसकलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में ।

प्र०	सप्त
द्वि०	सप्त
तृ०	सप्तभिः
च०	सप्तभ्य
पं०	सप्तभ्य
ष०	सप्तानाम्
स०	सप्तसु

(झ) अष्टन्–आठ

पुल्लिङ्ग, नपुसकलिङ्ग, तथा स्त्रीलिङ्ग

केवल बहुवचन में

प्र०	अष्टौ, अष्ट
द्वि०	अष्टौ, अष्ट
तृ०	अष्टाभि, अष्टभि
च०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्य
पं०	अष्टाभ्यः, अष्टभ्य

तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
प०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

नपुसकलिङ्ग

प्र०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
द्वि०	पूर्वम्	पूर्वे	पूर्वाणि
तृ०	पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः
च०	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
प०	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
ष०	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
स०	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

स्त्रीलिङ्ग

प्र०	पूर्वा	पूर्वे	पूर्वाः
द्वि०	पूर्वाम्	पूर्वे	पूर्वाः
तृ०	पूर्वया	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभिः
च०	पूर्वस्यै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः
प०	पूर्वस्याः	पूर्वाभ्याम्	पूर्वाभ्यः

प० अष्टानाम्
स० अष्टासु, अष्टसु

(ट) नवन् (नौ), दशन् (दस), तथा सभी नकारान्त संख्यावाची (एकादशन्, द्वादशन्, त्रयोदशन्, पञ्चदशन्, षोडशन् आदि) शब्दों के रूप पञ्चन् के समान तीनों लिङ्गों में एक ही समान होते हैं। अष्टन् में जो भेद होता है सो दिखा दिया गया।

(ठ) नित्य स्त्रीलिङ्ग ऊनविंशति से लेकर जितने संख्यावाची शब्द हैं उन सब के रूप केवल एक वचन ही में होते हैं।

(ड) ह्रस्व इकारान्त नित्य स्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक ऊनविंशति विंशति एकविंशति आदि विंशति में अन्त होने वाले शब्दों के रूप रुचि शब्द के समान होते हैं।

	एकवचन	
प्र०	विंशति	अर्थात् रुचि के समान।
द्वि०	विंशतिम्	
तृ०	विंशत्या	
च०	विंशत्यै, विंशतये	
पं०	विंशत्या, विंशते	
ष०	विंशत्या, विंशते	
स०	विंशत्याम्, विंशतौ	

(ढ) नित्य स्त्रीलिङ्ग संख्यावाचक त्रिंशत् (तीस), चत्वारिंशत् (चालीस), पञ्चाशत् (पचास) के तथा शत् में अन्त होनेवाले संख्यावाची शब्दों के रूप सरित् के समान होते हैं, जैसे—

तितानां मनुष्याणामादरः क्रियते (अथवा भवति)। इस प्रकार ग की तरह संस्कृत विशेषण के भी लिङ्ग, वचन और विभक्ति के न भिन्न रूप होते हैं। [कुछ संख्यावाची विशेषण शत, विंशति, शत् आदि जिनके सब लिङ्गों में और एक ही वचन में रूप होते वे विशेष्य के लिङ्ग और वचन के अनुसार नहीं बदल सकते न्तु विभक्ति के अनुसार बदलते ही हैं। विशेष विशेष स्थलों पर स्तृत वर्णन किया गया है]।

अधिकतर विशेषणों के रूप संज्ञाओं के समान ही होते —जैसे अकारान्त विशेषण चतुर, कुशल, सुन्दर आदि के लिङ्ग में अकारान्त बालक के समान और नपुंसक लिङ्ग में अकारान्त फल के समान रूप होते हैं। इसी प्रकार ईकारान्त विशेषण सुन्दरी, चन्द्रमुखी, सुमुखी आदि के रूप ईकारान्त नदी के समान होते हैं। थोड़े से विशेषण ऐसे भी हैं जिनके रूप भिन्न होते हैं, उनका विचार इस परिच्छेद में किया गया है।

९०—सार्वनामिक विशेषण—ऊपर लिखे हुए सर्वनामों में से इदम्, एतद्, तद्, अदस् (८४), यद् (८५), किम् (८६) तथा अनिश्चयवाचक (८६क) और निश्चयवाचक (८८) सर्वनाम सभी का प्रयोग विशेषण के रूप में भी होता है, जैसे, अयं पुरुषः, एषा नारी, एतच्छरीरं, ते भृत्याः, अमी जनाः, यो विद्यार्थी, का नारी, कस्मिंश्चिन्नगरे, तस्मिन्नेव ग्रामे इत्यादि।

	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
प्र०	त्रिंशत्	चत्वारिंशत्
द्वि०	त्रिंशतम्	चत्वारिंशतम्
तृ०	त्रिंशता	चत्वारिंशता
च०	त्रिंशते	चत्वारिंशते
पं०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
ष०	त्रिंशतः	चत्वारिंशतः
स०	त्रिंशति	चत्वारिंशति

इसी प्रकार पञ्चाशत् के भी रूप होते हैं।

(त) नित्य स्त्रीलिङ्ग षष्टि (साठ), सप्तति (सत्तर), अशीति (अस्सी), नवति (नब्बे) इत्यादि सभी इकारान्त संख्यावाची शब्दों के रूप विंशति के अनुसार रुचि के समान होते हैं, जैसे —

	षष्टि	सप्तति
	एकवचन	एकवचन
प्र०	षष्टिः	सप्ततिः
द्वि०	षष्टिम्	सप्ततिम्
तृ०	षष्ट्या	सप्तत्या
च०	षष्ट्यै, षष्टये	सप्तत्यै, सप्ततये
पं०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
ष०	षष्ट्याः, षष्टेः	सप्तत्याः, सप्ततेः
	षष्ट्याम्, षष्टौ	सप्तत्याम्, सप्ततौ

९१—इसका, उसका, मेरा, तेरा, हमारा, तुम्हारा, जिसका आदि सम्बन्धसूचक भाव दिखाने के लिए संस्कृत में दो उपाय हैं, एक तो इदम्, तद्, अस्मद् आदि को षष्ठी विभक्ति के रूपों का प्रयोग करना, जैसे, मम पुस्तक, तवारव, अस्य प्रबन्ध इत्यादि; दूसरे इन शब्दों में कुछ प्रत्यय जोड़ कर इनसे विशेषण बनाकर उनको अन्य विशेषणों के अनुसार प्रयोग में लाना। ये विशेषण इस प्रकार हैं —

(क) अस्मद् शब्द से—

पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

मदीय (मेरा)	अस्मदीय (हमारा)
मामक (")	आस्माक (")
मामकीन (")	आस्माकीन (")

स्त्रीलिङ्ग

मदीया (मेरी)	अस्मदीया (हमारी)
मामिका (")	आस्माकी (")
मामकीया (")	आस्माकीना (")

(ख) युष्मद् शब्द से—

पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग

त्वदीय (तेरा)	युष्मदीय (तुम्हारा)

स्त्रीलिङ्ग

त्वादृशी (तुझ सी)   युष्मादृशी (तुम्हारी सी)

) तद् शब्द से

पुलिङ्ग तथा नपुंसकलिङ्ग	स्त्रीलिङ्ग
तादृश् (वैसा, तैसा)	तादृशी (वैसी, तैसी)
तादृश („ „)	

) इदम् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
ईदृश् (ऐसा)	ईदृशी (ऐसी)
ईदृश (")	

) एतद् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
एतादृश् (ऐसा)	एतादृशी (ऐसी)
एतादृश (")	

) यद् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
यादृश् (जैसा)	यादृशी (जैसी)
यादृश (")	

प०	पूर्वस्या	पूर्वयो	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयो	पूर्वासु

१०३—विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, केवल आवश्यकतानुसार अधिक, ज्यादा, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिए जाते हैं, जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर है, मुझसे वह अच्छा है अथवा ज्यादा अच्छा है, गोपाल से श्याम कम सुन्दर है, इत्यादि। परन्तु संस्कृत में बहुधा अधिक आदि शब्द जोड़ कर तुलना नहीं की जाती, जैसे —'गोपाल श्यामादधिकसुन्दरोऽस्मि' चाहे यह वाक्य व्याकरण की दृष्टि से गलत न हो तब भी उसमें हिन्दीपन की गन्ध आती है। संस्कृत में विशेषणों की तुलना करने के लिए प्रत्यय विशेषणों में जोड़ जाते हैं।

(क) सब से सीधा मार्ग तुलना करने का विशेषणों में तरप् (तर) और तमप् (तम) प्रत्ययों का जोड़ देना है। इन परिवर्द्धित विशेषणों के रूप विशेष्य के अनुसार होते हैं—तरप् जब दो के बीच में तुलना करनी हो और तमप् जब दो में अधिक के बीच में तुलना करनी हो तो। उदाहरणार्थ —

कुशल — कुशलतर, कुशलतम
चतुर — चतुरतर, चतुरतम
विद्वस् — विद्वत्तर, विद्वत्तम

त्वदीयानामश्वाना युद्धे नास्ति काऽपि आवश्यकता,
यदीया सम्पत्ति तदीय स्वत्वम् ।

अस्मद्, युष्मद् आदि की षष्ठी के रूपों के विषय में यह नियम नहीं लगता, वे विशेष्य के अनुसार नहीं बदलते, यथा—अस्य पुस्तक, अस्य निबन्ध, अस्य लिपि इत्यादि ।

९२—'ऐसा, जैसा' आदि शब्दों द्वारा बोधित प्रकार के अर्थ के लिए संस्कृत मे अस्मद्, युष्मद् आदि शब्दों मे प्रत्यय जोड़ कर तादृश आदि शब्द बनते हैं और विशेषण होते हैं। अन्य विशेषणो की भाँति इनकी विभक्ति, लिङ्ग, वचन आदि विशेष्य के अनुसार होते हैं। ये शब्द हैं—

(क) अस्मद् शब्द से

पुलिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग

मादृश् (मुझ सा)	अस्मादृश् (हमारा सा)
मादृश (")	अस्मादृश (")

स्त्रीलिङ्ग

मादृशी (मुझ सी)	अस्मादृशी (हमारी सी)

(ख) युष्मद् शब्द से

पुलिङ्ग तथा नपुसकलिङ्ग

त्वादृश् (तुझ सा)	युष्मादृश् (तुम्हारा सा)
त्वादृश (")	युष्मादृश (")

धनिन्	—	धनितर ,	धनितम
महत्	—	महत्तर ,	महत्तम
गुरु	—	गुरुतर ,	गुरुतम
लघु	—	लघुतर ,	लघुतम
पाचक	—	पाचकतर ,	पाचकतम

(ख) गुणवाची शब्दों के अनन्तर या तो तरप् तथा तमप् प्रत्यय जोड़ते हैं, या ईयसुन् (ईयस्) और इष्ठन् (इष्ठ)। जहाँ दोनों तरप् अथवा ईयसुन् व तमप् अथवा इष्ठन् जोड़ने की अनुमति है वहाँ ईयसुन् और इष्ठन् जोड़ना अधिक मुहावरेदार समझा जाता है। इन दो प्रत्ययों के पूर्व, विशेषण के अन्तिम स्वर और उसके उपरान्त यदि कोई व्यञ्जन हो तो उसका भी (यथा—पटु का केवल पट् रह जाता है, लघु का लघ्, धनिन् का धन्) लोप हो जाता है। कहीं २ और भी अन्तर हो जाता है। उदाहरणार्थ —

पटु	—	पटीयस् ,	पटिष्ठ
लघु	—	लघीयस् ,	लघिष्ठ
धनिन्	—	धनीयस् ,	धनिष्ठ
निकट	—	नेदीयस् ,	नेदिष्ठ
अल्प	—	अल्पीयस् ,	अल्पिष्ठ
क्षिप्र	—	क्षेपीयस् ,	क्षेपिष्ठ
गुरु	—	गरीयस् ,	गरिष्ठ
दीर्घ	—	द्राघीयस् ,	द्राघिष्ठ

(ग) किम् शब्द से

कियत् (कितना) कियती (कितनी)

(घ) यद् शब्द से

यावत् (जितना) यावती (जितनी)

(ङ) एतद् से

एतावत् (इतना) एतावती (इतनी)

परिमाण के अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग केवल एक वचन में
। सकता है, यथा —

कियानध्वाऽधुनावशिष्ट ?

तावानेव यावान् भवता लङ्घित ।

तेन कियती सम्पत्ति गुरवे समर्पिता ?

तावती, यावती गुरुणा याचिता ।

९४-सख्यासूचक 'इतने, कितने' आदि शब्दो का अर्थ
खाने के लिए सस्कृत मे दो उपाय हैं —

(१) ऊपर ९३ के शब्दो को बहुवचन मे प्रयोग करना, इस
ा मे विशेष्य के लिङ्ग और विभक्ति के अनुसार उनमे भी
रिवर्तन होगा, यथा —

कियन्त पुरुषा आगता, कियत्य स्त्रिय ?

तावन्त पुरुषा यावन्त ह्य आगता, तावत्य एव स्त्रिय
यादि ।

(२) किम्, यद् और तद् से बने हुए नीचे लिखे शब्दों का
ाग—

इस प्रकार कर्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधिकरण ये ६ कारक हुए। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियाँ आती हैं।

क्रिया में जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला सकता है, ऐसे वाक्यों में जैसे गोविन्द के लड़के गोपाल को श्याम ने पीटा' पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसको पीटा) और श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। इस लिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते। गोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है किन्तु पीटने की क्रिया के सम्पादन में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नहीं होता।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियों के प्रयोग पर विचार होगा।

१०५ प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा—

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल शब्द का अर्थ बतलाने के लिए, अथवा केवल लिङ्ग और शब्दार्थ बतलाने के लिए, अथवा परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

(१) केवल प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है शब्द, जिसको अँगरेज़ी में (Base) बेस् या (Crude form) क्रूड् फार्म कहते हैं।

(ज) किम् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
कीदृश् (कैसा)	कीदृशी (कैसी)
कीदृश (")	

(झ) भवत् शब्द से

पु० तथा नपु०	स्त्री०
भवादृश् (आप सा)	भवादृशी (आपसी)
भावादृश (")	

इनमे शकारान्त के रूप शकारान्त पुलिङ्ग अथवा नपुसक लि सज्ञाओं के अनुसार तथा ईकारान्त के ईकारान्त (नदी) सज्ञा अनुसार चलते हैं। जेसा ऊपर कह चुके हैं इनके लिङ्ग, व और विभक्ति विशेष्य के अनुसार रहते हैं।

९३—परिमाणसूचक 'इतना, कितना' आदि शब्दा अर्थ दिखाने के लिए सस्कृत मे इदम् आदि शब्दों से विशे बनते हैं। वे इस प्रकार हैं। इनमे तकारान्त शब्दों के रूप पुलि तकारान्त श्रीमत् (६८) तथा नपुसक लिङ्ग मे जगत् (६८ ग अनुसार चलते हैं, और ईकारान्त शब्दों के नदी के समान।

(क) इदम् शब्द से

इयत् (इतना)	इयती (इतनी)

(ख) तद् शब्द से

तावत् (उतना)	तावती (उतनी)

प्रकार सात विभक्तियाँ होती हैं। इन विभक्तियों का क्या प्रयो होता है यह इस परिच्छेद में दिखाया जायगा।

'कारक' का अर्थ है ऐसी वस्तु जिसका क्रिया के सम्पादन में उपयोग आवे। उदाहरण के लिए 'अयोध्या में रघु ने अपने हाथ से लाखों रुपए ब्राह्मणों को दान दिए', इस वाक्य में दान क्रिया के सम्पादन के लिए जिन २ वस्तुओं का उपयोग हुआ व 'कारक' कहलाएँगी। दान की क्रिया किसी स्थान पर हो सकती है, यहाँ अयोध्या में हुई इसलिए 'अयोध्या' कारक हुई, इस क्रिया के करने वाले रघु थे इस लिए 'रघु' कारक हुए, यह क्रिया हाथ से सम्पादित हुई इस लिए 'हाथ' कारक हुआ, रुपए दिए गये इस लिए 'रुपए' कारक हुए, और ब्राह्मणों को दिए गए इसलिए 'ब्राह्मण' कारक हुए। क्रिया के सम्पादन के लिए इस प्रकार छः[1] सम्बन्ध स्थापित होते हैं —

क्रिया का सम्पादक—कर्त्ता
क्रिया का कर्म—कर्म
क्रिया का सम्पादन जिसके द्वारा हो—करण
क्रिया जिसके लिए हो—सम्प्रदान
क्रिया जिससे निकले, या जिससे दूर हो—अपादान
क्रिया जिस स्थान पर हो—अधिकरण

---

१ कर्त्ता कर्म च करणं च सम्प्रदानं तथैव च।
अपादानाधिकरणे इत्याहुः कारकाणि षट्॥

इस प्रकार कर्तृ, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान और अधि
रण ये छ कारक हुए। इन्हीं कारकों के व्यवहार में विभक्तियाँ
ाती हैं।

क्रिया से जिसका सीधा सम्बन्ध होता हो वही कारक कहला
कता है, ऐसे वाक्यों में जैसे गोविन्द के लड़के गोपाल ने श्याम
पीटा' पीटने की क्रिया से सीधा सम्बन्ध गोपाल (जिसने पीटा)
ार श्याम (जिसने पीटा) का है, गोविन्द का कुछ भी सम्बन्ध
हीं है। इस लिए "गोविन्द के" को कारक नहीं कह सकते।
ोविन्द का सम्बन्ध गोपाल से है किन्तु पीटने की क्रिया के
म्पादन में उसका (गोविन्द का) कोई उपयोग नहीं होता।

अब क्रमानुसार प्रथमा आदि विभक्तियों के प्रयोग पर विचार
ागा।

१०५ प्रथमा

(क) प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा—

प्रथमा विभक्ति का उपयोग केवल शब्द का अर्थ बतलाने के
लिए, अथवा केवल लिङ्ग और शब्दार्थ बतलाने के लिए, अथवा
परिमाण अथवा वचन बतलाने के लिए किया जाता है।

उदाहरणार्थ—

(१) केवल प्रातिपदिकार्थ—प्रातिपदिक का अर्थ है शब्द, जिसको
अँगरेज़ी में (Base) बेस् या (Crude form) क्रूड फाम कहते हैं।

(क) सर्व शब्द के एक वचन के रूप परिमाणवाची ह
हैं, यथा —

सर्वाऽपि विद्या विमुखीभूव,
सर्वोऽपि प्रबन्ध सभाया पठित
सर्वमपि वाक्यमुच्चारितम् इत्यादि

बहुवचन के रूप सख्यावाची 'सब' का अर्थ देते हैं, यथा—सर्वेषा धनिकानां धन क्षणस्थायि।

द्विवचन के रूप प्रयोग मे नहीं मिलते किन्तु यदि किन्हीं दो वस्तुओ के साथ सब का अर्थ लाना हो तो द्विवचन का प्रयो कर सकते हैं।

९६—परिमाणवाची अल्प (थोड़ा), अर्ध (आधा) नेम (आधा), सम (बराबर) तीनों लिङ्गों मे अलग अलग रू रखते हैं—पुलिङ्ग में बालक के समान, नपुसक लिङ्ग में फल के समान और स्त्रीलिङ्ग मे विद्या के समान। केवल अल्प, अर्ध और नेम के पुलिङ्ग में प्रथमा के बहुवचन मे दो रूप होते हैं—अल्पे अल्पा, अर्धे अर्धा, नेमे नेमा।

(क) पूरक सख्यावाची प्रथम और चरम शब्द के रूप भी तीनों लिङ्गों में चलते हैं, जसे परिमाणवाची अल्प आदि के। इन भी पुलिङ्ग प्रथमा के बहुवचन मे दो रूप होते हैं—प्रथमे प्रथमा, चरमे चरमा।

प्रत्येक शब्द का कुछ नियत अर्थ होता है, और संस्कृत के वैयाकरणों के हिसाब से किसी शब्द में जब तक प्रत्यय लगाकर पद (सुप्तिङन्त पद) न बना लिया जाय तब तक उसका अर्थ नहीं समझा जा सकता। यदि किसी शब्द के केवल अर्थ का बोध कराना हो तो प्रथमा विभक्ति लगाते हैं—जैसे यदि केवल ' राम ' उच्चारण करें तो संस्कृत में यह शब्द निरर्थक होगा—यदि "राम" कहें तब राम शब्द के अर्थ का बोध होगा। इसी लिए संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण ही में नहीं, प्रत्युत अव्ययों तक में भी संस्कृत वैयाकरण प्रथमा लगाते हैं, यदि न लगाएँ तो उन अव्ययों का अर्थ ही न निकले—जैसे नीचै, उच्चै आदि।

(२) केवल शब्दार्थ और लिङ्ग—ऐसे शब्द जिनमें लिङ्ग नहीं होता (जैसे उच्चै आदि अव्यय) और ऐसे जिनका लिङ्ग नियत है अर्थात् मालूम है कि यह शब्द केवल पुलिङ्ग में होता है (जैसे वृक्ष), अथवा केवल नपुंसक लिङ्ग में होता है (जैसे फलम्) अथवा केवल स्त्रीलिङ्ग में होता है (जैसे कन्या) इनको छोड़ कर बाक़ी शब्दों का अर्थ और लिङ्ग दोनों प्रथमा विभक्ति के द्वारा ही जान पड़ते हैं, जैसे—तट, तटी, तटम् इन शब्दों में तट से यह ज्ञात होता है कि यह शब्द पुलिङ्ग में है और इसका अर्थ किनारा है, तटी स्त्रीलिङ्ग है और इसका अर्थ किनारा है, तटम् नपुंसकलिङ्ग है और इसका भी अर्थ किनारा है।

(३) केवल परिमाण—जैसे सेरो ब्रीहि, यहाँ प्रथमा विभक्ति से सेर का परिमाण विदित होता है। कितना चावल ? सेर भर चावल—इस अर्थ के लिए यहाँ प्रथमा विभक्ति है।

(ख) संख्यावाची कतिपय (कुछ) शब्द के रूपों के विषय में ऊपर लिखा हुआ नियम लगता है, यथा—वर्षैः कतिपयैरेव।

(ग) तीय प्रत्ययान्त द्वितीय और तृतीय शब्दों के रूप सर्व के समान होते हैं, केवल चतुर्थी, पञ्चमी, षष्ठी और सप्तमी एक वचन में संज्ञा शब्दों (बालक फल और विद्या) के समान हैं। उदाहरण के लिए द्वितीय के रूप पुल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दिये जाते हैं —

द्वितीय

पुल्लिङ्ग

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथमा	द्वितीय	द्वितीयौ	द्वितीये
द्वितीया	द्वितीयम्	द्वितीयौ	द्वितीयान्
तृतीया	द्वितीयेन	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयैः
चतुर्थी	द्वितीयस्मै / द्वितीयाय	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
पञ्चमी	द्वितीयस्मात् / द्वितीयात्	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयेभ्यः
षष्ठी	द्वितीयस्य	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
सप्तमी	द्वितीयस्मिन् / द्वितीये	द्वितीययोः	द्वितीयेषु

(४) केवल वचन (संख्या)—जैसे 'बालक' कहने से एक बालक का, 'बालकौ' से दो बालकों का और 'बालका' कहने से कई बालकों का बोध होता है।

(ख) सम्बोधने च—

प्रथमा विभक्ति का उपयोग सम्बोधन करने में भी होता है, जैसे —

बालका ! हे बालको, कन्या ! हे कन्याओ आदि। इसी लिए सम्बोधन को अलग विभक्ति नहीं मानते। ऊपर सज्ञाओं के रूप देते समय सम्बोधन के भी रूप कहीं २ दिए गए हैं, इस से यह नहीं समझना चाहिए कि सम्बोधन की भी कोई आठवीं विभक्ति होती है। रूप केवल आसानी के लिए दिए गए हैं, क्योंकि सम्बोधन करते समय प्रथमा के एक वचन में कुछ अन्तर पड़ जाता है।

(ग) संस्कृत-व्याकरणों में ऊपर (क) और (ख) में लिखे हुए दो ही सूत्र प्रथमा विभक्ति के उपयोग के लिए मिलते हैं। अब प्रश्न यह उठता है कि सारे संस्कृत साहित्य में कर्तृवाच्य का कर्त्ता (बालक गच्छति, कन्या फलमश्नुते, लुब्धका वृक्षमारोहन्ति आदि में) और कर्मवाच्य का कर्म (हरि सेव्यते, पित्रा पुत्र ताड्यते, भ्राता भगिनी पाठ्यते, भोजन स्वाद्यते) प्रथमा विभक्ति में मिलता है। यह प्रथमा किस नियम अथवा सूत्र से सिद्ध होनी चाहिए। इसका समाधान इस प्रकार है। संस्कृत भाषा में क्रिया अथवा व्यापार को ही वाक्य में प्रधानत्व दिया गया है। क्या करना है इसके बारे में सब से पहले पूर्ण निश्चय हो जाना चाहिए; फिर कर्त्ता, कर्म आदि

द्विनवति	द्विनवत द्विनवतितम	द्विनवती द्विनवतितमी
९३ त्रयोनवति या	त्रयोनवत त्रयोनवतितम	त्रयोनवती त्रयोनवतितमी
त्रिनवति	त्रिनवत त्रिनवतितम	त्रिनवती त्रिनवतितमी
९४ चतुर्नवति	चतुर्नवत चतुर्नवतितम	चतुर्नवती चतुर्नवतितमी
९५ पञ्चनवति	पञ्चनवत पञ्चनवतितम	पञ्चनवती पञ्चनवतितमी
९६ षण्णवति	षण्णवत षण्णवतितम	षण्णवती षण्णवतितमी
९७ सप्तनवति	सप्तनवत सप्तनवतितम	सप्तनवती सप्तनवतितमी
९८ अष्टानवति या	अष्टानवत अष्टानवतितम	अष्टानवती अष्टानवतितमी
अष्टनवति	अष्टनवत अष्टनवतितम	अष्टनवती अष्टनवतितमी
९९ नवनवति या	नवनवत नवनवतितम	नवनवती नवनवतितमी
एकोनशत नपुं०	एकोनशततम	एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी

आवेंगे। ऊपर कारक (१०४) का व्याख्यान करते समय कह आए हैं कि क्रिया से सम्बन्ध रखने पर ही कारक हो सकता है। अन्य भाषाओं में किसी में कर्म को प्रधानत्व है और किसी में कर्त्ता को, जैसे अंगरेजी में कर्त्ता को। अंगरेजी में कर्त्ता निश्चित हो जाता है फिर उसके अनुसार क्रिया कर्म आदि आते हैं। परन्तु संस्कृत में क्रिया का निश्चय होना मुख्य है और उसका निश्चय हो जाने पर उसी के सम्बन्ध में अन्य कारक शब्द आते हैं। क्रिया बतला दी जाने पर उसके साथ जिस शब्द का जैसा अन्वय हो उस शब्द का वैसा कारक समझना चाहिए। उदाहरणार्थ कोई क्रिया जैसे 'गच्छति' ले लीजिए, अब 'गच्छति' से इन बातों का बोध होता है—

(१) क्रिया वर्त्तमान काल में हो रही है।

(२) इस क्रिया का सम्पादक कोई अन्यपुरुष एकवचन है। अब कोई ऐसा वाक्य ले लीजिए जिसमें "गच्छति" शब्द आता हो, जैसे—

राम ग्राम गच्छति—

इस वाक्य में दो शब्द हैं जो अन्यपुरुष और एकवचन में हैं, अर्थात् राम और ग्रामम्। ग्रामम् कर्मस्थानीय है य[ह] आगे द्वितीया के प्रयोग वाले सूत्रों से व्यक्त हो जायगा, इसलि[ए] यह कर्त्ता हो नहीं सकता, बाकी बचा 'राम' शब्द, यही कर्त्ता [हो] सकता है। इसी प्रकार कर्मवाच्य के कर्म के विषय में भी कि[...]

प०	पूर्वस्या	पूर्वयो	पूर्वासाम्
स०	पूर्वस्याम्	पूर्वयो	पूर्वासु

१०३–विशेषणों की तुलना के लिए हिन्दी में विशेषण का रूपान्तर नहीं होता, केवल आवश्यकतानुसार अधिक, ज्यादा, कम आदि शब्द विशेषण के साथ जोड़ दिए जाते हैं जैसे—श्याम से गोपाल अधिक सुन्दर है, मुझसे वह अच्छा है अथवा ज्यादा अच्छा है, गोपाल से श्याम कम सुन्दर है, इत्यादि। परन्तु संस्कृत अधिक आदि शब्द जोड़ कर तुलना नहीं की जाती, जैसे श्यामादधिकसुन्दरोऽस्ति' चाहे यह वाक्य व्याकरण नहीं [illegible] न्दीपन की गन्ध आती [illegible] प्रत्यय विशेषणों

तरप्

साथ कर्म का जिस शब्द का अन्वय लग जायगा वही कर्म होगा, जैसे—'सेव्यते' से यह पता चल जाता है कि कोई अन्यपुरुष एकवचन की संज्ञा कर्म हो सकती है। अब जिस वाक्य में 'सेव्यते' क्रिया आवे जिसका सम्बन्ध कर्म रूप ही से सिद्ध हो अन्य से नहीं वही कर्म होगा; जैसे—हरि सेव्यते इत्यादि।

इस प्रकार यह सिद्ध हुआ कि कर्तृवाच्य में क्रिया का कर्ता और कर्मवाच्य में क्रिया का कर्म यह भी प्रथमा विभक्ति में होते हैं।

---

१०६ द्वितीया

(क) कर्तुरीप्सिततम कर्म—

" किसी वाक्य में प्रयोग किए गए पदार्थों में से जिसको कर्ता सब से अधिक चाहता है उसे कर्म कहते हैं ", पाणिनि ने कर्म कारक की इस प्रकार परिभाषा दी है।

" जिस वस्तु या पुरुष के ऊपर क्रिया का फल समाप्त होता है उसे कर्म कहते हैं " यह हिन्दी तथा अँग्रेज़ी में कर्मकारक की परिभाषा बतलाई जाती है, किन्तु साहित्य में ऐसे अनेकों उदाहरण आते हैं जिन पर क्रिया का फल समाप्त तो होता है, किन्तु वे कर्मकारक नहीं माने जाते, जैसे—वह घर जाता है। यहाँ यद्यपि 'जाने' का कार्य घर पर समाप्त होता है तथापि 'घर' साधारणतः कर्म नहीं माना जाता। संस्कृत में भी 'घर'

द्विनवति	द्विनवत द्विनवतितम	द्विनवती द्विनवतितमी
९३ त्रयोनवति या	त्रयोनवत त्रयोनवतितम	त्रयोनवती त्रयोनवतितमी
त्रिनवति	त्रिनवत त्रिनवतितम	त्रिनवती त्रिनवतितमी
९४ चतुर्नवति	चतुर्नवत चतुर्नवतितम	चतुर्नवती चतुर्नवतितमी
९५ पञ्चनवति	पञ्चनवत पञ्चनवतितम	पञ्चनवती पञ्चनवतितमी
९६ षण्णवति	षण्णवत षण्णवतितम	षण्णवती षण्णवतितमी
९७ सप्तनवति	सप्तनवत सप्तनवतितम	सप्तनवती सप्तनवतितमी
९८ अष्टानवति या	अष्टानवत अष्टानवतितम	अष्टानवती अष्टानवतितमी
अष्टनवति	अष्टनवत अष्टनवतितम	अष्टनवती अष्टनवतितमी
९९ नवनवति या	नवनवत नवनवतितम	नवनवती नवनवतितमी
एकोनशत नपुं०	एकोनशततम	एकोनशततमी
१०० शत	शततम	शततमी
२०० द्विशत	द्विशततम	द्विशततमी
३०० त्रिशत	त्रिशततम	त्रिशततमी
० चतुश्शत	चतुश्शततम	चतुश्शततमी

को साधारण नियमों के अनुसार कम नहीं मानते, न 'जाना' को सकर्मक क्रिया मानते हैं। घर को कर्म मानने के लिए साधारण नियमों के अतिरिक्त विशेष नियम हैं। इसी प्रकार और भी स्थल दिखाए जाँयगे जोकि कर्म की साधारण परिभाषानुसार कर्म के अन्तर्गत नहीं होते और जिन्हें कर्म संज्ञा देने के लिए विशेष विशेष सूत्रों की रचना करनी पड़ी।

(ख) कर्मणि द्वितीया–

कर्म को बतलाने के लिए द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है। जैसे —

भक्त हरि को भजता है। इसमें 'हरि को' कर्म है, इसलिए हरि शब्द में द्वितीया करनी होगी—भक्तो हरिं भजति। ब्रह्मचारी वेदमधीते।

(ग) अधिशीङ्स्थासां कर्म–

शी, स्था, तथा आस् धातुओं के पूर्व यदि अधि-उपसर्ग लगा हो तो इन क्रियाओं का आधार कर्म कहलाता है अर्थात् जिस स्थान पर इन धातुओं की क्रियाएं होती हैं वह कर्म होता है। जैसे —

चन्द्रापीड मुक्ताशिलापट्टम् अधिशिश्ये—चन्द्रापीड मुक्ताशिला की पटरी पर लेट गया।

अर्धासन[2] गोत्रभिदोऽधितस्थौ—इन्द्र के आधे आसन पर बैठता था।

भूपति सिंहासनम्[3] अध्यास्ते—राजा सिंहासन पर बैठा है।

यहां ये क्रियाएं पटरी, आसन और सिंहासन पर, जो आधार हुई हैं इसलिए इन शब्दों को कर्म कहेंगे और इनमें द्वितीया विभक्ति होगी। यदि अधि-उपसर्ग न लगा होता तो आधार के अर्थ में सप्तमी होती—शिलापट्टे शिश्ये, अर्धासने तस्थौ, सिंहासने आस्ते।

(घ) अभिनिविशश्च

अभि तथा नि उपसर्ग जब एक साथ विश् धातु के पहिले आते हैं तो विश् का आधार कर्म कारक होता है, जैसे —

सन्मार्गम् अभिनिविशते—वह अच्छे मार्ग का अनुसरण करता है।

धन्या सा कामिनी याम् भवन्मनोऽभिनिविशते—वह स्त्री धन्य है जिसके ऊपर आपका मन लगा है।

१,२,३ ये सब क्रियाओं के आधार हैं, इसलिए वास्तव में ये अधिकरण हैं और इनमें सप्तमी होनी चाहिए थी, किन्तु इस नियम विशेष से ये कर्म हो गए हैं और इनमें द्वितीया हो गई।

ानी से " का संस्कृतानुवाद जल शब्द के तृतीयान्त से होगा
। जलेन—राम जलेन मुख प्रक्षालयति।

ग) अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया–

अर्थात् कर्तृवाच्य मे जो कर्ता रहता है वह कर्मवाच्य तथा
भाववाच्य मे तृतीयान्त हो जाता है जैसे—

रामो हन्ति—कर्तृवाच्य रामेण हन्यते—कर्मवाच्य।
राम स्वपिति—कर्तृवाच्य, रामेण सुप्यते—भाववाच्य।
अह जीवामि—कर्तृवाच्य, मया जीव्यते—भाववाच्य।

घ) प्रकृत्यादिभ्य उपसख्यानम्–

अर्थात् प्रकृति आदि (स्वभावादि) अर्थों मे तृतीया होती है,
जैसे—प्रकृत्या दयालु —स्वभाव से दयालु

नाम्ना श्यामोऽयम्—यह श्याम नामक है,
सुखेन जीवति—सुख से जीता है अर्थात् सुखपूर्वक जीता है,
शिशु क्लेशेन स्थातु शक्नोति—बच्चा कठिनता से खड़ा हो
जाता है,

अर्जुन सरलतया पठति—अर्जुन आसानी से पढ लेता है।

नोट —इन सब उदाहरणो के देखने से यह स्पष्ट है कि यह
प्राय उन स्थलो में लगता है जो अँग्रेजी मे क्रियाविशेषण या
क्रियाविशेषण वाक्य कहलाते हैं। उदाहरणार्थ ऊपर के वाक्यो मे
पाए हुए तृतीयान्त " प्रकृत्या—Naturally (adverb) या By

किन्तु संस्कृत में का, की स्थानीय षष्ठी न लगकर द्वितीया लगती है। अनुवाद के समय इसका ध्यान रखना चाहिए।

(ज) अभितःपरितःसमयानिकषाहाप्रतियोगेऽपि—

अभित (चारों ओर या सब ओर), परित (सब ओर), समया (समीप), निकषा (समीप), हा, प्रति (ओर, तरफ़) शब्दों को जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें द्वितीया होती है, जैसे —

परिजन राजानम् अभित तस्थौ—नौकर लोग राजा के चारों ओर खड़े थे।

रक्षांसि वेदीं परितो निरास्थत्—राक्षसों को वेदी के चारों ओर से निकाल दिया।

ग्राम समया निकषा वा—ग्राम के समीप।

हा शठम्[२]—हाय शठ।

मातु हृदय कन्या प्रति स्निग्ध भवति—माता का हृदय कन्या की ओर (कन्या के प्रति) कोमल होता है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी और संस्कृत दोनों के व्यवहार में विभिन्नता है। प्रति के साथ हिन्दी में षष्ठी लगती है, संस्कृत में द्वितीया, इसी प्रकार अभित परित, समया, निकषा के साथ भी होता है।

---

२ हा के साथ कभी कभी सम्बोधन भी होता है ; जैसे —
हा भगवत्यरुन्धति।

nature (adverbial phrase) से, नाम्ना—By nam (adverbial phrase) से, सुखेन—Happily अथवा I happiness (adverbial phrase) से, क्लेशेन—With difficulty (adverbial phrase) से, सरलतया—Easi (adv) या With ease (adverbial phrase) से अनूदित होते हैं।

(च) अपवर्गे तृतीया

फलप्राप्ति अथवा कार्यसिद्धि को "अपवर्ग" कहते हैं, और अपवर्ग के अर्थ का बोध कराने के लिए कालवाची तथा मार्गवाची शब्दों में तृतीया होती है, अर्थात् जितने "समय" में या जितना "मार्ग" चलते चलते कोई कार्य सिद्ध हो जाता है, उस "समय" और "मार्ग" में तृतीया होती है, जैसे—

मासेन व्याकरणम् अधीतवान्—महीने भर में व्याकरण पढ़ लिया, अर्थात् महीने भर व्याकरण पढ़ा और भली भाँति आगया एवं पढ़ने का कार्य महीने भर मे सिद्ध हो गया।

कोशेन पुस्तकं पठितवान्—कोस भर में पुस्तक पढ़ डाली अर्थात् एक कोस चलते चलते पुस्तक पढ़ डाली। इसी प्रकार

चतुर्भिः वर्षैर्गृहं निर्मापितवान्—चार वर्ष मे घर बनवा लिया

पञ्चविंशत्या दिवसैः अयमिमं ग्रन्थं लिखितवान्—पचीस दिन इसने यह ग्रन्थ लिख डाला।

(भ) अन्तराऽन्तरेण युक्ते—

अन्तरा (बीच में), अन्तरेण (विषय में, बिना, छोड़ कर) शब्दों जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उसमें द्वितीया होती है, जैसे—

अन्तरा त्वां मां हरि —तुम्हारे हमारे बीच में हरि हैं।

रामम् अन्तरेण न किञ्चिद् जानामि—राम के बारे में मैं कुछ नहीं जानता।

त्वामन्तरेण कोऽन्य प्रतिकर्तुं समर्थः—तुम्हारे बिना दूसरा कौन बदला लेने में समर्थ है।

नोट—यहाँ भी हिन्दी में षष्ठी होती है और संस्कृत में द्वितीया।

(ट) कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे द्वितीया—

जब कोई क्रिया लगातार कुछ समय तक होती रहे या कोई वस्तु कुछ दूरी तक लगातार हो तो समय और मार्गवाचक शब्द में द्वितीया होती है, जैसे —

चत्वारि वर्षाणि वेदम् अधिजगे—चार वर्ष तक वेद पढ़ा।

सहस्र वर्षाणि राक्षस तपस्तप्तवान्—राक्षस ने हजार वर्ष तक लगातार तप किया।

क्रोश कुटिला नदी—नदी कोस भर तक टेढ़ी है।

सभा वैश्रवणी राजन् शतयोजनमायता—हे राजन, विश्रवण की सभा सौ योजन लम्बी है।

सप्तभि दिनै निरोगो जात—सात दिन में नीरोग हो गया।

योजनाभ्यां कथा समाप्तवान्—दो योजन भर में कहानी खतम कर दी।

(छ) सहसाकसार्धसमयोगे तृतीया

सह, साक, सार्धं, सम, इन सब शब्दो का अर्थ "साथ" होता है। इनके प्रयोग मे तृतीया आती है, जैसे—

राम जानक्या सह, साक, सार्धं, सम वा गच्छति—राम जानकी के साथ जाते हैं। इसी प्रकार —

पुत्रेण सह पिता गच्छति--पिता पुत्र के साथ जाता है।

हनुमान् वानरै सह जानकीं मार्गयामास—हनुमान् जी ने बन्दरों के साथ जानकी को खोजा।

मया सह क्रीड—मेरे साथ खेलो।

उपाध्याय छात्रै सह स्नाति—उपाध्याय विद्यार्थियों के साथ नहाता है।

नोट—'साथ सङ्ग', आदि के साथ जो शब्द आता है, उसमें हिन्दी में—का— जो षष्ठी का स्थानीय है लगाया जाता है, किन्तु सस्कृत में तृतीया लगाई जाती है।

(ज) पृथग्विनानानाभिस्तृतीयाऽन्यतरस्याम्।

पृथक् (अलग), विना, नाना शब्दों के साथ तृतीया, द्वितीया तथा पञ्चमी विभक्तियो मे से कोई एक हो सकती है, जैसे—

दशयोजनविस्तीर्णा त्रिंशद्योजनमायता ।
छाया वानरसिंहस्य जले चारुतराऽभवत् ॥

वानरश्रेष्ठ (हनुमान जी) की परछाईं जो कि दश योजन चौड़ी और तीस योजन लम्बी थी जल में अधिक सुन्दर लगती थी ।

'आयता दश च द्वे च योजनानि महापुरी ।
श्रीमती त्रीणि विस्तीर्णा सुविभक्तमहापथा'

(ठ) एनपा द्वितीया

एनप् प्रत्ययान्त शब्द की जिससे सन्निकटता प्रतीत होती है उसमें द्वितीया या षष्ठी होती है , जैसे —

ग्रामं ग्रामस्य वा दक्षिणेन—गाँव के दक्षिण की ओर ।
उत्तरेण नदीम् नदी के उत्तर ।
दण्डकान् दक्षिणेन—दण्डक के दक्षिण ।
तत्रागार धनपतिगृहानुत्तरेणास्मदीय—वहाँ पर कुबेर के महल उत्तर मेरा घर है ।

यहाँ दक्षिणेन, उत्तरेण इन दोनों शब्दों में एनप् प्रत्यय है ।

(ड) गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि

जब कि गत्यर्थक धातुओं (ऐसी धातुएँ जिनका अर्थ 'जाना' हो जैसे गम्, चल्, इण् आदि) का कर्म मार्ग नहीं रहता है और क्रिया निष्पन्न में शरीर से व्यापार करना पड़ता है तो उस कर्म में द्वितीया चतुर्थी होती है , जैसे —

रामेण, राम, रामाद् विना दशरथो नाजीवत्—राम के बिना दशरथ नहीं जिए।

सीता चतुर्दशवर्षाणि राम, रामेण, रामाद् वा पृथगुवास—सीता चौदह वर्ष तक राम से अलग रहीं।

जल, जलेन, जलाद् विना कमलं स्थातु न शक्नोति—जल के बिना कमल नहीं ठहर सकता।

अन्न, अन्नेन, अन्नाद् विना नरो न जीवति—अन्न के बिना मनुष्य नहीं जीता।

कौरवा पाण्डवेभ्य पृथगवसन्—कौरव लोग पाण्डवों से अलग रहते थे।

(भ) येनाङ्गविकारः

शरीर के जिस अङ्ग में खराबी रहती है उसमें तृतीया होती है, जैसे—

अक्ष्णा काण —एक आँख का काना।
देवदत्त शिरसा खल्वाटोऽस्ति — देवदत्त सिर का गंजा है।
गिरिधर कर्णेन बधिर — गिरिधर कान का बहरा है।
रमेश पादेन खञ्ज — रमेश पैर का लँगड़ा है।
सुरेश कट्या कुब्ज — सुरेश कमर का कुबड़ा है।

यहाँ भी हिन्दी के–का–के स्थान में तृतीया का प्रयोग संस्कृत में होता है।

गृह गृहाय वा गच्छति । यहां पर 'गृह' मार्ग नहीं है, बल्कि स्थान और घर जाने में हाथ, पैर तथा शरीर के और अङ्गों को हिलाना पड़ता है, इस लिए गृह, गृहाय दोनों होता है। यदि गत्यर्थक धातु का कर्म "मार्ग" हो तो केवल द्वितीया होती है, जैसे—पन्थानं गच्छति ।

जहाँ शरीर से व्यापार नहीं करना पड़ता वहाँ केवल द्वितीया होती है, जैसे—मनसा हरिं व्रजति । यहाँ पर हरि के पास मन के द्वारा जाता है—जिसमें कि जाने वाले को हाथ, पैर अथवा शरीर का और कोई अङ्ग नहीं हिलाना डुलाना पड़ता, एवं इसमें शरीर-व्यापार नहीं होता, इसलिए चतुर्थी नहीं हो सकती। इसी प्रकार —

नरपतिहितकर्ता द्वेष्यतां याति लोके ।

तदानं गृत्सुरभि क्षितीश्वरो रहस्युपाघ्राय न तृप्तिमाययौ ।

विद्या ददाति विनयं, विनयाद् याति पात्रताम् ।

अश्वत्थामा किं न यातः स्मृतिं ते ।

परशाद्गुमारण्यां मुमुक्षी जगाम ।

(ढ) दूरान्तिकार्थेभ्यो द्वितीया च ।

दूर, अन्तिक (निकट) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों में द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी अथवा सप्तमी होती है, जैसे—ग्रामात्, ग्रामस्य वा दूरं, दूरेण, दूरात् दूरे वा ।

वनस्य, वनाद् वा अन्तिकं, अन्तिकेन, अन्तिकात्, अन्तिके वा ।

गृहस्य निकटं, निकटेन, निकटात्, निकटे वा ।

(ट) तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयाऽन्यतरस्याम्

"तुला" तथा "उपमा" इन दो शब्दों को छोड़ कर शेष सब तुल्य (समान, बराबर) का अर्थ बताने वाले शब्दों के साथ तृतीया अथवा षष्ठी होती है; जैसे—

कृष्णस्य, कृष्णेन वा तुल्य, सदृश, समो वा—कृष्ण के बराबर या समान।

दुर्योधनो भीमेन भीमस्य वा तुल्यो बलवान् नासीत्—दुर्योधन भीम के बराबर बली नहीं थे।

नाय मया मम वा सम पराक्रमं बिभर्ति—यह मेरे समान पराक्रम नहीं रखता।

मा लोकयात्म्श्रवणादहासी श्रुतस्य किं तत् सदृशं कुलस्य।

तुला और उपमा के साथ तृतीया ही होती है—"तेन तुला उपमा वा"।

(ठ) हेतौ तृतीया

जिस कारण या प्रयोजन से कोई कार्य किया जाता है या होता है उसमें तृतीया होती है, जैसे —

पुण्येन दृष्टो हरि —पुण्य के कारण हरि दिखाई पड़े।

अध्ययनेन वसति—अध्ययन के प्रयोजन से रहता है।

धन परिश्रमेण भवति—धन परिश्रम से होता है।

तेनापराधेन दण्ड्योऽसि—उस अपराध के कारण तुम दण्डनीय हो।

बुद्धि विद्यया वर्धते—बुद्धि विद्या से बढ़ती है।

हेतु में पञ्चमी भी होती है; यथा —

(ग) दुह्याच्पच्दण्ड्रुधिप्रच्छिचिब्रूशासुजिमथ्मुषाम्।
कर्मयुक् स्यादकथितं तथा स्यान्नीहृकृष्वहाम्॥

दुह् (दुहना), याच् (माँगना), पच् (पकाना), दण्ड् (दण्ड देना), रुध् (रोकना, रूंधना), प्रच्छ् (पूछना), चि (इकट्ठा करना) ब्रू (कहना) शास् (शासन करना), जि (जीतना), मन्थ् (मथना) मुष् (चुराना), नी (ले जाना), हृ (हरना), कृष् (खींचना) वह् (ढोना), यह धातुएं द्विकर्मक हैं ; जैसे—

गां दोग्धि पयः—गाय से दूध दुहता है।
बलिं याचते वसुधाम्—बलि से पृथ्वी माँगता है।
तण्डुलान् ओदनं पचति—चावलों का भात पकाता है।
गर्गान् शतं दण्डयति—गर्गों पर एक सौ रुपए दण्ड लगाता है।
व्रजमवरुणद्धि गाम्—गाय को बाड़े में घेरता है।
माणवकं पन्थानं पृच्छति—माणवक से रास्ता पूछता है।
वृक्षमवचिनोति फलानि—वृक्ष के फलों को इकट्ठा करता है।
माणवकं धर्मं ब्रूते शास्ति वा—माणवक से धर्म कहता है।
शतं जयति देवदत्तम्—देवदत्त से एक सौ जीत लेता है।
सुधां क्षीरनिधिं मथ्नाति—क्षीरसागर से अमृत मथता है।
देवदत्तं शतं मुष्णाति—देवदत्त से एक सौ चुराता है।
ग्राममजां नयति, हरति, कर्षति, वहति वा—बकरी को गाँव में ले जाता है।

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम् ।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम् ॥
प्रजानां विनयाधानाद्रक्षणाद्भरणादपि ।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः ॥
सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम् ।
अहार्यत्वादनर्घ्यत्वादक्षयत्वाच्च सर्वदा ॥
यथा प्रह्लादनाच्चन्द्रः प्रतापात्तपनो यथा ।
तथैव सोऽभूदन्वर्थो राजा प्रकृतिरञ्जनात् ॥

१०८–चतुर्थी

(क) कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्—

जिसे कोई चीज दी जाय उसे सम्प्रदान कहते हैं, जैसे—"ब्राह्मण को गाय देता है"—यहाँ पर "ब्राह्मण" सम्प्रदान है।

(ख) चतुर्थी सम्प्रदाने

अर्थात् सम्प्रदान मे चतुर्थी होती है। इस नियम के अनुसार ऊपर के उदाहरण में "ब्राह्मण" चतुर्थी में होगा, जैसे—"ब्राह्मणाय गां ददाति।" इसी प्रकार मह्यं पुस्तकं देहि—मुझे पुस्तक दो।

(ग) रुच्यर्थानां प्रीयमाणः

रुच् धातु के योग में तथा रुच् के समान अर्थवाली धातुओं के योग मे प्रसन्न होने वाला सम्प्रदान कहलाता है; जैसे—

इन धातुओं के समान अर्थ रखने वाली धातुएं भी द्विकर्मक होती हैं,

माणवक धर्म भाषते वक्ति वा।
बलिं वसुधां भिक्षते। इत्यादि

ऊपर कही हुई दुहादि धातुओं के प्रधान कर्म से जिनका सम्बन्ध होता अकथित अर्थात् अप्रधान या गौण कर्म कहे जाते हैं, जैसे—दुह् का कर्म "दूध" है दूध से सम्बन्ध रखने वाली है "गाय", य" अकथित अथवा अप्रधान कर्म है। इसी प्रकार 'अवरुणद्धि" धान कर्म "गाय" है, गाय से सम्बन्ध रखने वाला "वाड़ा" है, ड़ा" अकथित कर्म है।

पय, वसुधा, ओदन इस लिए प्रधान कर्म कहे जाते हैं क्योंकि वे कर्ता कर्म हैं और कर्म छोड़ कर दूसरे कारक हो ही नहीं सकते। गाम्, , माणवकम् इत्यादि अप्रधान कर्म हैं, क्योंकि वे कर्म के अतिरिक्त कारक भी हो सकते हैं; जैसे—

'गां दोग्धि पयः' के बदले गोः (पंचमी) दोग्धि पयः,
"व्रजम् अवरुणद्धि गाम्" ,, व्रजे अवरुणद्धि गाम्,
"माणवकं पन्थानं पृच्छति" ,, माणवकात् पन्थानं पृच्छति,

दि कह सकते हैं।

) गौणे कर्मणि दुह्यादेः प्रधाने नीहृकृष्वहाम्।
विभक्तिः प्रथमा ज्ञेया द्वितीया च तदन्यतः॥

(१) विष्णवे रोचते भक्तिः—विष्णु को भक्ति अच्छी लगती है।

(२) बालकाय मोदका रोचन्ते—लड़के को लड्डू अच्छे लगते हैं।

(३) सम्यक् भुक्तवते पुरुषाय भोजन न स्वदते—अच्छी तरह खाए हुए पुरुष को भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता।

यहाँ पर उदाहरण न० १ मे भक्ति से प्रसन्न होने वाले "विष्णु" हैं, उदाहरण न० २ में लड्डुओ से प्रसन्न होने वाला "बालक" है, और उदाहरण न० ३ मे भोजन से प्रसन्न होने वाला "पुरुष" है, इसलिए विष्णवे, बालकाय और पुरुषाय मे चतुर्थी हुई।

(घ) धारेरुत्तमर्णः

"धारि" (उधार लेना, क़र्ज़ लेना) धातु के योग में महाजन 'क़र्ज़ देने वाले' की सम्प्रदान संज्ञा होती है, जैसे —

श्याम अश्वपतये शत धारयति—श्यामने अश्वपति से एक सौ क़र्ज़ लिया है।
गोविन्दो रामाय लक्ष धारयति—गोविन्द ने राम से एक लाख उधार लिया है।

(च) क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थाना य प्रति कोपः

अर्थात् क्रुध्, द्रुह्, ईर्ष्य् तथा असूय् धातुओ के योग मे तथा इन धातुओ के समान अर्थ रखने वाली धातुओं के योग मे जिसके ऊपर क्रोध किया जाता है वह सम्प्रदान समझा जाता है , जैसे —

स्वामी भृत्याय कुध्यति—मालिक नौकर पर क्रोध करता है।

ऊपर कही हुई द्विकर्मक धातुओं में ... तक के गौण कर्म में और नी, हृ, कृष्, ... हैं, शेष कर्मों मे अर्थात् दुह् से मुष् तक के प्रधान कर्म में और नी, कृष्, वह् के गौण कर्म में द्वितीया होती है, जैसे—

कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
गोपः धेनुं पयो दोग्धि	गोपेन धेनुः पयो दुह्यते
देवाः समुद्रं सुधां ममन्थुः	देवैः समुद्रः सुधां ममन्थे
सोऽजां ग्रामं नयति, हरति, कर्षति, वहति वा	तेन अजा ग्रामं नीयते, ह्रियते, कृष्यते, उह्यते वा।

(द) गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ (कर्म)।

(१) ऐसी धातुएं जिनका अर्थ जाना हो, जैसे—गम्, या, ... आदि।

(२) ऐसी धातुएं जिनका अर्थ कुछ समझना या ज्ञान प्राप्त करना हो, जैसे—बुध् (जानना), ज्ञा (जानना), विद् (जानना) आदि।

(३) ऐसी धातुएं जिनका अर्थ खाना हो, जैसे—भक्ष्, अद्, भु... आदि।

(४) ऐसी धातुएं जिनका कर्म कोई शब्द हो, जैसे—पठ् (पढ़ना), उच्चर् (बोलना) आदि, और—

(५) ऐसी धातुएं जिनका कोई कर्म न हो, जैसे—उप... बैठना आदि।

खला सज्जनेभ्य असूयन्ति—दुष्ट लोग सज्जनों में ऐब निकाला करते हैं।

दुर्योधन पाण्डवेभ्य ईर्ष्यति स्म—दुर्योधन पाण्डवों से ईर्ष्या करता था।

शठा सर्वेभ्यो द्रुह्यन्ति—शठ लोग सब से द्रोह करते हैं।

सीता रावणाय अकुप्यत्—सीता जी ने रावण के ऊपर कोप किया।

(छ) तुमर्थाच्च भाववचनात्

अर्थात् किसी धातु में तुमुन् प्रत्यय (के लिए) जोड़ने से जो अर्थ निकलता है (जैसे अत्तुम् खाने के लिए पातुम् पीने के लिए आदि) वही अर्थ पाने के लिए उस धातु से बनी हुई भाववाचक संज्ञा में चतुर्थी होती है, जैसे—

यागाय याति—(यष्टुं याति)—यज्ञ करने के लिए जाता है।

इसमें "याग" शब्द "यज्" धातु से बना हुआ भाववाचक है। यज् धातु में तुमुन् जोड़ने से "यष्टु" बनता है, जिसका अर्थ "यज्ञ करने के लिए" होता है। वही (यज्ञ करने के लिए) अर्थ पाने के लिए इस भाववाचक याग शब्द में चतुर्थी कर दी है। इसी प्रकार —

शयनाय इच्छति (शयितुम् इच्छति)—सोना चाहता है।

उत्थानाय यतते (उत्थातुं यतते)—उठने की कोशिश करता है।

मरणाय गङ्गातटं गच्छति (मर्तुं गङ्गातटं गच्छति)—मरने के लिए गङ्गातट को जाता है।

इनका साधारण दशा में जो कर्त्ता रहता है वह णिजन्त अथवा प्रेरणा में कर्म हो जाता है, जैसे,

शत्रूनगमयत् स्वर्गं, वेदार्थं स्वानवेदयत्।
आशयच्चामृतं देवान्, वेदमध्यापयद् विधिम्।
आसयत् सलिले पृथ्वीं, य स मे श्रीहरिर्गतिः॥

अर्थात् जिन श्रीहरि ने शत्रुओं को स्वर्ग भेजा आत्मीयों को वेद का अर्थ समझाया, देवताओं को अमृत खिलाया, ब्रह्मा को वेद पढ़ाया, पृथ्वी को जल में बिठाया, वही मेरे शरणदाता हैं।

साधारण रूप	प्रेरणार्थक रूप
शत्रव स्वर्गमगच्छन्	शत्रून् स्वर्गमगमयत्
स्वे वेदार्थम् अविदु	स्वान् वेदार्थम् अवेदयत्
देवा अमृतम् आश्नन्	देवान् अमृतम् आशयत्
विधि वेदम् अध्यैत	विधिं वेदमध्यापयत्
पृथ्वी सलिले आस्त	पृथ्वीं सलिले आसयत्

नोट—प्रेरणार्थक जाना से भेजना चलना से चलाना आदि होते हैं।

१०७—तृतीया

(क) साधकतम करणम्—

अर्थात् अपने कार्य की सिद्धि में कर्ता जिसकी सब से अधिक सहायता लेता है उसे करण कहते हैं, जैसे—

दानाय धनमर्जयति (दातु धनमर्जयति)—देने के लिए धन कमाता है।

(ज) तादर्थ्ये चतुर्थी वाच्या—

(१) अर्थात् जिस प्रयोजन के लिए कोई कार्य किया जाता है उस (प्रयोजन) में चतुर्थी होती है, जैसे—

मुक्तये हरिं भजति—मुक्ति के लिए हरि को भजता है।

धनाय प्रयतते—धन के लिए प्रयत्न करता है।

शिशु मोदकाय रोदिति—बच्चा लड्डू के लिए रोता है।

(२) अथवा जिस वस्तु के बनाने के लिए किसी दूसरी वस्तु का अस्तित्व रहता है, उसमें चतुर्थी होती है; जैसे

शकटाय दारु—गाड़ी (बनाने) के लिए लकड़ी।

आभूषणाय सुवर्णम्—जेवर (बनाने) के लिए सोना।

(३) यदि कोई कार्य किसी अन्य परिणाम की प्राप्ति के लिए किया जाय तो उस परिणाम में चतुर्थी होती है, जैसे—

काव्य यशसे—यश के लिए काव्य, अर्थात् काव्य से यश होता है।

भक्ति ज्ञानाय—ज्ञान के लिए भक्ति, अर्थात् भक्ति से ज्ञान होता है।

राम पानी से मुँह धोता है—

यहाँ पर साधारण रूप से तो मुँह धोने में राम अपने हाथ तथा जलपात्र—दोनो की सहायता लेता है, यदि हाथ न लगावेगा तो मुँह किस प्रकार धो सकेगा, और यदि जलपात्र न होगा तो जल किसमें रक्खेगा। अस्तु, यह सिद्ध होगया कि राम अपने हाथ तथा जलपात्र दोनो की सहायता लेता है, किन्तु देखना यह है कि मुँह धोने मे सबसे अधिक आवश्यकता किसकी पड़ती है। इस वाक्य मे जितने शब्दो का प्रयोग किया गया है उनको देखने से यह स्पष्ट है कि मुँह धोने में सब मे अधिक महायता "पानी" की है इसलिये 'पानी" करण कारक है, और "से" करण कारक का चिह्न है।

नोट—किसी वाक्य में जो सब से अधिक आवश्यक सहायक हो उसी को करण कहेंगे। वाक्य से बाहर उससे अधिक सहायक हो सकते हैं किन्तु उनका विचार नहीं किया जाता, जैसे राम "हाथ से" मुँह धोता है। यहाँ "हाथ से" करण कारक है यद्यपि 'जल' हाथ से भी अधिक आवश्यक है, किन्तु वाक्य मे न होने से करण कारक नहीं है।

(ख) करणे तृतीया—

अर्थात् करण कारक का बोध कराने के लिये तृतीया वि... का प्रयोग होता है। एवं "राम पानी से मुँह धोता है"

(भ) क्रियार्थोपपदस्य च कर्मणि स्थानिनः

अर्थात् जब तुमुन् प्रत्ययान्त धातु का प्रयोग परोक्ष रहे तो उसके "कर्म" में चतुर्थी होती है, जैसे—

फलेभ्यो याति—(फलानि आनेतु याति)—फलों को लाने के लिए जाता है।

इस वाक्य का यथार्थ अर्थ ' फलानि आनेतु याति " है, किन्तु " फलेभ्यो याति " में तुमुनन्त ' आनेतुम् " का प्रयोग परोक्ष है, और ' आनेतुम् " का कर्म ' फलानि " है, इसलिए " फल " शब्द में चतुर्थी हुई। इसी प्रकार —

नमस्कुर्मो नृसिंहाय—(नृसिंहमनुकूलयितु नमस्कुर्मे)—नृसिंह को अनुकूल करने के लिए हम लोग नमस्कार करते हैं।

स्वयम्भुवे नमस्कृत्य—(स्वयम्भुव प्रीणयितु नमस्कृत्य)—ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए नमस्कार करके।

वनाय गा मुमोच—(वन गन्तु गा मुमोच)—वन जाने के लिए गाय छोड़ दी।

(ट) नमः स्वस्तिस्वाहास्वधाऽलंवषड्योगाच्च—

नम , स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अल, तथा वषट् शब्दों के योग में चतुर्थी होती है, जैसे—

तस्मै श्रीगुरवे नम —उन गुरु जी को नमस्कार।

रामाय नम, तुभ्य नम ।

स्वस्ति भवते—आप का कल्याण हो ।

प्रजाभ्य स्वस्ति—प्रजाओं का कल्याण हो ।

अग्नये स्वाहा—यह आहुति अग्नि को ।

पितृभ्य स्वधा ।

इन्द्राय वषट् ।

दैत्येभ्यो हरि अलम्—हरि दैत्यों के लिए काफ़ी हैं ।

मल्ल मल्लो मल्लाय—पहलवान, पहलवान के लिए काफ़ी है ।

ठ) मन्यकर्मण्यनादरे विभाषाऽप्राणिषु ।

जब अनादर दिखाया जाता है तो मन् (समझना, दिवादिगणी) धातु कर्म में चतुर्थी या द्वितीया होती है, जैसे—

न त्वा तृणं तृणाय वा मन्ये—मैं तुम्हें तिनके के बराबर भी नहीं समझता ।

१०६—पञ्चमी

क) ध्रुवमपायेऽपादानम्

जिससे कोई वस्तु अलग हो, उसे अपादान कहते हैं, जैसे—यह कोठे से गिर पड़ा "। यहाँ पर यह कोठे से अलग हो रहा, इसलिए " कोठे से " अपादान है, इसी प्रकार " पेड़ से त्ते गिरते हैं ",—मे " पेड़ " और "राम गाँव से चला गया " में गाँव " अपादान है ।

ाती हैं। षष्ठी का वाक्य की क्रिया से कोई सम्बन्ध नहीं रहता,
; तो संज्ञा का संज्ञा से अथवा संज्ञा का सर्वनाम से सम्बन्ध
ापित करती है, जैसे —

श्याम गोविन्दस्य पुत्रं ताडितवान्—

यहाँ मारने की क्रिया से गोविन्द का कोई सम्बन्ध नहीं,
म्बन्ध है तो गोविन्द के पुत्र का और श्याम का। हाँ, गोविन्द का
त्र से सम्बन्ध है,

किन्तु गोविन्द और पुत्र दोनो संज्ञाएँ हैं। श्याम मम पुत्रं
ाडितवान्।

यहाँ 'मेरा' का पुत्र से सम्बन्ध है, क्रिया से नहीं, और 'मेरा'
र्वनाम है और 'पुत्र' संज्ञा है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ
क षष्ठी किसी कारक का बोध नहीं कराती। उसका क्या
पयोग है यह नीचे के सूत्रों से प्रकट होगा।

११२—षष्ठी

क) षष्ठी शेषे—

इस सूत्र का अर्थ यह है कि जो बात और विभक्तियों से नहीं
तलाई जा सकती, उसको बतलाने के लिए षष्ठी होती है। वे
ातें सम्बन्ध विशेष हैं। जहाँ स्वामी तथा भृत्य, जन्य तथा जनक,
ार्य तथा कारण इत्यादि सम्बन्ध दिखाए जाते हैं वहाँ षष्ठी
ाती है, जैसे —

(ख) अपादाने पञ्चमी

अर्थात् अपादान में पञ्चमी होती है। इस सूत्र के अनुसार ऊपर के वाक्यों में आए हुए "कोठे से" का "प्रासादात्" से, "पेड़ से" का "वृक्षात्" से, और "गाँव से" का "ग्रामात्" से संस्कृत में अनुवाद होगा। सम्पूर्ण वाक्यों का स्वरूप इस प्रकार होगा :—

स प्रासादात् अपतत्,
वृक्षात् पर्णानि पतन्ति,
रामो ग्रामाद् जगाम।

(ग) जुगुप्साविरामप्रमादार्थानामुपसंख्यानम्

जुगुप्सा (घृणा), विराम (बन्द हो जाना, अलग हो जाना, छोड़ देना, हटना), प्रमाद (भूल करना) के समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ पञ्चमी होती है। (जिस वस्तु से घृणा करे, जिससे हटे अर्थात् जिसे दूर कर दे, जिस काम में भूल करे, इन सब में पञ्चमी विभक्ति का प्रयोग होता है)। धैर्यवान् पुरुष अपने निश्चय से नहीं हटते, राजा कर्म से टला, पाप से घृणा करता है धर्म में भूल करता है, अपना फ़र्ज़ भूल गया, इन वाक्यों में रेखाङ्कित शब्दों में संस्कृत में पञ्चमी होगी। जैसे—

न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीरा।

न नव प्रभुराफलोदयात् स्थिरकर्मा विरराम कर्मणः —वह नया राजा तब तक कर्म से न हटा जब तक कि उसे फल न मिल गया।

राज्ञः पुरुषः—राजा का पुरुष।

यहाँ पर 'राजा' स्वामी है, 'पुरुष' भृत्य है। इस "स्वा तथा भृत्य" का सम्बन्ध दिखाने को "राज्ञः" में षष्ठी हुई है।

बालस्य माता - बालक की माँ।

यहाँ पर 'बालक' जन्य अर्थात् "पैदा होने वाला" है और 'माता' जननी अर्थात् "पैदा करने वाली" है, एवं इसमें "जन्य जनक" सम्बन्ध है, और इसी को दिखलाने के लिए "बालस्य" में षष्ठी हुई है।

मृत्तिकायाः घटः—मिट्टी का घड़ा।

यहाँ पर 'मिट्टी' कारण है और 'घड़ा' कार्य है। एवं इसमें "कारणकार्य" सम्बन्ध है, और इसी को दिखाने के लिए 'मृत्तिकायाः' में षष्ठी हुई है।

(ख) षष्ठी हेतुप्रयोगे

जब 'हेतु' शब्द का प्रयोग होता है तो जो शब्द कारण या प्रयोजन रहता है वह और 'हेतु' शब्द—दोनों षष्ठी में रक्खे जाते हैं, जैसे—

अन्नस्य हेतोः वसति—वह अन्न के वास्ते रहता है, अर्थात् अन्न पाने के प्रयोजन से रहता है।

यहाँ रहने का कारण या प्रयोजन "अन्न" है, इसलिए "अन्नस्य" और "हेतोः" दोनों में षष्ठी हुई है।

अध्ययनस्य हेतोः काश्यां तिष्ठति—अध्ययन के लिए काशी में टिका है

वरमैतस्माद्विरम विरमात पर न क्षमोऽस्मि।
प्रत्यावृत्त पुनरिव स मे जानकीविप्रयोग ॥
पापाज्जुगुप्सते। धर्मात्प्रमाद्यति।
कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्त ।

(घ) ल्यब्लोपे कर्मण्यधिकरणे च ।

जब ल्यप् (प्रेक्ष्य, आनीय आदि) अथवा क्त्वा प्रत्ययान्त (दृष्ट्वा, ावा आदि) क्रिया वाक्य में प्रकट नहीं की जाती किन्तु छिपी रहती है ो उस क्रिया के कर्म और आधार पचमी में होते हैं , जैसे—

श्वशुराज्जिह्रेति—ससुर से लज्जा करती है।

वास्तव में इस वाक्य को पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका रूप ी होगा—

" श्वशुर वीक्ष्य दृष्ट्वा वा जिह्रेति, " अर्थात् ससुर को देख कर लज्जा रती है, ' श्वशुराज्जिह्रेति ' में 'दृष्ट्वा' या 'वीक्ष्य' प्रक' नहा किया गया है इसलिए ' दृष्ट्वा ' का कर्म ' श्वशुर ' पञ्चमी में हो गया।

आसनात्प्रेक्षते—आसन से देखता है।

वास्तविक रूप पूर्णरूप से प्रकट करने पर इसका आकार ी होगा —

' आसने उपविश्य स्थित्वा वा प्रेक्षते " अर्थात् आसन पर बैठ कर देखता है। " आसनात्प्रेक्षते " में 'उपविश्य' या 'स्थित्वा' प्रकट नहीं किया या है, इसलिए " उपविश्य " का आधार 'आसन' सप्तमी में न होकर ञ्चमी में हो गया।

यहाँ पर टिकने का प्रयोजन या कारण "अध्ययन" है, इस लिए ध्ययनस्य' और "हेतो" दोनों में षष्ठी हुई है।

(ग) सर्वनाम्नस्तृतीया च

जब हेतु शब्द के साथ किसी सर्वनाम का प्रयोग होता है तो सर्वनाम र हेतु शब्द—दोनों में तृतीया, पचमी या षष्ठी होती है, जैसे —

कस्य हेतो अत्र वसति
या
कस्मात् हेतो अत्र वसति —किस लिए यहाँ टिका है।
या
केन हेतुना अत्र वसति

यहाँ पर "किम्" शब्द सर्वनाम है, इसलिए "कस्य" मे षष्ठी और ना" में तृतीया और ' कस्मात्" में पचमी हुई है। इसी प्रकार —

तेन हेतुना
तस्माद् हेतो —उस कारण से।
तस्य हेतो

येन हेतुना
यस्मात् हेतो —जिस कारण से
यस्य हेतो

(घ) निमित्तपर्यायप्रयोगे सर्वासां प्रायदर्शनम्

"निमित्त" शब्द का अर्थ रखने वाले (कारण, हेतु, प्रयोजन दि) शब्दों का प्रयोग होने पर सर्वनाम में तथा निमित्त का अर्थ ने वाले शब्दों में प्राय: सभी विभक्तियाँ होती हैं, जैसे —

(च) वारणार्थानामीप्सितः

जिससे कोई वस्तु या पुरुष दूर किया जाता है या मना किया जाता वह अपादान होता है, जैसे—

यवेभ्यो गा वारयति—जौ से गाय को रोकता है।

मित्रं पापात् निवारयति—मित्र को पाप से दूर रखता है।

यहाँ पर रोकने वाले की इच्छा जौ बचाने की और पाप से हटाने का गाय को जौ से दूर करता है और मित्र को पाप से, इसलिए जौ और में अपादान कारक होने के कारण पचमी का प्रयोग हुआ।

(छ) अन्तर्धौ येनादर्शनमिच्छति

जब कोई अपने को किसी से छिपाता है तो जिससे छिपाता है अपादान होता है, जैसे—

मातुर्निलीयते कृष्णः—कृष्ण अपनी माता से छिपता है।

यहाँ पर कृष्ण अपने को " माता से " छिपाता है इसलिए "माता" अपादान कारक हुआ।

(ज) आख्यातोपयोगे

जिस गुरु या अध्यापक या मनुष्य से कोई चीज नि पूर्वक पढ़ी जाती है, अथवा मालूम की जाती है वह गुरु अध्यापक या अन्य मनुष्य अपादान होता है, जैसे—

उपाध्यायाद् अधीते—उपाध्याय से पढ़ता है।

कौशिकाद् विदितशापया—विश्वामित्र से शाप जान क उसने।

किं निमित्तम्	को हेतु	तत् प्रयोजनम्
केन निमित्तेन	क हेत	तेन प्रयोजनेन
कस्मै निमित्ताय	केन हेतुना	तस्मै प्रयोजनाय
कस्मात् निमित्तात्	कस्मै हेतवे	तस्मात् प्रयोजनात्
कस्य निमित्तस्य	कस्मात् हेतो	तस्य प्रयोजनस्य
कस्मिन् निमित्ते	कस्य हेतो	तस्मिन् प्रयोजने
	कस्मिन् हेतौ	

किन्तु जब सर्वनाम का प्रयोग नहीं रहता तब प्रथमा, द्वितीया नहीं होतीं, शेष सब विभक्तियाँ होती हैं, जैसे —

ज्ञानेन निमित्तेन
ज्ञानाय निमित्ताय
ज्ञानात् निमित्तात् —ज्ञान के वास्ते।
ज्ञानस्य निमित्तस्य
ज्ञाने निमित्ते

(च) षष्ठयतसर्थप्रत्ययेन

अतसुच् (तस्) प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्दों (दक्षिणत उत्तरत आदि) की तथा इस प्रत्यय का अर्थ रखने वाले प्रत्यय अन्त होने वाले शब्दों (उपरि, अध , अग्रे, आदौ, पुर आदि) जिससे सन्निकटता पाई जाती है उसमें षष्ठी होती है, जैसे —

ग्रामस्य दक्षिणत , उत्तरत , ।
रथस्योपरि रथस्य उपरिष्टात् ।
पतिव्रतानाम् अग्रे कीर्तनीया सुदक्षिणा ।

अध्यापकाद् गणित पठति—अध्यापक से गणित पढ़ता है।

तेभ्योऽधिगन्तु निगमान्तविद्या वाल्मीकिपार्श्वादिह पर्यटामि—
लोगों से वेद पढ़ने के लिए मैं वाल्मीकि के यहाँ से इस
न पर चली आई हूँ।

( )जनिकर्तुः प्रकृतिः

जन् धातु के कर्ता का आदि कारण अपादान होता है, जैसे—
कामात्क्रोधोऽभिजायते—काम से क्रोध पैदा होता है।
यहाँ "अभिजायते" का कर्ता "क्रोध" है, और इस कर्ता
ध' का "आदि कारण" "काम" है, इसलिए काम
दान कारक है।

( ) भीत्रार्थाना भयहेतुः

जिसके कारण डर मालूम हो अथवा जिसके डर के कारण
करनी हो उस कारण को अपादान कहते हैं, जैसे—
चोराद् बिभेति—चोर से डरता है।
सर्पाद् भयम्—साँप से डर है।
इनमें भय के कारण "चोर" और "साँप" हैं, इसलिए ये
दान हैं।

रक्ष मा नरकपातात्—नरक में गिरने से मुझे बचाओ।
भीमाद् शासन त्रातुम्—भीम से दु शासन को बचाने के लिए।
यहाँ भी "नरकपात" तथा "भीम" भय के कारण हैं,
लिए अपादान हैं।

वृक्षस्य अधः, वृक्षस्य अधस्तात्।

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतोः।

नोट—ये शब्द दिशा अथवा काल का बोध कराते हैं; उपरि, अध, अधः जब दोहरा कर आते हैं तब षष्ठी का प्रयोग नहीं ता किन्तु द्वितीया का (देखिए १०६ घ)।

छ) दूरान्तिकार्थैः षष्ठ्यन्यतरस्याम्

दूर, अन्तिक (समीप) तथा इनके समान अर्थ रखने वाले शब्दों का योग होने पर षष्ठी तथा पंचमी होती है; जैसे —

वनं ग्रामस्य ग्रामाद् वा दूरम्—जङ्गल गाँव से दूर है।

मत्यासन्नो माधवीमण्डपस्य—माधवी लता के कुञ्ज के समीप।

कर्णपुरं प्रयागस्य प्रयागाद् वा समीपम्—कानपुर प्रयाग से या प्रयाग के समीप है।

नोट—जिससे दूरी दिखाई जाती है उसमें षष्ठी या पंचमी होती है, किन्तु दूर वाची या निकट वाची शब्दों में द्वितीया आदि (देखिए १०६ढ)

(ज) अधीगर्थदयेशां कर्मणि

अधि पूर्वक 'इ' धातु (स्मरण करना), दय् (दया करना), ईश् (समर्थ होना) तथा इन का अर्थ रखने वाली अन्य धातुओं के कर्म में षष्ठी होती है; जैसे:—

मातुः स्मरति—माता को याद करता है।

स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः—रामचन्द्र जी के बाणों को याद करता हुआ रावण दुःखी हुआ।

(ठ) यतश्चाध्वकालनिर्माण तत्र पञ्चमी–

(१) जिस स्थान से किसी दूसरे स्थान की दूरी दिखाई जाती है तो जिससे दूरी दिखाई जाती है वह स्थान पचमी विभक्ति में रक्खा जाता है।

तद्युक्तादध्वनः प्रथमासप्तम्यौ–

और जितनी दूरी दिखाई जाती है वह दूरी वाचक शब्द प्रथमा विभ में या सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है , जैसे—

मम गृहात् प्रयाग योजनत्रयमस्ति अथवा मम गृहात् प्रयाग योज त्रये अस्ति—

यहाँ जिस स्थान से दूरी दिखाई गई है वह " घर " है, इसलिए पचमी विभक्ति में रक्खा गया है, और जितनी दूरी दिखाई गई है वह " योजन " है, इसलिए ' तीन योजन ' प्रथमा में अथवा सप्तमी म र गया है । इसी प्रकार और उदाहरण हो सक्ते हैं —

कर्णपुरात् प्रयाग अष्टादशयोजनानि अष्टादशयोजनेषु वा ।

भरद्वाजाश्रमात् गङ्गायमुनयो सङ्गम क्रोश क्रोशे वा इत्यादि ।

(२) जिस समय से किसी दूसरे समय की दूरी दिखाई जाती है वह समय पचमी विभक्ति में रक्खा जाता है।

कालात् सप्तमी वक्तव्या–

और जितनी दूरी दिखाई जाती है वह दूरी वाचक शब्द सप्तमी विभक्ति में रक्खा जाता है , जैसे—

कार्तिक्या आग्रहायणी मासे—कार्तिकी पूर्णिमा से अगहन की पूर्णिमा एक महीने पर होती है ।

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराजः—महाराज अपनी पु
ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्तः — मैं अपने अङ्गों का मालिक न रह
कथञ्चिदीशा मनसां बभूवुः—उन लोगों ने बड़ी कठिनाई से
मन को अपने बस में रक्खा।

शैवस्तिकत्वं विभवा न येषां व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्मात्—
जिनका धन प्रातःकाल तक भी नहीं टिकता उनके ऊपर तू क्यों
नहीं दया करता।

रामस्य दयमानः — राम के ऊपर दया करता हुआ।

(भ) कर्तृकर्मणोः—कृति

जब कोई क्रिया कृदन्त प्रत्यय के द्वारा प्रकट की जाती है (जैसे ग
की क्रिया "गति" से, याद करने की "स्मृति" से) तो उस क्रिया
जो कर्ता या कर्म होता है वह कृदन्त प्रत्ययान्त शब्द के साथ षष्ठी
रक्खा जाता है, उदाहरणार्थ —

कृष्णस्य कृतिः —कृष्ण का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक कृति शब्द है जो कि कृ धातु
कृदन्त क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है। और इसका कर्ता "कृष्ण"
इसलिए कृत् प्रत्ययान्त "कृति" शब्द के साथ कर्ता "कृष्ण" में
हुई है। इसी प्रकार —

रामस्य गतिः —राम की गति (चाल)।
बालकानां रोदनम्—बालकों का रोना।

यहाँ कार्तिकी पूर्णिमा से दूरी दिखाई गई है, इस लिए उसमें पचमी ई और एक महीने की दूरी दिखाई गई है इस लिए "महीने" में सप्तमी ई। इसी प्रकार अन्य उदाहरण हो सकते हैं—

अस्मात् दिवसात् गुरुपूर्णिमा दशसु दिवसेषु।

आश्विनमासस्य प्रथमदिवसात् विजयदशमी पञ्चविंशतिदिवसेषु त्यादि।

(ड) पञ्चमी विभक्ति

ईयसुन् अथवा तरप् प्रत्ययान्त विशेषण (देखिए नि० १०३) के द्वारा अथवा साधारण विशेषण या क्रिया के द्वारा जिससे किसी वस्तु का तुलनात्मक भेद दिखाया जाता है उसमें पञ्चमी होती है, जैसे —

प्रजा संरक्षति नृप सा वर्द्धयति पार्थिवम्।
वर्धनाद्रक्षण श्रेय तदभावे सदप्यसत्॥
माता गुरुतरा भूमे खात्पितोच्चतरस्तथा।
श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
एकाक्षर पर ब्रह्म, प्राणायामा पर तप।
सावित्र्यास्तु पर नास्ति, मौनात् सत्य विशिष्यते॥

इन उदाहरणों में " बढ़ाने से रक्षा करना अच्छा है," यहाँ बढ़ाने से रक्षा करने का भेद दिखाया गया है, इसलिए बढ़ाने में पञ्चमी हुई। इसी प्रकार —

वेदस्य अध्येता—वेद का अध्ययन करने वाला।

यहाँ पर "अध्येता" अधि उपसर्ग पूर्वक "इङ्" धातु तथा कृदन्त के प्रत्यय से बना है, इसका कर्म 'वेद' है। इसलिए कृदन्त "अध्येता" के साथ कर्म "वेद" में षष्ठी हुई है।

इसी प्रकार —

विषस्य भोजनम्—विष का खाना

राक्षसानां घात —राक्षसों का वध।

राज्यस्य प्राप्ति —राज्य की प्राप्ति।

ट) न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनाम

'कर्तृकर्मणो कृति' सूत्र से सभी कृदन्त प्रत्ययों के योग में कर्ता तथा में षष्ठी का विधान किया गया था; किन्तु 'नलोकाव्यय' सूत्र 'कर्तृ-णो कृति' के क्षेत्र को छोटा कर देने वाला है। इसका अर्थ है —

प्रकार के अर्थ में प्रयोग किए जाने वाले प्रत्ययों में अन्त होने वाले दों के योग में, उ, उक में अन्त होने वाले कृदन्त शब्दों के योग में, त प्रत्यय के योग में, निष्ठा (क्त क्तवतु), में अन्त होने वाले दों के योग में खल् तथा खल् के समान अर्थ रखने वाले प्रत्ययों में होने वाले शब्दों के योग में तथा तृन् प्रत्याहार के अन्तर्गत आने प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के योग में षष्ठी नहीं होती।

जो प्रत्यय जिस प्रकार में प्रयुक्त होता है वह नीचे दिखाया है :—

भूमि से माँ बड़ी है।
आकाश से पिता ऊँचा है।
दूसरे के धर्म से अपना धर्म अच्छा है।
सावित्री से श्रेष्ठ कुछ नहीं।
मौन से सत्य श्रेष्ठ है, आदि उदाहरण भी हैं।

सप्तमी

(क) आधारोऽधिकरणम्–

जिस स्थान पर कोई कार्य होता है उसे अधिकरण कहते हैं, जैसे —

वह पाठशाला में पुस्तक पढ़ता है,
यहाँ पर "पाठशाला मे" अधिकरण है।

(ख) सप्तमी अधिकरणे–

अधिकरण मे सप्तमी होती है। इस नियम के अनुसा पाठशाला शब्द को सप्तमी में रखना होगा, यथा —

पाठशालाया पुस्तक पठति।

(ग) यतश्च निर्धारणम्

यदि किसी वस्तु का अपने समुदाय की अन्य वस्तुओं किसी विशेषण द्वारा कोई विशेष निर्देश किया जाता है, अर्था विशिष्टता दिखाई जाती है तो वह समुदायवाचक शब्द सप्त अथवा षष्ठी में रक्खा जाता है, जैसे —

प्रभवति निजस्य कन्यकाजनस्य महाराज.—महाराज अपनी पुत्री
ऊपर समर्थ हैं।

गात्राणामनीशोऽस्मि संवृत्त — मैं अपने अङ्गों का मालिक न रहा
कथञ्चिदीशा मनसा बभूवु —उन लोगों ने बड़ी कठिनाई से अपने
मन को अपने वश में रक्खा।

श्वौवस्तिकत्व विभवा न येषा व्रजन्ति तेषां दयसे न कस्माद्—
जिनका धन प्रात काल तक भी नहीं टिकता उनके ऊपर तू
नहीं दया करता।

रामस्य दयमान —राम के ऊपर दया करता हुआ।

(भ) कर्तृकर्मणोः—कृति

जब कोई क्रिया कृदन्त प्रत्यय के द्वारा प्रकट की जाती है (जैसे जाने की क्रिया "गति" से, याद करने की "स्मृति" से) तो उस क्रिया का जो कर्ता या कर्म होता है वह कृदन्त प्रत्ययान्त शब्द के साथ षष्ठी में रक्खा जाता है, उदाहरणार्थ —

कृष्णस्य कृति —कृष्ण का कार्य।

यहाँ पर करना क्रिया का बोधक कृति शब्द है जो कि कृ धातु कृदन्त क्तिन् प्रत्यय जोड़ने से बना है। और इसका कर्ता "कृष्ण" है इसलिए कृत् प्रत्ययान्त ' कृति " शब्द के साथ कर्ता " कृष्ण " में ष हुई है। इसी प्रकार —

रामस्य गति —राम की गति (चाल)।

बालकाना रोदनम्—बालकों का रोना।

कविषु कालिदास श्रेष्ठ, या कवीना कालिदास श्रेष्ठ	कवियों में कालिदास सब से बड़े हैं।
गोषु कृष्णा बहुक्षीरा, या गवा कृष्णा बहुक्षीरा	गायो में काली गाय बहुत दूध देने वाली होती है।
छात्राणा मैत्र पटु, या छात्रेषु मैत्र पटु	विद्यार्थियो म मैत्र तेज है।

इन उदाहरणो मे यह दिखाया गया है कि काली गाय में कुछ विशिष्टता है, कालिदास और मैत्र मे कुछ विशिष्टता है। ये तीनों विशेष कारण से अपने २ समुदाय मे (गायो, कवियो और छात्रों में) विशिष्ट हैं।

(घ) यस्य च भावेन भावलक्षणम्–

जब किसी कार्य के हो जाने पर दूसरे काय का होना प्रतीत होता है तो जो कार्य हो चुकता है उसको सप्तमी में रखते हैं, जैसे —

सूर्ये अस्तगते गोपा गृहम् अगच्छन्—सूर्य के अस्त हो जाने पर ग्वाले अपने घर चले गए।

रामे वन गते दशरथ प्राणान् तत्याज—राम के वन चले जाने पर दशरथ जी ने अपना प्राण त्याग दिया।

सुरेशे गायति सर्वे जहसु –सुरेश के गाने पर सब हँस पड़े।

सर्वेषु शयानेषु श्यामा रोदिति—सब के सो जाने पर श्यामा रोती है।

यहाँ पर सूर्य के अस्त होने पर ग्वालों का घर जाना। राम के वन जाने पर दशरथ का प्राण त्याग करना , सुरेश के गाने पर सब का हँसना, तथा सब के सो जाने पर श्यामा का रोना प्रतीत होता है , इसलिए सूर्ये, रामे, सुरेशे, सर्वेषु ये सब के सब सप्तमी में हैं।

नोट—अँग्रेज़ी में जिसे Nominative absolute कहते हैं, वह संस्कृत में हो चुका हुआ कार्य अथवा 'सति सप्तमी' अथवा ' भावे सप्तमी बोला जाता है।

१११—ऊपर के सूत्रों से यह विदित हुआ कि—

प्रथमा विभक्ति कर्तृवाच्य के कर्ता के लिए तथा सम्बोधन के लिए।
द्वितीया विभक्ति कर्म के लिए
तृतीया विभक्ति करण के लिए
चतुर्थी विभक्ति सम्प्रदान के लिए
पञ्चमी विभक्ति अपादान के लिए और
सप्तमी विभक्ति अधिकरण के लिए प्रधान रूप से प्रयोग मे आती हैं। अर्थात् ये छ विभक्तियाँ एक २ करके छहो कारकों का बोध कराती हैं। शेष रही षष्ठी विभक्ति, इसका क्या प्रयोग है? ऊपर (१०४ मे) कह आए हैं कि केवल ऐसे शब्द (संज्ञा अथवा सर्वनाम) जिनका क्रिया से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो सकता है कारक कहे जाते हैं, इन कारको का सम्बन्ध क्रिया से स्थापित करने के लिए, षष्ठी को छोड़ कर और सारी विभक्ति

शतृ तथा शानच्— लट् लकार के अर्थ में।
क्वसु तथा कानच्— लिट् लकार के अर्थ में।
स्यतृ तथा स्यमान— लृट् लकार के अर्थ में।

शतृ तथा शानच् 'तृन्" प्रत्याहार के अन्तर्गत भी हैं, इसलिए उन
उदाहरण यहाँ न दिया जाकर उसी जगह पर दिया जायगा, यहाँ पर क्व
कानच्, स्यतृ, स्यमान के उदाहरण दिए जाँयगे —

क्वसु—काशीं जग्मिवान् पुरुष स्वर्गं लभते—
काशी गया हुआ पुरुष स्वर्ग पाता है।

कानच्—परोपकार चक्राणा जना ख्यातिं गच्छन्ति—
परोपकार कर चुके हुए लोग विख्यात हो जाते हैं।

स्यतृ—वन्यान् दुष्टसत्वान् विनेष्यन् इव—
जङ्गल के दुष्ट जीवों को सिखाता हुआ सा।

स्यमान—अक्षयवट पूजयिष्यमाणा यात्रिण गङ्गतीरे एव स्थास्यन्ति
जो यात्री अक्षयवट की पूजा करना चाहेंगे वे गङ्गा के तीर
टिक जाँयगे।

'उ' तथा 'उक' प्रत्यय के उदाहरण —

उ—हरिं दिदृक्षु —हरि को देखने का इच्छुक।

उक—दैत्यान् घातुको हरि.—हरि दैत्यों के हन्ता हैं।

कृदन्त अव्यय प्रधानतया णमुल्, क्त्वा, ल्यप्, तुमुन् इत्यादि
लगाकर बनाए जाते हैं, उनके उदाहरण —

णमुल्—स्मारं स्मार स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारि —अपने घर
चरित याद कर कर के मुरारि काठ हो गए।

क्त्वा—संसार सृष्ट्वा—संसार को रच कर।

ल्यप्—सीतां परित्यज्य लक्ष्मणोऽयासीत्।

सीता को त्यागकर लक्ष्मण जी चले गए।

तुमुन्—यशोऽधिगन्तुं सुखमीहितुं वा मनुष्यसंख्यामतिवर्तितुं वा।

यश पाने के लिए या सुख चाहने के लिए या मनुष्यों से बढ़ जाने के लिए।

क्त तथा क्तवतु 'निष्ठा' कहलाते हैं, उनके उदाहरण —

क्त—विष्णुना हता दैत्याः—दैत्यजाति विष्णु से मार डाले गए।

क्तवतु— दैत्यान् हतवान् विष्णुः—विष्णु ने दैत्यों को मार डाला।

खल् के उदाहरण —

सुकरः प्रपञ्चो हरिणा—हरि का संसार प्रपञ्च आराम से होता है।

तृन् प्रत्याहार के अन्तर्गत ये प्रत्यय हैं —शतृ, शानच् शानन्, चानश्, इनके उदाहरण ये हैं —

शतृ—बालकं पश्यन्= लड़के को देखता हुआ।

शानच्—क्लेशं सहमानः = दुःख सहता हुआ।

शानन् —सोमं पवमानः = सोमरस को पीता हुआ।

चानश्—आत्मानं मण्डयमानः =अपने को अलङ्कृत करता हुआ।

तृन्—कर्ता कटान्—चटाइयों को बनाने वाला।

नोट—इन सब प्रत्ययों का व्याख्यान "कृदन्त विचार" में आगे मिलेगा।

उप+वधू (वध्वा समीपे)=उपवधु।

उप+गो (गाव समीपे)=उपगु।

उप+नौ (नाव समीपे)=उपनु।

(२) अन् में अन्त होने वाली सज्ञाओ का " न् " (पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग मे नित्य ही, और नपुसकलिङ्ग में इच्छानुसार) निकाल दिया जाता है, जसे —

उप+राजन् (राज्ञ समीपे)=उपराज=उपराजम्,

उप+सीमन् (सीम्न समीपे)=उपसीम=उपसीमम्,

(नपु०) उप+चर्मन् (चर्मण समीपे) = उपचर्म अथवा उपचर्मन, उपचर्मम् (यदि न् निकाल दिया जाय,) अथवा उपचर्म (यदि " न् " न निकाला जाए तो) उपचर्मन् होगा।

(३) सज्ञाओ के अन्त मे कभी कभी नित्य और कभी कभी इच्छानुसार अ जोड कर सज्ञा अकारान्त बना ली जाती है, यदि सज्ञा किसी व्यजन मे अन्त होती हो तभी यह सभव है। उदाहरणार्थ —

उप+सरित् (सरित समीपे)=उपसरितम् अथवा उपसरित्।

शरद्, विपाश्, अनस्, मनस्, उपानह्, अनडुह्, दिव्, हिमवत्, दिश्, दृश्, विश्, चेतस्, चतुर्, तद्, यद् कियत्, जरस् इनमें अकार अवश्य जोड दिया जाता है, जैसे—

उपशरदम्, अधिमनसम्, उपदिशम्।

(ठ) क्तस्य च वर्त्तमाने

जब क्त प्रत्ययान्त शब्द (जो कि अधिकाश में भूतकाल का बोधक है जैसे—स गत =वह गया) वर्त्तमान के अर्थ म प्रयुक्त होता है तो षष्ठी होती है, जेसे —

अह राज्ञो मतो वुद्ध पूजितो वा—मुझे राजा मानते हैं, जानते हैं अथवा पूजते हैं।

यहाँ पर मत, वुद्ध तथा पूजित में जो क्त प्रत्यय का प्रयोग किया गया है वह वर्त्तमान के अर्थ मे है, इस वाक्य की व्याख्या यों होगी —

मा राजा मन्यते, वोधति, पूजयति वा।

विदित तप्यमान च तेन मे भुवनत्रयम् (रघुवश, १० सर्ग, ३९ श्लोक) उससे पीडित होते हुए तीनो भवन मुझे मालूम हैं।

यहाँ पर भी 'विदित' का क्त प्रत्यय वर्त्तमान के अर्थ म प्रयुक्त हुआ है। वर्त्तमान काल के स्वरूप मे लाने पर इस वाक्य का आकार यो होगा —

तेन तप्यमान भुवनत्रयम् अह वेद्मि।

(ड) कृत्याना[1] कर्त्तरि वा

जिन शब्दों के अन्त में कृत्य प्रत्यय लगे रहते हैं उनका प्रयोग होने पर कर्त्ता में तृतीया तथा षष्ठी होती है , जैसे —

[1] कृत्य प्रत्यय ये हैं—

तव्यत् तव्य, अनीयर्, यत्, ण्यत्, क्यप् और केलिमर्

(ग) अव्ययीभाव में जो अव्यय आते हैं उनके प्राय [1]
होते हैं —

(१) किसी विभक्ति का अर्थ, यथा--अधि + हरि (हरौ) = अधि
(२) समीप का अर्थ यथा—उप + गङ्गा = उपगङ्गम्।
(३) समृद्धि का अर्थ, यथा—सु + मद्र (मद्राणां सम्
=सुमद्रम्।
(४) व्यृद्धि (नाश दरिद्रता) का अर्थ यथा—दुर् +
(यवनानां व्यृद्धि) = दुर्यवनम्।
(५) अभाव, यथा—निर् + मशक (मशकानामभाव) = निर्मश
(६) अत्यय (नाश) यथा—अति + हिम (हिमस्यात्यय
अतिहिमम्।
(७) असम्प्रति (अनौचित्य) यथा—अति + निद्रा (निद्रा स
न युज्यते) = अतिनिद्रम्।
(८) शब्द प्रादुर्भाव (शब्द का प्रकाश) यथा —इति + हरि (
शब्दस्य प्रकाश) = इतिहरि।
(९) पश्चात्, यथा--अनु + विष्णु (विष्णो पश्चात्) = अनुवि
(१०) यथा का भाव (योग्यता) यथा—अनु + रूप (रूपस्य यो
= अनुरूपम्।

---

१ अव्यय विभक्तिसमीपसमृद्धिव्यृद्ध्यर्थाभावात्ययासम्प्रतिशब्दप्रादु
पश्चाद्यथानुपूर्व्ययौगपद्यसादृश्यसम्पत्तिसाकल्यान्तवचनेषु ।२।१।६ ॥

गुरु मया पूज्य
या
गुरु मम पूज्य
—गुरु जी मेरे पूज्य हैं।

न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभि —भृत्यों को अपने स्वामियों को न ठगना चाहिए।

अब प्रश्न यह उठता है कि कैसे मालूम पड़े कि "मम, मया तथा अनुजीविभि" कर्ता हैं। उत्तर यह है कि 'पूज्य' तथा 'वञ्चनीया' इत्यादि कृत्य प्रत्ययान्त क्रियाएं हैं, उन्हें बदल कर इन वाक्यों को तिङन्त क्रियाओं द्वारा कर्तृवाच्य में प्रकट करना चाहिए जैसे —

गुरु मम पूज्य —अहं गुरुं पूजयेयम्।

प्रभवोऽनुजीविभि न वञ्चनीया —अनुजीविन प्रभून् न वञ्चयेयु।

अब स्पष्ट है कि "अहं" तथा "अनुजीविन" जो कि यथार्थ कर्ता हैं, प्रथमा विभक्ति में आ गए हैं। कर्त्ता होने से ही ये कृत्य क्रियाओं के साथ तृतीया या षष्ठी में हो जाते हैं।

(ठ) षष्ठी चानादरे

जिसका अनादर या तिरस्कार करके कोई कार्य किया जाता है उसमें षष्ठी या सप्तमी होती है, जैसे—

पश्यतोऽपि राज्ञ द्विगुणमपहरन्ति धूर्ता —राजा के देखते रहते भी धूर्त लोग दुगुना चुरा लेते हैं।

रुदत पुत्रस्य वन प्राव्राजीत्—रोते हुए पुत्र का तिरस्कार करके वह सन्यासी हो गया।

„ (वीप्सा) यथा—प्रति + अर्थ (अर्थमर्थंप्रति) =प्रत्यर्थम्

„ (अनतिक्रम) यथा—यथा+शक्ति (शक्तिमनतिक्रम्य)=यथाशक्ति।

(सादृश्य) यथा—सह+हरि (हरेः सादृश्यम्) =सहरि।

(११) आनुपूर्व्य (अर्थात् क्रम) यथा—अनु+ज्येष्ठ (ज्येष्ठस्यानुपूर्व्येण)=अनुज्येष्ठम्।

(१२) यौगपद्य (एक साथ होना) यथा—सह+चक्र (चक्रेण युगपत्)=सचक्रम्।

(१३) सादृश्य का उदाहरण ऊपर (१०) के अन्तर्गत आ चुका है।

(१४) सम्पत्ति (योग्यतानुसार सम्पत्ति को सम्पत्ति कहते हैं, योग्यता से अधिक किसी देवता आदि के प्रसाद से प्राप्त हो तो उसे समृद्धि या ऋद्धि कहते हैं। इसी कारण ऊपर समृद्धि के आ चुकने पर भी यहाँ सम्पत्ति शब्द आया) यथा सु+क्षत्रिय (क्षत्रियाणां सम्पत्तिः)=सुक्षत्रियम्।

(१५) साकल्य (सब को शामिल कर लेना) यथा—सह+तृणम् (तृणमपि अपरित्यज्य)=सतृणम्।

(१६) अन्त (तक के अर्थ में) सह+अग्नि (अग्निग्रन्थपर्यन्तमधीते)=साग्नि।

निवारयतोऽपि पितु अध्ययन परित्यक्तवान्—पिता के मना करने पर भी उनका तिरस्कार करके उसने अध्ययन त्याग दिया।

दवदहनजटालज्वालजालाहतानाम्
परिगलितलताना म्लायतां भूरुहाणाम्।
अयि जलधर शैलश्रेणिश्रृङ्गेषु तोय
वितरसि बहु कोऽय श्रीमदस्तावकीन ॥

ऐ बादल ! तेरा यह कैसा भारी गर्व है कि जंगल की आग की ज्वालाओं से भस्म हो गए हुए, गलित लताओं वाले, मुरझाते हुए वृक्षों का अनादर करके तू पर्वतों के शिखरो पर तमाम पानी देता है।

यहाँ पर 'वृक्षों का' अनादर किया गया है, इसलिए "भूरुहाणाम्" में षष्ठी है।

सप्तम सोपान

समास विचार

११३—(क) छठे सोपान मे विभक्तियो का प्रयोग बताया गया है। किन्तु कहीं कहीं शब्दों की विभक्तियो का लोप करके शब्द छोटे कर लिए जाते हैं। यह तब सम्भव होता है जब दो या दो से अधिक शब्द एक साथ जोड़ दिए जाते हैं। इस प्रकार जोड़ने को ही मोटे ढग से 'समास' कहते हैं।

११६—तत्पुरुष समास

(क) तत्पुरुष उस समास को कहते हैं जिसमें प्रथम शब्द द्वितीय शब्द के विशेषण का कार्य करे, जैसे—

राज्ञ पुरुष = राजपुरुष ।

यहाँ "राज्ञ" एक प्रकार से "पुरुष" का विशेषण है, अथवा

कृष्ण सर्प = कृष्णसर्प ।

यहाँ "कृष्ण" शब्द "सर्प" शब्द का विशेषण है।

(ख) तत्पुरुष शब्द के दो अर्थ हो सकते हैं—(१) तस्य पुरुष = तत्पुरुष, (२) स पुरुष = तत्पुरुष। इन दो अर्थों के अनुसार ही तत्पुरुष समास के दो मुख्य भेद हैं (१) जिस समास का प्रथम शब्द किसी दूसरी विभक्ति मे हो अथवा व्यधिकरण, (२) जिसमे प्रथम शब्द की विभक्ति और दूसरे शब्द की विभक्ति एक ही हो अथवा समानाधिकरण। ऊपर के उदाहरणों मे "राजपुरुष" व्यधिकरण तत्पुरुष का उदाहरण है और "कृष्णसर्प" समानाधिकरण का।

११७-(क) व्यधिकरण तत्पुरुष समास—

व्यधिकरण तत्पुरुष समास के छः भेद होते हैं—

(१) द्वितीया तत्पुरुष
(२) तृतीया तत्पुरुष
(३) चतुर्थी तत्पुरुष
(४) पञ्चमी तत्पुरुष

' समास ' शब्द सम् (भली प्रकार) उपसर्ग लगा कर अस् (फेंकना) धातु से बना है और इसका प्राय वही अर्थ है जो 'संक्षेप ' शब्द का, अर्थात् दो या अधिक शब्दों को इस प्रकार मिला रख देना कि उनके आकार में कुछ कमी भी हो जाए और अर्थ भी पूर्ण विदित हो। जैसे —

सभाया पति =सभापति ।

यहाँ 'सभापति' का वही अर्थ है जो 'सभाया पति ' का, किन्तु शब्दों को साथ कर देने से " सभाया " शब्द के विभक्तिसूचक प्रत्यय (-या) का लोप हो गया और इस कारण शब्द 'सभापति ' " सभाया पति " से छोटा हो गया।

जैसे दो शब्दों को जोड कर समास करते हैं, वैसे दो या अधिक समास (समस्त शब्द) भी जोड़े जा सकते हैं जैसे—

राज्ञ पुरुष =राजपुरुष , धनस्यवार्ता=धनवार्ता, इस प्रकार दो समस्त शब्द हुए, अब यदि ये दोनों जोड़ दिए जाँय तो (राजपुरुषस्य धनवार्ता=) "राजपुरुषधनवार्ता " यह एक समस्त शब्द बना। इस प्रकार कितने ही शब्दों को जोड़ कर लम्बे २ समास बनाये जा सकते हैं। संस्कृत साहित्य में किसी २ ग्रन्थ में ऐसे २ समास हैं जो कई पंक्तियों के हैं। इनका अर्थ निकालना कठिन हो जाता है और इसी से ग्रन्थ जटिल हो जाता है।

(ख) किसी समस्त शब्द को तोड़ कर उसका पूर्वकाल का रूप दे देना " विग्रह " कहलाता है। विग्रह का अर्थ है—टुकड़े २ करना, समस्त शब्द के टुकड़े करके ही पूर्व रूप दिखाया जा

(५) षष्ठी तत्पुरुष
(६) सप्तमी तत्पुरुष।

यदि समास का प्रथम शब्द द्वितीया विभक्ति में रहा हो तो वह "द्वितीया तत्पुरुष" होगा। इसी प्रकार जिस विभक्ति में प्रथम शब्द रहेगा उसी के नाम पर इस समास का नाम होगा।

सात विभक्तियों में केवल प्रथमा विभक्ति शेष रही, यदि प्रथम शब्द प्रथमा विभक्ति में रहे तो व्यधिकरण तत्पुरुष हो ही नहीं सकता, समानाधिकरण होजायगा। इस कारण ये छ ही भेद व्यधिकरण के होते हैं।

(क) द्वितीया तत्पुरुष—यह समास थोड़े में ही शब्दों म होता है। मुख्य ये हैं।

द्वितीया[1] जब श्रित अतीत, पतित, गत, अत्यस्त, प्राप्त, आपन्न इन शब्दों के सयोग में आती है तब द्वितीया तत्पुरुष समास होता है, यथा—

कृष्णं श्रित =कृष्णश्रित
दुःखमतीत =दुःखातीत
अग्निं पतित =अग्निपतित
प्रलयं गत =प्रलयगत
मेघम् अत्यस्त =मेघात्यस्त
जीवन प्राप्त =जीवनप्राप्तः

1 द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ।२।१।२४

कष्टम् आपन्न = कष्टापन्न', इत्यादि

आपन्न और प्राप्त शब्द के साथ दोनों शब्दों का इच्छानुसार क्रम भी बदल सकते हैं, जैसे—प्राप्तजीवन और आपन्नकष्ट'।

(ग) तृतीया तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द तृतीया विभक्ति में हो तब उसे तृतीया तत्पुरुष कहते हैं। यह समास अधिकतर इन दशाओं में होता है —

(१) जब तृतीयान्त कर्ता या करण कारक हो और साथ वाला शब्द कृदन्त प्रत्यय वाला हो, यथा —[1]

हरिणा त्रात = हरित्रात (इस उदाहरण में "हरिणा" तृतीयान्त है और कर्ता है, और "त्रात" में "क्त" प्रत्यय है जो कृदन्त है)।

नखैर्भिन्न = नखभिन्न (यहाँ "नखै" तृतीयान्त और करण है और "भिन्न" में क्त प्रत्यय है जो कृदन्त है)।

(२) जब तृतीयान्त शब्द के साथ 'पूर्व, सदृश, सम, ऊन' शब्दों में से कोई आवे अथवा ऊन (कम), कलह (लड़ाई), निपुण (चतुर), मिश्र (मिला हुआ), श्लक्ष्ण (चिकना) शब्दों में से अथवा इनके समान अर्थ रखने वालों में से कोई शब्द आवे, यथा—[2]

---

१ कर्तृकरणे कृता बहुलम्

२ पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः ।२।१।३१

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यामबहुव्रीहिः ॥

यह किसी याचक की किसी दाता से प्रार्थना है— 'मैं द्वन्द्व हूँ, अर्थात् मैं दो हूँ (मैं और मेरी स्त्री), मैं द्विगु भी हूँ, अर्थात् मेरे दो गाय भी हैं, मेरे घर में नित्य अव्ययीभाव रहता है, अर्थात् मेरे घर कभी कुछ ख़र्च नहीं होता (क्यों कि ख़र्च करने को द्रव्य ही नहीं) । इस लिये हे पुरुष, वह काम करो जिससे मैं बहुव्रीहि हो जाऊं अर्थात् मेरे घर में बहुत सा धान्य हो जाय ।

(ख) समास के चार भेद समास में आए हुए दोनों शब्दों की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किए गए हैं । अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्राय प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्राय दूसरा, द्वन्द्व में प्राय दोनों प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनों में से एक भी प्रधान नहीं रहता दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं ।

११५—अव्ययीभाव समास—

(क) 'अव्ययीभाव' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना । यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुंजी है । अव्ययीभाव समास में प्राय दो पद रहते हैं—इनमें से प्रथम प्राय अव्यय रहता है और दूसरा संज्ञा शब्द । दोनों मिलकर अव्यय हो जाते हैं । किसी अव्ययीभाव शब्द के रूप नहीं चलते । अन्तिम शब्द का नपुंसक लिङ्ग के एक

मासेन पूर्व =मासपूर्व, मात्रा सदृश =मातृसदृश, पित्रा समः =पितृसम, धान्येन ऊन=धान्योनम्, धान्येन विकलम्=धान्यविकलम्, वाचा कलह =वाक्कलह, वाचा युद्ध=वाग्युद्ध, आचारेण निपुण =आचारनिपुण, आचारेण कुशल =आचारकुशल, गुडेन मिश्र=गुडमिश्रम्, गुडेन युक्त=गुडयुक्तम्, घर्षणेन श्लक्ष्ण=घर्षणश्लक्ष्णम्, कुट्टनेन श्लक्ष्ण=कुट्टनश्लक्ष्णम्।

(घ) चतुर्थी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द चतुर्थी विभक्ति मे रहे तब उसे चतुर्थी तत्पुरुष कहते हैं। मुख्य तया यह तब होता है जब कोई वस्तु (जो किसी से बनी हो या बनती हो) चतुर्थी में आवे और जिससे वह बनी हो वह उसके अनन्तर आवे, जैसे —

यूपाय दारु=यूपदारु, कुम्भाय मृत्तिका=कुम्भमृत्तिका।

(च) पञ्चमी तत्पुरुष—जब तत्पुरुष समास का प्रथम शब्द पञ्चमी विभक्ति मे आवे तब उस तत्पुरुष समास को पञ्चमी तत्पुरुष कहते है। मुख्यरूप से यह समास तब होता है जब पञ्चम्यन्त शब्द 'भय, भीत, भीति और भी' के साथ आवे, जैसे —

चोराद् भय = चोरभय, स्तेनाद् भीत = स्तेनभीत, वृकाद् भीति = वृकभीति, अयशोभी, इत्यादि।

(छ) षष्ठी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं जिसमे प्रथम शब्द

१ पञ्चमी भयेन ।२।१।३७। भयभीतभीतिभीभिरिति वाच्यम्।

सकता है, इस लिए यह विग्रह है। उदाहरणार्थ 'धनवार्ता' का विग्रह 'धनस्य वार्ता' हुआ।

किन शब्दों को कैसे और किन के साथ जोड़ सकते हैं इसके सूक्ष्म से भी सूक्ष्म नियम संस्कृत—व्याकरणकारों ने नियत कर रक्खे हैं। ऐसा नहीं है कि जिस शब्द को जब चाहा तब दूसरे के साथ जोड़ दिया। उदाहरणार्थ —

'रघुवंश का लेखक कालिदास प्रसिद्ध कवि था'—इस वाक्य का अनुवाद हुआ 'रघुवंशस्य लेखकः कालिदासः प्रसिद्धः कविः आसीत्'। इस संस्कृत वाक्य में यदि समास करें तो इस प्रकार होगा 'रघुवंशलेखककालिदासः प्रसिद्धकविः आसीत्'। "कविः" और "आसीत्" में समास नहीं हुआ, "कालिदासः" और "प्रसिद्धः" में नहीं हुआ।

कब किन दशाओं में समास हो सकता है, इसके मुख्य मुख्य नियम इस सोपान में दिए जाएँगे।

११४—(क) समास के मुख्य चार भेद हैं—

(१) अव्ययीभाव

(२) तत्पुरुष

(३) द्वन्द्व—और

(४) बहुव्रीहि।

तत्पुरुष के अन्तर्गत दो प्रसिद्ध समास हैं—(१) कर्मधारय और (२) द्विगु, इस लिए कभी कभी समास के छः भेद बनाए हैं। इन छः भेदों के नाम इस श्लोक में आते हैं —

षष्ठी विभक्ति में हो। यह[1] समास प्राय सभी षष्ठ्यन्त शब्दों के सा होता है।

इसके कुछ अपवाद हैं उनमें से मुख्य २ यहाँ दिये जाते हैं —

(१) जब[2] षष्ठी तृच् प्रत्यय में अन्त होने वाले (कर्ता, धर्ता, स्रष्टा आदि) शब्दों के साथ अथवा अक प्रत्यय में अन्त होने वाले (पाचक, याचक, सेवक आदि) शब्दों के साथ आवे, जैसे—

घटस्य कर्ता, जगत सृष्टा, धनस्य हर्ता, अन्नस्य पाचक।

(२) निर्धारण[3] (किसी वस्तु की दूसरों से विशिष्टता दिखाने) अर्थ में प्रयोग में आई हुई षष्ठी का समास नहीं होता, जैसे—

नृणां द्विज श्रेष्ठ, गवां कृष्णा बहुक्षीरा—इत्यादि में समास न होगा।

किन्तु[4] यदि तरप् प्रत्यय में अन्त होने वाले गुणवाची शब्द के सा षष्ठी आवे तो वहाँ समास हो जायगा और साथ ही साथ तरप् प्रत्यय का लोप भी हो जायगा, जैसे—

सर्वेषां श्वेततर =सर्वश्वेत। सर्वेषां महत्तर =सर्वमहान्।

---

१ षष्ठी ।२।२।८।

२ तृजकाभ्यां कर्तरि ।२।२।१५।

३ न निर्धारणे ।२।२।१०।

४ गुणात्तरेण तरलोपश्चेति वक्तव्यम्।

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः ॥

यह किसी याचक की किसी दाता से प्रार्थना है— ' मैं द्वन्द्व हूँ, अर्थात् मैं दो हूँ (मैं और मेरी स्त्री), मैं द्विगु भी हूँ, अर्थात् मेरे दो गाय भी हैं, मेरे घर में नित्य अव्ययीभाव रहता है, अर्थात् मेरे घर कभी कुछ खर्च नहीं होता (क्यों कि खर्च करने को द्रव्य ही नहीं) । इस लिये हे पुरुष, वह काम करो जिससे मैं बहुव्रीहि हो जाऊँ अर्थात् मेरे घर में बहुत सा धान्य हो जाय ।

(ख) समास के चार भेद समास में आए हुए दोनों शब्दों की प्रधानता अथवा अप्रधानता पर किए गए हैं । अव्ययीभाव समास में समास का प्रथम शब्द प्रायः प्रधान रहता है, तत्पुरुष में प्रायः दूसरा, द्वन्द्व में प्रायः दोनों प्रधान रहते हैं और बहुव्रीहि में दोनों में से एक भी प्रधान नहीं रहता दोनों मिल कर एक तीसरे शब्द के ही विशेषण होते हैं ।

११५—अव्ययीभाव समास—

(क) ' अव्ययीभाव ' शब्द का यौगिक अर्थ है—जो अव्यय नहीं था उसका अव्यय हो जाना । यह अर्थ ही इस समास की एक प्रकार से कुञ्जी है । अव्ययीभाव समास में प्रायः दो पद रहते हैं—इनमें से प्रथम प्रायः अव्यय रहता है और दूसरा संज्ञा शब्द । दोनो मिलकर अव्यय हो जाते हैं । किसी अव्यय शब्द के रूप नहीं चलते । अन्तिम शब्द का नपुंसक लिङ्ग के एक

(ग) सप्तमी तत्पुरुष समास उसे कहते हैं जिसका प्रथम शब्द सप्तमी विभक्ति में रखा हो। यह समास भी विशेष दशाओं में ही होता है। एक आध ये हैं —

(१) जब सप्तम्यन्त शब्द शौण्ड (चतुर), धूर्त, कितव (शठ), प्रवीण, संवीत (भूषित), अन्तर, अधि, पटु, पण्डित, कुशल, चपल, निपुण, सिद्ध, शुष्क, पक्व और बन्ध इन शब्दों में से किसी के साथ आवे, जैसे —

अक्षेषु शौण्ड =अक्षशौण्ड, प्रेम्णि धूर्त =प्रेमधूर्त, द्यूते कितव =द्यूतकितव, सभायां पण्डित =सभापण्डित, आतपे शुष्क =आतपशुष्क, कटाहे पक्व =कटाहपक्व, ईश्वरे अधीन = ईश्वराधीन।

(२) जब ध्वाङ्क्ष (कौआ) शब्द अथवा इसके समान अर्थ रखने वाले शब्दों के साथ, निन्दा करने के लिए सप्तमी आवे, जैसे —

तीर्थे ध्वाङ्क्ष =तीर्थध्वाङ्क्ष, श्राद्धे काक =श्राद्धकाक इत्यादि

---

१ सप्तमी शौण्डैः ।२।१।४०।

२ सिद्धशुष्कपक्वबन्धैश्च ।२।१।४१।

३ ध्वाङ्क्षेण क्षेपे ।२।१।४२।

वचन में जैसा रूप होता है वही रूप अव्ययीभाव समास का हो जाता है और वही नित्य रहता है। उदाहरणार्थ —

यथा काम (काममनतिक्रम्य इति) यथाकामम्—जितनी इच्छा हो उतना।

"यथाकामम्" में दो शब्द आए—(१) यथा और (२) काम, इनमें यथा शब्द प्रधान है, दोनों मिल कर एक अव्यय हुए—(यथाकाम के रूप नहीं चलेंगे) और अन्तिम शब्द 'काम' ने पुलिङ्ग होते हुए भी वह रूप धारण किया जो वह तब धारण करता जब नपुंसकलिङ्ग के एकवचन में होता, इसी प्रकार यथा शक्ति (जितनी सामर्थ्य हो उतना), अन्तर्गिरि (पहाड़ के अन्दर), उपगङ्गम् (गङ्गाया समीपे), प्रत्यहम् (अह अह'), सवाप्पम् (बाप्पैं सह) इत्यादि।

(ख) अव्ययीभाव समास बनाते समय इन नियमों को ध्यान में रखना चाहिए।

(१) दूसरे शब्द का अन्तिम वर्ण यदि दीर्घ रहे तो ह्रस्व कर दिया जाता है। यदि अन्त में "ए" अथवा "ऐ" हो तो उसके स्थान में "इ" और यदि "ओ" अथवा "औ" हो तो उसके स्थान में "उ" हो जाता है, जैसे—

उप+गङ्गा (गङ्गाया समीपे)=उपगङ्ग (और इसको नपुं० एकवचन में नित्य रखते हैं इस लिए)=उपगङ्गम्।

उप+नदी (नद्या समीपे)=उपनदि।

समानाधिकरण तत्पुरुष समास

११८—(क) समानाधिकरण का अर्थ है ऐसी वस्तुएं जिनका अधिकरण समान अर्थात् एक हो, जैसे—यदि गोविन्द और श्याम एक ही आसन पर बैठे हो तो वह आसन उन दोनों का समानाधिकरण हुआ, किन्तु, यदि दोनों अलग २ आसनों पर बैठे हो तो अलग २ अधिकरण हुआ, अर्थात् " व्यधिकरण " हुआ। इसी प्रकार यदि एक ही समय में दो मनुष्य उपस्थित हों तो उनकी उपस्थिति समानाधिकरण हुई और यदि भिन्न २ समय में तो उपस्थिति व्यधिकरण हुई। इसी प्रकार शब्दोंके विषय में जैसे—

राज्ञ + पुरुष—इसमें यह आवश्यक नहीं कि राजा उसका पुरुष दोनो एक स्थान और एक समय में हों, इसलिए समानाधिकरण नहीं है, किन्तु कृष्ण + सर्प—यहाँ काल के साथ २ है, जहाँ जहाँ वह साँप जिस २ समय में रहेगा भी उसके साथ २ रहेगा, नहीं तो उसको कृष्ण सर्प सकेंगे, इसलिए इस उदाहरण में समानाधिकरण हैं।

(ख) तत्पुरुष समास का लक्षण ऊपर दिया ऐसा समास जिसका प्रथम शब्द दूसरे का विशेषण ऐसा तत्पुरुष समास जिस में (समास में आए हुए

---

१ तत्पुरुष समानाधिकरण कर्मधारय ।१।२।४२॥

का समानाधिकरण हो, समानाधिकरण तत्पुरुष अथवा कर्मधारय तत्पुरुष कहलाता है। कर्मधारय समास की क्रिया समास के दोनों शब्दों को धारण करती है, इसलिए यह नाम पड़ा है जैसे— 'कृष्णसर्प अपसर्पति' इस वाक्य में सर्प जब क्रिया करता है तो कृष्णत्व उसके साथ साथ रहता है। "राज पुरुष अपसर्पति" में राजा पुरुष के साथ नहीं है।

(ग) व्यधिकरण तत्पुरुष और समानाधिकरण तत्पुरुष में मोटे तौर से यह भेद है कि पहले में समास का प्रथम शब्द प्रथमा को छोड़ कर और किसी विभक्ति में होता है, दूसरे में प्रथमा में होता है।

(घ) कर्मधारय समास में प्रथम शब्द या तो द्वितीय का विशेषण होना चाहिए और द्वितीय शब्द संज्ञा होना चाहिए, अथवा दोनों संज्ञा हों किन्तु प्रथम विशेषण स्थानीय हो, अथवा दोनों विशेषण हों जिसमें समय पड़ने पर किसी तीसरे शब्द का द्योतक विशेषण रहे। नीचे कई प्रकार के कर्मधारय समास दिए जाते हैं।

११९–(क) जब[1] प्रथम शब्द विशेषण हो और दूसरा विशेष्य तो उस कर्मधारय समास को 'विशेषणपूर्वपद कर्मधारय' कहते हैं, जैसे—

१ विशेषणं विशेष्येण बहुलम् ।२।१।५७॥

रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ।

यदि दोनों मिलकर दो हों तो द्विवचन में समास रक्खा जाता है और यदि दो से अधिक हों तो बहुवचन में।

इस समास का जो अन्तिम शब्द होता है, उसी के अनुसार पूरे समास का लिङ्ग होता है, जैसे —

रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ।

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च = रामलक्ष्मणभरता,

रामश्च लक्ष्मणश्च भरतश्च शत्रुघ्नश्च = रामलक्ष्मणभरत-शत्रुघ्ना।

मयूरी च कुक्कुटश्च = मयूरीकुक्कुटौ।

कुक्कुटश्च मयूरी च = कुक्कुटमयूर्यौ।

(ख) समाहार द्वन्द्व

जब समास में ऐसी संज्ञाएँ आवें जो 'च' से जुड़ी हुई होने पर अपना अर्थ बतलाती हैं और साथ ही साथ एक समाहार (समूह) का भी बोध कराती हैं तब वह समाहार द्वन्द्व कहलाता है। इस समास को सदा नपुंसकलिङ्ग एक वचन में ही रखते हैं। उदाहरणार्थ।

आहारश्च निद्रा च भयञ्च = आहारनिद्राभयम्।

इस समाहार में आहार, निद्रा और भय का अर्थ है और साथ ही साथ जीवों के लक्षण का भी बोध होता है जीवों में

१ परवल्लिङ्गं द्वन्द्वतत्पुरुषयोः। २।४।२६॥

(१) 'कु' शब्द का अर्थ जब 'खराब, बुरा' होता है तब इस शब्द का समास किसी संज्ञा से होकर पूरा कर्मधारय समास हो जाता है, जैसे—

कुत्सित पुरुष=कुपुरुष, कुत्सित देश=कुदेश, कुत्सित पुत्र=कुपुत्र, कुगेहिनी, कुशिष्य। कहीं २ 'कु' का रूपान्तर 'कत्' हो जाता है, जैसे—

कुत्सित अन्न=कदन्न। और कहीं का हो जाता है, जैसे— कुत्सित पुरुष=कापुरुष। कृष्ण सर्प=कृष्णसर्प। नीलमुत्पल= नीलोत्पलम्। रक्त कमल=रक्तकमल। दीर्घ नयन=दीर्घनयनम्।

(ख) जब किसी वस्तु से उपमा दी जाए तो वह वस्तु जिससे उपमा दी जाए और वह गुण जिसकी उपमा हो, मिल कर कर्मधारय समास होंगे और इस समास का नाम 'उपमानपूर्व पद कर्मधारय' होगा। जैसे—

घन इव श्याम=घनश्याम।

चन्द्र इव आह्लादक=चन्द्राह्लादक।

प्रथम उदाहरण में किसी वस्तु की बादल से उपमा दी गई और यह बतलाया गया है कि वह वस्तु ऐसी श्याम है जैसे बादल। यहाँ 'बादल' उपमान और 'श्याम' सामान्य गुण है इसी प्रकार दूसरे उदाहरण में चन्द्र उपमान और आह्लादक

---

१ उपमानानि सामान्यवचनैः ।२।१।५५॥

खाना, पीना, सोना और डर येही मुख्य बातें होती हैं। इसी प्रकार —

पाणी च पादौ च = पाणिपादम् (हाथ और पैर के साथ २ अङ्ग मात्र का भी बोध होता है)।

अहिनकुलम् (साँप और नेवले के साथ साथ, ये दोनो जन्म वैरी हैं यह भी बोध होता है)।

[1]समाहार द्वन्द्व बहुधा उन दशाओं में होता है जब उस में आए हुए शब्द मनुष्य अथवा पशु के—

(१) शरीर के अङ्ग हों—जैसे पाणिपादम्।

(२) सेना के अङ्ग हों—अश्वारोहाश्च पदातयश्च = अश्वारोह पदाति (घुड़सवार और पैदल)।

(३) गाने बजाने वाले हों—मार्दङ्गिकाश्च पाणविकाश्च = मार्दङ्गिक पाणविक (मृदङ्ग और पणव बजाने वाले)।

(४) अचेतन पदार्थ हों (द्रव्य हों गुण नहीं)—गोधूमाश्च चणकाश्च = गोधूमचणक।

(५) नदियों के भिन्न लिङ्ग के नाम हों—गङ्गा च शोणश्च = गङ्गा – शोण, (किन्तु गङ्गा च यमुना च = गङ्गायमुने होगा, क्योंकि ये एक ही लिङ्ग के हैं)।

---

१ द्वन्द्वश्च प्राणितूर्यसेनाङ्गानाम् ।२।४ २। जातिरप्राणिनाम् ।२।४।६। विशिष्टलिङ्गो नदीदेशोऽग्रामाः ।२।४।७ येषां च विरोधः शाश्वतिकः ।२।४।९।

ामान्य गुण है । इस समास में उपमान प्रथम आता है, इसी लिए सको 'उपमानपूर्वपद' कहते हैं ।

(ग) जब जिस वस्तु की उपमा दी जाए और वह वस्तु जससे उपमा दी जाए दोनों साथ २ आवें तब उस कर्मधारय मास को 'उपमानोत्तरपद कर्मधारय' कहते हैं, क्योंकि यहाँ पमान प्रथम शब्द न होकर द्वितीय होता है, जैसे—

मुखं कमलमिव = मुखकमलम् ।

पुरुषः व्याघ्र इव = पुरुषव्याघ्र ।

नोट—(ख) के अन्तर्गत समासों में वह गुण प्रकट कर दिया गया जिसके कारण उपमा होती है, यहाँ (ग) के अन्तर्गत समासों में वह ग प्रकट नहीं किया जाता ; केवल यह बता दिया जाता है कि उपमेय और मान समान हैं ।

मुखकमलम्, पुरुषव्याघ्र आदि इस श्रेणी के समासों का दो कार से विग्रह कर सकते हैं ।

(१) मुखमेव कमलम् और पुरुष एव व्याघ्र, और—

(२) मुखं कमलमिव और पुरुष व्याघ्र इव ।

पहले को उपमितसमास कहेंगे, क्योंकि इस में उपमा है और दूसरे को रूपकसमास, क्योंकि दोनों को, एक के ऊपर दूसरे को आरोप कर दिया है ।

१ उपमितं व्याघ्रादिभिः सामान्याप्रयोगे ।२।१।५६।

(६) देशों के नाम भिन्न लिङ्गों में हों तो इनके साथ नगर के नामों का भी समास हो सकता है, किन्तु ग्रामों का नहीं।

कुरवश्च कुरुक्षेत्रञ्च = कुरुकुरुक्षेत्रम्।

मथुरा च पाटलिपुत्रञ्च = मथुरापाटलिपुत्रम् आदि।

(७) क्षुद्र जीव हों तो—यूका च लिक्षा च = यूकालिक्षम् (जुएँ और लीखें)।

(८) जन्मवैरी जीव हों तो—सर्पश्च नकुलश्च = सर्पनकुलम्, मूषकश्च मार्जारश्च = मूषकमार्जारम्।

(ग) एकशेष द्वन्द्व

जब दो या अधिक शब्दों में से द्वन्द्व समास में केवल एक ही शेष रह जाए, तब उसको एकशेष द्वन्द्व कहते हैं, जैसे —

माता च पिता च = पितरौ।

श्वश्रूश्च श्वशुरश्च = श्वशुरौ।

एकशेष द्वन्द्व में केवल समान रूप वाले शब्द (जैसे चटक, चटका; मयूर, मयूरी, माता, पिता, भ्राता, स्वसा आदि) अथवा समान अर्थ रखने वाले विरूप शब्द ही आ सकते हैं।[1] समास का वचन समास के अङ्गभूत शब्दों की संख्या के अनुसार होगा। यदि समास में पुलिङ्ग शब्द तथा स्त्रीलिङ्ग शब्द दोनों मिले हों तो समास पुलिङ्ग में रहेगा। उदाहरणार्थ —

---

१ सरूपाणाम्। विरूपाणामपि समर्थानाम्।

(घ) दो समानाधिकरण विशेषणों के समास को 'विशेषण भयपद कर्मधारय ' कहते हैं; जैसे—

कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेत (अश्व)।

इसी प्रकार दो क्त प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द जो वस्तुत विशेषण ही होते हैं इसी श्रेणी के अन्तर्गत हैं, जैसे—

स्नातश्च अनुलिप्तश्च = स्नातानुलिप्त ।

दो विशेषणो मे से एक दूसरे का प्रतिवादी भी हो सकत है, जैसे—

चरञ्च अचरञ्च = चराचर (जगत्)। कृतञ्च अकृतञ्च कृताकृत (कर्म)।

१२०—जब कर्मधारय[1] समास मे प्रथम शब्द सख्यावाची और दूसरा कोई सज्ञा, तो उस समास को ' द्विगु समास कहते हैं।

'द्विगु' शब्द में स्वय प्रथम—द्वि—सख्यावाची है और दूसरा गु (गो)—सज्ञा है। द्विगु समास तभी होता है जब या उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो , जैसे—

षष्+मातृ = षण्मातृ+अ (तद्धित प्रत्यय) = षाण्मातु (षण्णा मातृणामपत्य),

१ सख्यापूर्वो द्विगु ।२।१।५२॥

सरूप—ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च=ब्राह्मणौ।

शूद्री च शूद्रश्च=शूद्रौ। अजश्च अजा च=अजौ। चटकश्च चटका च=चटकौ। गार्गी च गार्ग्यायणी च=गार्ग्यो गार्गी।

विरूप—भ्राता च स्वसा च=भ्रातरौ। पुत्रश्च दुहिता च=पु॰ श्वश्रूश्च श्वशुरश्च=श्वशुरौ।

१२३—द्वन्द्व समास करते समय नीचे लिखे नियमों का ध्या॰ रखना चाहिए—

(१) इकारान्त अथवा उकारान्त शब्द प्रथम रखना चाहि॰ जैसे—

हरश्च हरिश्च=हरिहरौ।

यदि कई इकारान्त व उकारान्त हों तो एक को प्रथम रखन॰ चाहिए, बाकी बचे हुओं को चाहे जहाँ रख सकते हैं, जैसे—

हरिश्च हरश्च गुरुश्च=हरिहरगुरव।

(२) स्वर से आरम्भ होने वाले और 'अ' में अन्त होने वा॰ शब्द प्रथम आने चाहिएं, जैसे—

इन्द्रश्च अग्निश्च=इन्द्राग्नी।

ईश्वरश्च प्रकृतिश्च=ईश्वरप्रकृती।

---

१ द्वन्द्वे घि।२।२।३२।

२ अजाद्यदन्तम्।२।२।३

र या उसको किसी और शब्द के साथ समास में आना हो, जैसे—

पञ्चगाव धन यस्य स = पञ्चगवधन।

यहाँ 'पञ्चगव' यह द्विगु समास न बनता यदि उसको 'धन' के साथ फिर समास मे न आना होता।

या द्विगु समास किसी समूह (समाहार) का द्योतक हो। इस दशा मे वह नपुसकलिङ्ग एकवचन मे सदा रहेगा, जैसे—

पञ्चाना गवा समाहार = पञ्चगवम्।

पञ्चाना ग्रामाणा समाहार = पञ्चग्रामम्।

पञ्चाना पात्राणाम् समाहार = पञ्चपात्रम्।

त्रयाणा भुवनानां समाहार = त्रिभुवनम्, इत्यादि।

१२१—अन्यतत्पुरुष समास

ऊपर तत्पुरुष समास के जो मुख्य दो भेद व्यधिकरण और समानाधिकरण हैं उनका विचार किया गया है। यहाँ कुछ ऐसे तत्पुरुष समासो का विचार किया जाएगा जिनमें वस्तुत तत्पुरुष होते हुए भी कुछ हेर फेर रहता है।

---

१ द्विगुरेकवचनम् ।२।४।१॥

(३) वर्णों के तथा भाइयों के नाम ज्येष्ठ के क्रम से आने चाहिएँ, जैसे —

ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च = ब्राह्मणक्षत्रियौ (क्षत्रियब्राह्मणौ नहीं)
रामश्च लक्ष्मणश्च = रामलक्ष्मणौ (लक्ष्मणरामौ नहीं)।

(४) जिस शब्द में कम अक्षर हों वह पहिले आना चाहिए जैसे =

शिवश्च केशवश्च = शिवकेशवौ (केशवशिवौ नहीं, क्योंकि शिव में दो अक्षर हैं केशव में तीन)।

बहुव्रीहि समास

१२४-(क) जब समास में आये हुए दोनों (या अधिक हों तो सब) शब्द किसी अन्य शब्द के विशेषण स्वरूप रहते हैं तो उसे बहुव्रीहि समास कहते हैं। बहुव्रीहि शब्द का यौगिक अर्थ है—बहु व्रीहि (धान्य) यस्य अस्ति स बहुव्रीहि (जिसके पास बहुत चावल हों)। इसमें दो शब्द हैं—"बहु" और "व्रीहि"। प्रथम शब्द दूसरे शब्द का विशेषण है और दोनों मिल कर किसी

---

१ वर्णानामानुपूर्व्येण। भ्रातुर्ज्यायस (वार्तिक)।

२ अनेकमन्यपदार्थे।२।२।२४। अनेक प्रथमान्तमन्यस्य पदस्यार्थे वर्तमान वा समस्यते स बहुव्रीहि।

(क) नञ् तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द ' न ' रहे और दूसरा कोई संज्ञा या विशेषण रहे तो उसे यह नाम दिया जाता है। यह ' न ' व्यञ्जन के पूर्व ' अ ' में और स्वर के पूर्व 'अन्' में बदल जाता है, यथा—

न ब्राह्मण =अब्राह्मण' (ऐसा मनुष्य जो ब्राह्मण न हो), न गर्दभ =अगर्दभ (ऐसा जानवर जो गदहा न हो), न अब्ज= अनब्ज (जो कमल न हो), न सत्य=असत्य, न चर = अचर, न कृत=अकृत, न आगत=अनागत।

ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है कि ' न ' शब्द भी एक प्रकार से विशेषण का कार्य करता है, इसलिए तत्पुरुष का मुख्य भाव कि समास का प्रथम शब्द विशेषण अथवा विशेषणस्थानीय होना चाहिए विद्यमान है।

(ख) प्रादि तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष में प्रथम शब्द प्र ' आदि उपसर्गों (इनका व्याख्यान ' अव्यय विचार ' में आगे देखिए) में से कोई हो तब उसे प्रादि तत्पुरुष कहते हैं। इन प्र आदि उपसर्गों से विशेष विशेषणों का अर्थ निकलता है इसीलिए यह एक प्रकार से कर्मधारय समास है।

उदाहरणार्थ—

प्रगत (बहुत विद्वान्) आचार्य =प्राचार्य,
प्रगत (बड़े) पितामह =प्रपितामह ;

तीसरे के विशेषण हैं, इसी लिए इस प्रकार के समासों का नाम बहुव्रीहि पड़ा।

(ख) बहुव्रीहि और तत्पुरुष में यह भेद है कि तत्पुरुष में प्रथम शब्द द्वितीय शब्द का विशेषण होता है, जैसे—

पीतम् अम्बर = पीताम्बरम् (पीला कपड़ा)—कर्मधारय तत्पुरुष।

बहुव्रीहि में इसके अतिरिक्त यह होता है कि दोनों मिलकर किसी तीसरे शब्द के विशेषण होते हैं, जैसे—

पीताम्बर—पीतम् अम्बर यस्य स (जिसका कपड़ा पीला हो = श्रीकृष्ण)।

इस प्रकार एक ही समास प्रकरण की आवश्यकतानुसार तत्पुरुष या बहुव्रीहि हो सकता है। इसके उदाहरण के लिए एक मनोरञ्जक आख्यायिका है।

एक बार एक याचक फटे फटाए कपड़े पहने किसी राजा के निकट जाकर बोला—

'अहञ्च त्वञ्च राजेन्द्र, लोकनाथावुभावपि'। (हे राजश्रेष्ठ! मैं भी लोकनाथ हूँ और आप भी, अर्थात् हम दोनों लोकनाथ हैं)।

याचक की यह उक्ति सुनकर सभा में राजकर्मचारी उसकी धृष्टता पर बिगड़ कर कहने लगे—देखो, इस पागल को क्या सूझा कि हमारे महाराज की बराबरी करने चला है, निकालो इसको। तब तक याचक श्लोक का दूसरा अंश भी बोल उठा—

प्रतिगत (सामने आया हुआ) अक्ष (इन्द्रिय) = प्रत्यक्ष,
उद्गत (ऊपर पहुँचा हुआ) वेला (किनारा) = उद्वेल,
अतिक्रान्त मर्यादां = अतिक्रान्तमर्याद (जिसने हद पार कर दी हो),
अतिक्रान्त रथ = अतिरथ (ऐसा योद्धा जो बहुत बलवान् हो),
अवक्रुष्ट कोकिलया = अवकोकिल (कोकिला से खींचा हुआ मुख),
परिग्लानोऽध्ययनाय = पर्यध्ययन (पढ़ने से थका हुआ),
निर्गतः गृहात् = निर्गृह (घर से निकला हुआ) इत्यादि।

(ग) गति तत्पुरुष समास—

कुछ कृत् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के साथ कुछ विशेष शब्दों (ऊरी आदि) का समास होता है, तब उस समास को गति तत्पुरुष कहते हैं। ऊरी आदि शब्दों को पाणिनि ने 'गति' नाम दिया है, इसी से यह समास गति समास कहलाता है। दो एक उदाहरण ये हैं—

अलं (भूषित) कृत्वा = अलंकृत्य (भूषित करके)।
सत्कृत्य (आदर करके)। शुक्लीभूय (सफेद होकर)।
नीलीकृत्य (नीला करके)। पुरस्कृत्य (आगे करके)।

(घ) उपपद तत्पुरुष समास—

जब तत्पुरुष का प्रथम शब्द कोई ऐसी संज्ञा या कोई ऐसा अव्यय हो जिसके न रहने से उस समास के द्वितीय शब्द का वह रूप नहीं रह सकता जो है, तब उसे उपपद तत्पुरुष समास कहते हैं। द्वितीय शब्द का कोई रूप क्रिया का न होना चाहिए वरन् कृदन्त का हो, किन्तु ऐसा हो जो

'बहुव्रीहिरहं राजन् षष्ठीतत्पुरुषो भवान्' ॥ (हे नृप ! मैं बहुव्रीहि (समास) हूँ और आप षष्ठीतत्पुरुष,—अर्थात् मेरी दशा में "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोका प्रजा नाथा पालका यस्य स"—जिसकी सभी रक्षा करें और पालन करें और आपकी दशा में "लोकनाथ" का अर्थ होगा "लोकस्य नाथ"—संसार भर के स्वामी)। यह सुन कर सब लोग हँस पड़े और याचक को उचित पारितोषिक देकर उसका लोकनाथत्व दूर किया गया।

बहुव्रीहि समास में प्रधानत्व समास के दोनों शब्दों में से किसी में नहीं रहता, दोनों मिल कर तीसरे का (जिसके वह विशेषण स्वरूप होते हैं) ही प्राधान्य सूचित करते हैं।

(ग) इस समास के मुख्य दो भेद हैं-

(१) एक समानाधिकरण बहुव्रीहि।

(२) व्यधिकरण बहुव्रीहि।

समानाधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके दोनों या सभी शब्दों का समान अधिकरण हो (समानाधिकरण और व्यधिकरण का भेद—२१८) अर्थात् वे प्रथमान्त हों, जैसे—पीताम्बर।

व्यधिकरण बहुव्रीहि वह है जिसके शब्द दोनों प्रथमान्त न हों, जैसे—

चन्द्रशेखर—चन्द्र शेखरे यस्य स =(शिव)।

चक्र पाणौ यस्य स चक्रपाणि =(विष्णु)।

चन्द्रस्य कान्ति इव कान्ति यस्य स =चन्द्रकान्ति।

प्रथम शब्द के न रहने पर असम्भव हो जाए। प्रथम शब्द को उपप कहते हैं, इसी से इस समास का नाम उपपद समास पड़ा। उदाहरणार्थ-

कुम्भ करोति इति=कुम्भकार ।

यहाँ समास में 'कुम्भ' और 'कार' दो शब्द हैं। 'कुम्भ' का नाम उप-पद है। 'कार' क्रिया का रूप नहीं, कृदन्त का है, किन्तु यदि उपपद न हो तो 'कारः' अपने आप नहीं ठहर सकता। 'कार' उपपद से स्वाधीन को शब्द नहीं है, हम 'कार' का अकेले कहीं प्रयोग नहीं कर सकते, केवल 'कुम्भ' या किसी और उपपद के साथ ही कर सकते हैं, जैसे —

चर्मकार, स्वर्णकार ।

इसी प्रकार—साम गायतीति सामग ।

यहाँ 'साम' उपपद रहने के ही कारण 'ग' शब्द है, 'ग' का अकेले प्रयोग नहीं हो सकता, कोई उपपद अवश्य रहना चाहिए।

इसी प्रकार—धन ददातीति धनद, कम्बल ददातीति कम्बलद, गा ददातीति गोद आदि ।

इसी प्रकार उच्चै कृत्य, एकधाभूय आदि ।

(च) अलुक् तत्पुरुष समास

समास में प्रथम शब्द की विभक्ति के प्रत्यय का लोप हो जात है यह ऊपर बता चुके हैं, जैसे —

कुम्भ+कार =कुम्भकार । चरणयो +सेवक =चरणसेवक

किन्तु कुछ ऐसे समास हैं जिन मे विभक्ति के प्रत्यय का लोप नहीं होता, उनको अलुक् समास कहते हैं। अलुक् समास मे

बहुव्रीहि समास का विग्रह करने के लिए विग्रह में यत् शब्द के किसी रूप का आना आवश्यक है। इस यत् से यह प्रकट किया जाता है कि समास में आए हुए शब्द किसी अन्य शब्द से ही सम्बन्ध रखते हैं।

१७५–(क) समानाधिकरण बहुव्रीहि के छ भेद होते हैं—

द्वितीया समानाधिकरण बहुव्रीहि।

तृतीया समानाधिकरण बहुव्रीहि।

चतुर्थी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

पञ्चमी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

षष्ठी समानाधिकरण बहुव्रीहि—और

सप्तमी समानाधिकरण बहुव्रीहि।

यह भेद विग्रह में आए हुए यत् शब्द की विभक्ति से जाने जाते हैं। यदि यत् द्वितीया विभक्ति में हो तो समास द्वितीया स० ब० होगा, और इसी प्रकार अन्य भेद होंगे, उदाहरणार्थ —

द्वि० स० ब०—प्राप्तमुदकं यं स प्राप्तोदक (ग्राम)—ऐसा गाँव जहाँ पानी पहुँच चुका हो।

आरूढो वानरो यं स आरूढवानर (वृक्ष)।

तृ० स० ब०—जितानि इन्द्रियाणि येन स जितेन्द्रिय (पुरुष)—जिसने इन्द्रियों को वश में कर रक्खा हो,

ऊढ रथ येन स ऊढरथ (अनड्वान्)—ऐसा बैल जिसने रथ खींचा हो

दत्त चित्त येन स दत्तचित्त (पुरुष)—ऐसा पुरुष जो चित्त दिए हो, लगाए हो।

केवल ऐसे उदाहरण हैं जो साहित्य में पूर्व ग्रन्थकारो के ग्रन्थों मे मिलते हैं, उनके अतिरिक्त किसी समास मे विभक्ति (प्रत्यय) का लोप न करने का हम लोगों को अधिकार नहीं है। अलुक् समास के कुछ उदाहरण ये हैं।

मनसागुप्ता = (किसी स्त्री का नाम), जनुपान्ध = (जन्मान्ध), परस्मैपदम्, आत्मनेपदम्, दूरादागत, देवाना प्रिय = (मूर्ख), देवप्रिय = देवताओं को प्रिय।

पश्यतोहर = (देखते २ चुराने वाला, अथात् सुनार या डाकू),

युधिष्ठिर = (युद्ध मे डटा रहने वाला),

अन्तेवासी = (शिष्य), सरसिजम् = (कमल),

खेचर = (देव, सिद्ध आदि आकाश में चलने वाले) इत्यादि।

(छ) मध्यमपदलोपी तत्पुरुष समास

ऐसे तत्पुरुष समास जिनमें से कोई ऐसा शब्द गायब हो गया हो जिसे साधारण दशा में रहना चाहिए था, "मध्यमपदलोपी समास" के नाम से बोले जाते हैं। ऐसे 'शाकपार्थिव' आदि कुछ ही शब्द हैं। इन से अतिरिक्त शब्दों में यह समास नहीं लग सकता। उदाहरणार्थ

शाकप्रिय पार्थिव = शाकपार्थिव। देवपूजक ब्राह्मण = देवब्राह्मण।

इन उदाहरणों में 'प्रिय' और 'पूजक' शब्द जो मध्य में आते हैं रहने चाहिए थे, किन्तु नहीं रहे।

[त]ा० स० ब०—उपहृत पशु यस्मै स उपहृतपशु (रुद्र)—जिसके लिए पशु (बलयथ) लाया गया हो। दत्तधन (पुरुष)।

[प]ं० स० ब०—उद्धृतम् ओदन यस्या सा उद्धृतौदना (स्थाली)—ऐसी थाली जिसमें से भात निकाल लिया गया हो।

निर्गत धन यस्मात् स निर्धन (पुरुष)

निर्गत बल यस्मात् स निर्बल (पुरुष)।

[ष]० स० ब०—पीताम्बर (हरि), महाबाहु, लम्बकर्ण, चित्रगु।

[स]० स० ब०—वीरा पुरुषा यस्मिन् स वीरपुरुष (ग्राम)—ऐसा गाँव जिसमें वीर पुरुष हो।

(ख) व्यधिकरण बहुव्रीहि के दोनों शब्द प्रथमा विभक्ति में नहीं रहते, केवल एक रहता है, दूसरा षष्ठी या सप्तमी में रहता है, जैसे —

चक्र पाणौ यस्य स चक्रपाणि। चन्द्रशेखर, चन्द्रकान्ति इत्यादि।

(ग) नीचे लिखे बहुव्रीहि भी कभी २ पाये जाते है —

(१) नञ् अथवा कोइ उपसर्ग किसी सज्ञा के साथ हो तो ऐसा रूप होता है, उदाहरणार्थ—अविद्यमान पुत्र यस्य स अपुत्र (अथवा अविद्यमानपुत्र), निर्घृण, उत्कन्धर (अथवा उद्गतकन्धर) विजीवित (अथवा विगतजीवित)

(२) सह और तृतीयान्त सज्ञा—सह सीता यस्य स, ससीत (राम)।

१२६—बहुव्रीहि बनाते समय नीचे लिखे नियमो का ध्यान रखना चाहिए।

(ज) मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष समास

कुछ ऐसे तत्पुरुष समास हैं जिनमें नियमों का प्रत्यक्ष उल्लङ्घन है उनको पाणिनि ने मयूरव्यंसकादि नाम दे कर अलग कर दिया है। जैसे—

व्यंसक मयूर = मयूरव्यंसक । (चालाक मोर)

यहाँ व्यंसक शब्द प्रथम होना चाहिए था और मयूर दूसरा।

अन्यो राजा = राजान्तरम् । अन्यो ग्राम = ग्रामान्तरम् ।

इसी प्रकार अन्य अन्तर शब्द वाले उदाहरण होते हैं।

द्वन्द्व समास

१२२—जब ऐसी दो या अधिक संज्ञाएँ साथ रक्खी जाती जो 'च' शब्द से जोड़ी हुई थीं, तब उस समास को द्वन्द्व सम[ास] कहते हैं। इस समास में यदि दोनों संज्ञा रहें तो दोनों प्रध[ान] रहती हैं, अथवा उनके समूह का प्रधानत्व रहता है। द्वन्द्व सम[ास] तीन प्रकार का होता है—

(१) इतरेतर द्वन्द्व ।

(२) समाहार द्वन्द्व ।

(३) एकशेष द्वन्द्व ।

(क) इतरेतर द्वन्द्व

जब समास में आई हुई दोनों संज्ञाएँ अपना प्रधानत्व अ[ौर] व्यक्तित्व रखती हैं तब उसे इतरेतर द्वन्द्व कहते हैं, जैसे —

---

१ चार्थे द्वन्द्व ।२।२।२२

(१) समानाधिकरण बहुव्रीहि में यदि प्रथम शब्द पुलिङ्ग शब्द से बना हुआ स्त्रीलिङ्ग शब्द (रूपवान्—रूपवती, सुन्दर-सुन्दरी आदि) हो और ऊकारान्त न हो और दूसरा शब्द स्त्रीलिङ्ग का हो तो प्रथम शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप हटा कर आदि रूप (पुलिङ्ग) रक्खा जाता है, जैसे —

रूपवती भार्या यस्य स रूपवद्भार्य (रूपवतीभार्य नहीं)।

इस उदाहरण मे समास का प्रथम शब्द "रूपवती" था और द्वितीय "भार्या"। प्रथम शब्द "रूपवद्" (पु०) से बना था और ऊकारान्त न था ईकारान्त था, तथा द्वितीय शब्द 'भार्या' स्त्रीलिङ्ग में था, इस लिए प्रथम शब्द का पुलिङ्ग रूप आ गया। इसी प्रकार—

चित्रा गाव यस्य स चित्रगु (चित्रागु नहीं), जरद्भार्य।

परन्तु गङ्गा भार्या यस्य स गङ्गाभार्य (गङ्गभार्य नहीं); क्योंकि गङ्गा शब्द किसी पुलिङ्ग शब्द का स्त्रीलिङ्ग रूप नहीं है।

वामोरूभार्य —वामोरू भार्या यस्य स (क्योंकि यहाँ प्रथम शब्द ऊकारान्त है, आकारान्त या ईकारान्त नहीं) ।

कुछ विशेष स्थलों में (जैसे यदि प्रथम शब्द किसी का नाम हो, पूरणी सख्या हो, उसमें अङ्ग का नाम आता हो और वह ईकारान्त हो, जाति का नाम हो इत्यादि अथवा यदि द्वितीय शब्द प्रिया या प्रियादिगण में पठित कोई शब्द हो) । जैसे क्रमानुसार—

दत्ताभार्य (जिसकी दत्ता नामवाली स्त्री है),

पञ्चमीभार्य (जिसकी पाँचवीं स्त्री है),

सुकेशीभार्य (जिसकी अच्छे केशों वाली स्त्री है),

शूद्राभार्य (जिसकी स्त्री शूद्रा है), कल्याणी प्रिया यस्य स ल्याणी प्रिय ।

(२) यदि समास के अन्त में इन् से अन्त होने वाला शब्द गे, और यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है, जसे—

बहवः दण्डिनः यस्या सा बहुदण्डिका (नगरी)।

किन्तु यदि पुलिङ्ग बनाना हो तो कप् जोड़ना न जोड़ना इच्छा र है, जसे—

बहुदण्डिको ग्राम, बहुदण्डी ग्राम वा।

(३) जब बहुव्रीहि समास के अन्तिम शब्द में अन्य नियमों के नुसार कोई विकार न हुआ हो तो उसमें इच्छानुसार कप् (क) जोड़ कते हैं, जैसे—

उदात्तं मन यस्य स उदात्तमनस्क अथवा उदात्तमना। इसी प्रकार ढ़ोरस्क, महायशस्क आदि विकल्पसिद्ध रूप हैं।

किन्तु व्याघ्रस्य पादौ इव पादौ यस्य स व्याघ्रपात् (यहाँ व्याघ्रपात्क हीं हुआ, क्योंकि समास का अन्तिम शब्द 'पाद' दूसरे नियम से पद् गया और इस प्रकार अन्तिम शब्द में विकार उत्पन्न हो गया)।

(४) यदि बहुव्रीहि समास का अन्तिम शब्द ऋकारान्त पु० अथवा स्त्री० अथवा नपु०) हो अथवा स्त्रीलिङ्ग का कारान्त या ऊकारान्त हो तो कप् (क) प्रत्यय अवश्य लगता है, से —

(ख) अकारान्त[1] शब्दों के अनन्तर इनि (इन्) और ठन्
(इक) लगते हैं, जैसे —

दण्डी (दण्ड+इनि) दण्डिक (दण्ड+ठन्)।

(ग) तारका[2] आदि (तारका, पुष्प मञ्जरी, सूत्र, मूत्र, प्रचार,
चार, कुड्मल, कण्टक मुकुल, कुसुम, किसलय, पल्लव, खण्ड, वेग,
द्रा, मुद्रा, बुभुक्षा, पिपासा, श्रद्धा, अभ्र पुलक, द्रोह, दोह, सुख, दुःख
कण्ठ, भर, व्याधि, वर्मन्, व्रण, गौरव, शास्त्र, तरङ्ग, तिलक, चन्द्रक,
न्धकार, गर्व, मुकुर, हर्ष, उत्कर्ष, रण, कुवलय, क्षुध् सीमन्त, ज्वर, रोग,
ण्डा, कज्जल, तृष्, कोरक, कल्लोल, फल, कन्चुक, शृङ्गार अङ्कुर बकुल,
लङ्क, कर्दम, कन्दल, मूर्च्छा, अङ्गार, प्रतिबिम्ब प्रत्यय, दीक्षा, गर्भ ये इन
ण के मुख्य शब्द हैं) शब्दों के अनन्तर 'यह जिसमें है—' इस अर्थ
बोध कराने के लिए इतच् (इत) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

तारका+इतच्=तारकित (तारे हैं जिसमें)।

पिपासित (प्यास है जिसमें—प्यासा)।

पुष्पित, कुसुमित आदि इसी प्रकार बनते हैं।

---

१ अत इनिठनौ। ५। २। ११५।

२ तदस्य सञ्जातं तारकादिभ्य इतच्। ५। २। ३६।

ईश्वर कर्ता यस्य स ईश्वरकर्तृक (ससार)।

अन्न धातृ यस्य स अन्नधातृक (पुरुष)।

सुशीला माता यस्य स सुशीलमातृक (मनुष्य)।

रूपवती स्त्री यस्य स रूपवत्स्त्रीक (मनुष्य)।

सुन्दरी वधू यस्य स सुन्दरवधूक (पुरुष)।

(५) यदि अन्तिम शब्द आकारान्त हो तो इच्छानुसार आकार को अकार कर सकते हैं, जैसे—

पुष्पमालाक, पुष्पमालक।

१२७–समासो के कुछ साधारण नियम हैं जो सब समास मे लगते हैं। उन में से मुख्य २ यहाँ दिए जाते हैं।

(क) समास के किन्हीं दो शब्दो के बीच मे कहीं भी सन्धि प्राप्त होती हो तो अवश्य करनी चाहिए (५ में उल्लिखित नियम के अनुसार)।

(ख) यदि[1] किसी समास का विग्रह ही न हो सके तो उसे नित्यसमास कहते हैं, जैसे—इव के साथ किसी शब्द का जीमूतस्य इव=जीमूतस्येव, यह नित्य समास है।

(ग) यदि[2] समास के अन्त में राजन्, अहन्, या सखि

[1] अविग्रहो नित्यसमासोऽस्वपदविग्रहो वा।

[2] राजाह सखिभ्यष्टच्।

भावार्थ तथा कर्मार्थ

१३२ किसी[1] शब्द से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिए शब्द में त्व अथवा तल् (ता) जोड़ देते हैं। त्व में अन्त होने शब्द सदा नपुंसकलिङ्ग में होते हैं और तल् में अन्त होने स्त्रीलिङ्ग में, जैसे—

गो + त्व = गोत्वम्, गो + तल् = गोता, शिशु + त्व = शिशुत्वम् शिशु + तल् = शिशुता, इत्यादि।

(क)[2] पृथु आदि (पृथु मृदु, महत्, पटु, तनु, लघु, बहु, साधु, आशु उरु गुरु, बहुल, खण्ड, दण्ड, चण्ड, अकिञ्चन, बाल, होड, पाक, वत्स, मन्द स्वादु, ह्रस्व, दीर्घ प्रिय, वृष, ऋजु, क्षिप्र क्षुद्र, अणु) शब्दों के अनन्तर भाव का अर्थ सूचित करने के लिए इमनिच् (इमन्) प्रत्यय विकल्प से लगाते हैं। जिस शब्द में यह प्रत्यय लगाते हैं वह यदि व्यञ्जन आरम्भ हो और उसके अनन्तर ऋकार (मृदु, पृथु आदि) आवे तो ऋकार के स्थान में र् होजाता है। इमनिच् प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सभी पुंलिङ्ग में होते हैं, जैसे—

पृथु + इमनिच् = प्रथिमन् (महिमन् के अनुसार रूप चलेंगे), पृथुत्व पृथुता, म्रदिमन्, महिमन् पटिमन्, तनिमन्, लघिमन्, बहिमन् आदि।

---

१ तस्य भावस्त्वतलौ। ५। १।११९।

२ पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा। ५। १। १२२। र ऋतो हलादेर्लघोः ६। ४। १६१।

शब्द आवें तो इनका रूप राज, अह और सख हो जाता है, जैसे—

महान् राजा = महाराज, सिन्धुराज,

उत्तमम् अह = उत्तमाह (अच्छा दिन),

कृष्णस्य सखा = कृष्णसखा।

कहीं कहीं अहन् शब्द का अह्न हो जाता है, जैसे—सर्वाह्न = (सारे दिन)। सायाह्न = सायंकाल।

(ग) में उदाहृत नियम नञ् तत्पुरुष में नहीं लगता, जैसे—

न राजा = अराजा, न सखा = असखा।

(घ) महत्[1] शब्द यदि कर्मधारय अथवा बहुव्रीहि समास का प्रथम शब्द हो तो वह 'महा' हो जाता है, जैसे—

महाराज, महादेव।

किन्तु महत्सेवा = महता सेवा।

(च) ऋक्,[2] पुर्, अप्, धुर् शब्द जब समास के अंतिम शब्द होते हैं तो अकारान्त हो जाते हैं, जैसे—

अर्ध ऋक् = अर्धर्च,

विष्णोः पूः = विष्णुपुरम्,

विमला आपः यस्य तत् विमलापं सरः,

राज्यस्य धूः = राज्यधुरा (किन्तु अक्ष की धुरा का अभिप्राय हो तो नहीं, जैसे—अक्षधूः। अक्ष = गाड़ी)।

---

1 आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः। ६। ३। ४६॥

2 ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। ५। ४। ७४॥

(ख) वर्णवाची[1] शब्दों (नील, शुक्ल आदि) के अनन्तर तथा दृढ आदि
दृढ, वृढ, परिवृढ, भृश, कृश, वक्र, शुक्र, चुक्र, आम्र, कृष्ट, लवण, ताम्र,
त, उष्ण, जड, बधिर, पण्डित मधुर मूर्ख, मूक, स्थिर) के अनन्तर
मनिच् अथवा ष्यञ् (य) भाव के अर्थ में लगाते हैं जैसे—

शुक्लस्य भाव = शुक्लिमा, शौक्ल्यम् (अथवा शुक्लत्व, शुक्लता)।

सी प्रकार—

माधुर्यम् मधुरिमा, दार्ढ्यम्, द्रढिमा, दृढत्व, दृढता आदि।

ष्यञ् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं।

(ग) गुणवाची[2] शब्दों के अनन्तर तथा ब्राह्मण आदि (ब्राह्मण,
चार, धूर्त, आराधय, विराधय, अपराधय, उपराधय, एकभाव, द्विभाव,
त्रिभाव, अन्यभाव, संवादिन्, संवेशिन्, संभाषिन्, बहुभाषिन्, शीर्षघातिन्,
विघातिन्, समस्थ, विषमस्थ, परमस्थ, मध्यस्थ, अनीश्वर, कुशल चपल,
निपुण, पिशुन, कुतूहल, बालिश, अलस, दुष्पुरुष, कापुरुष, राजन्, गण
पति, अधिपति, दायाद, विषम विपात, निपात—ये इस गण के मुख्य
शब्द हैं) श दों के अनन्तर भावार्थ सूचित करने के लिए ष्यञ् (य)
प्रत्यय लगता है, जैसे—

ब्राह्मणस्य भाव = ब्राह्मण्यम्। इसी प्रकार—

चौर्यम्, धौर्त्यम्, आपराध्यम्, ऐकभाव्यम्, सामस्थ्यम्, कौशल्यम्,

१ वर्णदृढादिभ्य ष्यञ्। ५।१।१२३।
२ गुणवचनब्राह्मणादिभ्य कर्मणि च। ५।१।१२४।

(ग) सह और समान शब्द जब समास के प्रथम शब्द ह हैं तब उनके स्थान पर बहुधा स हो जाता है जैसे—

द्रोणेन सह= सद्रोण,

समान ब्रह्मचारी= सब्रह्मचारी।

अष्टम सोपान

तद्धित विचार

१२८-संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण आदि से जिन प्रत्ययों को जोड़ कर कुछ और अर्थ भी निकाला जाता है, उन प्रत्ययों को तद्धित प्रत्यय कहते हैं, जैसे—

दितेः अपत्य =दैत्य (दिति+ण्य)।

इसमें ण्य (तद्धित प्रत्यय) जोड़ कर दिति के लड़के का बोध कराया गया है।

कषायेण रक्त=काषायम् (वस्त्रम्)—' कषाय रंग में रँगा हुआ'।

यहाँ कषाय शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगा कर 'कषाय से रँगे हुए का अर्थ निकाला गया।

कुशाम्बेन निर्वृत्ता=कौशाम्बी (एक नगरी का नाम)।

यहाँ 'कुशाम्ब' शब्द के उपरान्त अण् प्रत्यय लगा कर ~ ॥+ब की बनाई हुई का अर्थ निकाला। इसी प्रकार और भी

चापल्यम्, नैपुण्यम्, पैशुन्यम्, कौतहल्यम्, वालिश्यम्, आलस्यम्, राज्, आधिपत्यम्, दायाद्यम्, जाड्यम्, मालिन्यम्, मौढ्यम् आदि।

नोट—कर्म का अर्थ बोध कराने के लिए भी इन शब्दों के अनन्तर ष्यञ् लगाते हैं जैसे—ब्राह्मणस्य कर्म = ब्राह्मण्यम्, वालिशस्य कर्म = वालिश्यम्, काव्यम्।

(ख)[1] इ, उ, ऋ अथवा लृ में अन्त होने वाले शब्दों के अनन्तर (यदि पूर्व वर्ण में लघु अक्षर हो जैसे शुचि, मुनि आदि-पाण्डु नहीं) भाव अथवा कर्म का अर्थ दिखाने के लिए अण् (अ) प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—

शुचेर्भावः कर्म वा = शौचम्, मुनेर्भावः कर्म वा = मौनम्।

(ग)[2] यदि किसी के तुल्य क्रिया करने का अर्थ हो तो जिसके समान क्रिया की जाती है उसके अनन्तर वति (वत्) प्रत्यय जोड़ देते हैं जैसे—ब्राह्मणेन तुल्यमधीते = ब्राह्मणवत् अधीते।

(घ)[3] यदि किसी में अथवा किसी के तुल्य कोई वस्तु हो तब भी वति प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसे—

इन्द्रप्रस्थे इव प्रयागे दुर्गं = इन्द्रप्रस्थवत् प्रयागे दुर्गं (जैसा किला इन्द्रप्रस्थ में है वैसा ही प्रयाग में है)।

१ इगन्ताच्च लघुपूर्वात्। ५। १। १३१॥
२ तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः। ५। १। ११५॥
३ तत्र तस्येव। ५। १। ११६॥

कितने ही अर्थों का बोध कराने के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं।

'तद्धित' शब्द का अर्थ है—'तेभ्य प्रयोगेभ्य हिता इति तद्धिता'—ऐसे प्रत्यय जो उन उन प्रयोगों के काम में आ सके। किन २ प्रयोगों में तद्धित प्रत्यय मुख्यरूप से आते हैं यह नीचे दिखाया जायगा।

१२९—तद्धित प्रत्यय लगाते समय नीचे लिखे नियमों का ध्यान रखना चाहिए। महर्षि पाणिनि ने इन प्रत्ययों के नामों में ऐसे अक्षर रख दिए हैं जिनसे कुछ और बातों का भी बोध होता है, जैसे—यदि किसी प्रत्यय में ञ् अथवा ण् हो तो उस शब्द के (जिसमें यह प्रत्यय जुड़ेंगे) प्रथम स्वर की वृद्धि होगी, इत्यादि। ऐसे अक्षर कभी प्रत्यय के आदि में और कभी अन्त में रहते हैं और केवल वृद्धि, गुण आदि की सूचना देने के लिए रक्खे जाते हैं।

(१) तद्धित प्रत्यय में यदि ञ् अथवा ण् होवे तो जिस शब्द ऐसा प्रत्यय जोड़ा जायगा, उस शब्द में जो भी प्रथम स्वर आवेगा उसको (इ) में का वृद्धिरूप ग्रहण करना होगा।[1]

जैसे—दिति+ण्य (य)=द्+इ+ति+य=द्+ऐ+त्य=दैत्य इत्यादि। यदि ऐसा प्रत्यय हो जिसके अन्त में क् होवे तब भी यही[2]

१ तद्धितेष्वचामादेः। ७। २ ११७।

२ किति च। ७। २। ११८।

चैत्रस्य इव मैत्रस्य गावः = चैत्रवन्मैत्रस्य गावः (जैसी गाएँ चैत्र की वैसी ही मैत्र की हैं)।

(ज)[1] यदि किसी के समान किसी की मूर्ति अथवा चित्र हो अथवा उसी के स्थान पर कोई रख लिया जाय तो उस शब्द के अनन्तर कन् (क) प्रत्यय लगाकर इस अर्थ का बोध कराते हैं, जैसे—

अश्व इव प्रतिकृतिः = अश्वकः (अश्व के समान मूर्ति अथवा चित्र जिसका)।

पुत्रकः (पुत्र के स्थान पर किसी वृक्ष अथवा पक्षी को जब पुत्र मान लें)।

समूहार्थ

१२३—किसी वस्तु के समूह का अर्थ बतलाने के लिए[2] उस वस्तु के अनन्तर अण् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—

बकानां समूहः = बाकम्।

काकानां समूहः = काकम्।

वृकाणां समूहः = वार्कम् (भेड़ियों का समूह)।

मायूरम्, कापोतम्, भैक्षम्, गार्भिणम्।

---

१ इवे प्रतिकृतौ। ५। ३। ९६॥

२ तस्य समूहः। ४। २। ३७॥ भिक्षादिभ्योऽण्। ४। २। ३८।

विधि होगी, जैसे वर्षा+ठक् (इक)=व्+अ+र्षा+इक=व+आ+र्षा+इक=वार्षिक'।

नोट—दैत्य में दूसरी 'इ' का और वर्षा में 'आ' का कैसे लोप हो गया इसके लिए नीचे के नियम देखिए।

(२) स्वर अथवा य् से आरम्भ होने वाले प्रत्ययों के पूर्व, शब्दों के अन्तिम स्वर मे विकार उत्पन्न होते हैं—अ, आ, इ, ई का तो लोप ही हो जाता है, उ और ऊ के स्थान मे गुण रूप (ओ) हो जाता है और ओ तथा औ के साथ साधारण सन्धि के नियम लगते हैं, जैसे—

अकारान्त कृष्ण + अण् = कार्ष्ण (कृष्ण के अ का लोप),
आकारान्त वर्षा+ठक (इक)=वार्षिक (वर्षा के आ का लोप)
इकारान्त गणपति+अण्=गाणपतम् (गणपति की इ का लोप)
ईकारान्त गर्भिणी+अण=गार्भिणम् (गर्भिणी की ई का लोप),
उकारान्त शिशु+अण=शैशव (शिशु के उ के स्थान में गुण रूप ओ),
ऊकारान्त वधू+अण्=वाधवम् (वधू के ऊ के स्थान में गुण रूप ओ),
ओकारान्त गो+यत्+टाप्=गो+अव्+गव्+या=गव्या,
औकारान्त नौ+ठक्=नो+आव्+इक=नाविक।

(३) शब्दो के अन्तिम न् का ऐसे प्रत्ययों के सामने जो किसी व्यंजन से आरम्भ होते हैं बहुधा लोप हो जाता है, जैसे—राजन्+वुञ् (अक) राज्+अक=राजकम्। यदि प्रत्यय स्वर से अथवा

(क) ग्राम[1], जन, बन्धु, गज, सहाय इन शब्दों के अनन्तर समूह के अर्थ के लिए तल् (ता) लगता है —

ग्रामता (ग्रामों का समूह), जनता, बन्धुता, गजता, सहायता।

सम्बन्धार्थ व विकारार्थ

१३४—"यह इसका है," इस अर्थ को बताने के लिए[2] जिसका सम्बन्ध बताना हो उसके अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

उपगोरिदम् (उपगु + अण्) = औपगवम्।

देवस्य अयम् = दैव ।

ग्रीष्म + अण् = ग्रैष्मम् नैशम् आदि—

इसका लिङ्ग सम्बद्ध वस्तु के लिङ्ग के अनुसार बदलता है।

(क)[3] सम्बन्ध अर्थ दिखाने के लिए हल और सीर शब्द के अनन्त ठक् (इक) लगता है , जैसे—हालिकम् सैरिकम् ।

(ख)[4] जिस वस्तु से बनी हुई (विकारस्वरूप) कोई दूसरी वस्तु दिखानी हो तो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं , जैसे—

१ ग्रामजनबन्धुभ्यस्तल् । ४ । २ । ४३ गजसहायाभ्यां चेति वक्तव्यम् । वा० ।

२ तस्येदम् । ४ । ३ । १२० ।

३ हलसीराट्ठक् । ४ । ३ । १२४ ।

४ तस्य विकारः । ४ । ३ । १३४ ।

से आरम्भ होते हो तो न् के साथ पूर्ववर्ती स्वर का भी कभी भी लोप हो जाता है, जैसे–आत्मन्+(ईय)=आत्म्+ईय=त्मीय।

(४) प्रत्यय के अन्त में आया हुआ हल् अक्षर केवल वृद्धि, गुण ादि किसी विधि की सूचना देने को होता है, शब्द के साथ नहीं इता। जैसे—अण् का ण् केवल वृद्धि की सूचना के लिए है, केवल जोड़ा जाएगा।

(५) प्रत्यय मे आए हुए ठ के स्थान मे इक हो जाता है, जैसे–ठक्=इक।[1]

(६) प्रत्यय के यु वु के स्थान में क्रम से अन और अक हो जाते हैं। जैसे—ल्युट्=यु (अन), वुञ्=अक।[2]

(७) प्रत्यय के आदि में आए हुए फ ढ ख छ घ के स्थान में क्रम से आयन्, एय्, ईन, ईय्, इय् हो जाते हैं, अर्थात्—[3]

फ=आयन्।

ढ=एय्

ख=ईन

छ=ईय्।

घ=इय्।

---

१ ठस्येकः ७।३।५०। २ युवोरनाकौ ७।१।१॥३ आयनेयीयेय फढखछघां प्रत्ययादीनाम्।७।१।२।

भस्मनो विकार = भास्मन (भस्म से बना हुआ)।

मार्त्तिक (मिट्टी से बना हुआ, मिट्टी का विकार)।

(ग) प्राणिवाचक, ओषधिवाचक तथा वृक्षवाचक शब्दों के अनन्तर ही प्रत्यय 'अवयव' का भी अर्थ बतलाता है, विकार तो बताता है, जैसे—

मयूरस्य विकार अवयवो वा = मायूर ।

मर्कटस्य विकारोऽवयवो वा = मार्कट ।

मूर्वाया विकारोऽवयवो वा = मौर्वं काण्डम्, भस्म वा।

पिप्पलस्य विकार अवयवो वा = पैप्पल ।

(घ) उ, ऊ में अन्त होने वाले शब्द के अनन्तर अवयव का अर्थ दिखाने के लिए अञ् (अ) प्रत्यय होता है, जैसे—

देवदारु + अञ् = दैवदारवम्, भाद्रदारवम् ।

(च) विकार अथवा अवयव का अर्थ बताने के लिए विकल्प से मयट् प्रत्यय भी आ सकता है, किन्तु खाने पहनने की वस्तुओं के अनन्तर नहीं; जैसे—

अश्मन विकारो अवयवो वा = आश्मनम्, अश्ममयम् वा ।

भस्ममयम्, सुवर्णमय, सुवर्णमयी इत्यादि ।

किन्तु मौद्ग सूप (मूँग की दाल) का मुद्गमय सूप नहीं होगा।

---

१ अवयवे च प्राण्योषधिवृक्षेभ्य । ४ । ३ । १३५ ।

२ ओरञ् । ४ । ३ । १३९ ।

३ मयड्वैतयोर्भाषायामभक्ष्याच्छादनयो । ४ । ३ । १४३ ।

अपत्यार्थ

१३०—अपत्य[1] शब्द का अर्थ है—सन्तान, 'पुत्र अथवा पुत्री'। अपत्याधिकार में ऐसे प्रत्ययों का विचार होगा जिनके सञ्ज्ञाओं में जोड़ने से किसी पुरुष या स्त्री की सन्तान का बोध होता है। इन[2] प्रत्ययो में गोत्र शब्द का व्यवहार पौत्र आदि अपत्य के अर्थ में आया है। नीचे केवल मुख्य मुख्य नियम दिये जाते हैं।

(क) अपत्य[3] का अर्थ बताने के लिए अकारान्त प्रातिपदिक के अनन्तर इञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—दशरथ+इञ्=दाशरथि (दशरथ का लड़का)। दत्तस्य अपत्य=दात्ति (दत्त+इञ्) इत्यादि।

(ख) ऐसे[4] प्रातिपदिक जिनमें स्त्री प्रत्यय लगा हो उनसे अपत्य का अर्थ बताने के लिए ढक् (एय्) लगाना चाहिए, जैसे—विनता+ढक्=वैनतेय (विनता का पुत्र)। भगिनी+ढक्=भागिनेय (भाजा) इत्यादि। ऐसे प्रातिपदिक जिनमें केवल दो स्वर हो और जो इकार में अन्त होते हैं, ढक् प्रत्यय लगा कर अपत्यार्थ सूचित करते हैं, जैसे—अत्रि+ढक्=आत्रेय।

---

१ तस्यापत्यम् । ४ । १ । ९२ ॥ २ अपत्य पौत्रप्रभृतिगोत्रम् । ४ । १ । १६२ ॥ ३ अत इञ् । ४ । १ । ९५ ॥ ४ स्त्रीभ्यो ढक् । द्व्यचः । ४ । १ १२०,१२१। इतश्चानिञ । ४।१।१२२ ।

परिमाणार्थ तथा सख्यार्थ

१३५—जो प्रत्यय परिमाण (कितना आदि) बताने के लिये लगाए जाते हैं उन्हें परिमाणार्थ प्रत्यय कहते हैं।

(क) यत्[1], तत् एतत् के अनन्तर वतुप्, किम्, इदम् के अनन्तर व और घ (इय) लगता है, जैसे—इयान, कियान्।

इनका विस्तृत रूप विशेषण विचार मे दिखाया जा चुका है।

(ख)[2] मात्रच् प्रत्यय लगाकर प्रमाण, परिमाण, सख्या आदि का सशय हटाकर निश्चय स्थापित किया जाता है, जैसे—

राम प्रमाणम्=राममात्रम् (निश्चय ही राम प्रमाण है)।

सेरमात्रम् (सेर ही भर)।

पञ्चमात्रम् (पाँच ही)।

(ग)[3] पुरुष और हस्तिन् के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाकर प्रमाण बताया जाता है, जैसे—

पौरुषम् (जलमस्या सरिति)—इस नदी में आदमी भर (आदमी के डूबने भर) पानी है। हास्तिनम् (जलम्)।

(घ)[4] किम् शब्द के अनन्तर डति (अति) लगाकर सख्या का और परिमाण का भी बोध कराते हैं, कति—कितने।

१ यत्तदेतेभ्य परिमाणे वतुप्। किमिदम्भ्या वो घ। ५। २। ३९—४०।
२ प्रमाणपरिमाणाभ्या सख्यायाश्चापि सशये। मात्रज्वक्तव्य। वा०।
३ पुरुषहस्तिभ्यामण् च। ५। २। ३८।
४ किम सख्यापरिमाणे डति च। ५। २। ४१।

(ग) अश्वपति[1] आदि (अश्वपति, शतपति, धनपति, गणपति, राष्ट्रपति, कुलपति, गृहपति, पशुपति, धान्यपति, धन्वपति, सभापति, प्राणपति, क्षेत्रपति) प्रातिपदिकों में अण् प्रत्यय लगाकर अपत्यार्थ सूचित किया जाता है, जैसे—गणपति + अण् = गाणपतम् इत्यादि।

(घ) राजन्[2] और श्वशुर शब्दों के अनन्तर अपत्यार्थ में यत (य) प्रत्यय लगता है। राजन् + यत् = राजन्य, श्वशुर + यत = श्वशुर्य (साला)

मत्वर्थीय

१३१–हिन्दी में जो अर्थ 'वान्', 'वाला' आदि प्रत्ययों से सूचित होता है (जैसे गाड़ीवान, इक्केवाला आदि) उसी अर्थ का बोध कराने वाले प्रत्ययों को मत्वर्थीय (मतुप् प्रत्यय के अर्थ वाले) कहते हैं। उनमें से मुख्य दो चार का ही यहाँ विचार किया जायगा।

(क) किसी[3] वस्तु का होना किसी दूसरी वस्तु में सूचित करने के लिये, जिस वस्तु का होना सूचित करना हो उसके अनन्तर मतुप् (मत्) प्रत्यय लगता है, जैसे —

---

१ अश्वपत्यादिभ्यश्च। ४। १। ८४।

२ राजश्वशुराद्यत्। ४। १। १३७।

३ तदस्यास्त्यस्मिन्निति मतुप्। ५।२।९४। भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने। सम्बन्धेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥ वार्तिक॥

(घ) संख्या शब्द के अनन्तर तयप् लगाकर संख्यासमूह का बोध कराते हैं, द्वितयम्, त्रितयम् आदि।

द्वि और त्रि के अनन्तर इसी अर्थ में अयच् प्रत्यय भी लगता है—द्वयम्, त्रयम्।

हितार्थ

१३६—जिसके हित की कोई वस्तु हो उसके अनन्तर छ (ईय)[2] प्रत्यय लगता है, जैसे—

वत्सेभ्य हितं दुग्धं = वत्सीयम् दुग्धम् (बछड़ों के लिए दूध)।

इसी अर्थ में शरीर के[3] अवयववाची शब्दों के अनन्तर तथा उकारान्त[4] शब्दों के अनन्तर, और गो आदि (गो, हविस्, अक्षर, विष, बर्हिस्, अष्टका, युग, मेधा, नाभि, श्वन्—शून् या शुन् हो जाता है—कूप, दर, खर, असुर, वेद, बीज—ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे—

दन्तेभ्य हिता (ओषधि) = दन्त्या, (दन्त + यत्)। इसी प्रकार कण्ठ्या, गोभ्य हितं = गव्यम्, शरवे हितं = शरव्यम् (शरु + यत्), हविष्यम्, शुन्यम्, असुर्यम्, वेद्यम् बीज्यम् आदि।

---

१ संख्याया अवयवे तयप् ।५।२।४२। द्वित्रिभ्यां तयस्यायज्वा ।५।२।४३।
२ तस्मै हितम् । ५ । १ । ५ ।
३ शरीरावयवाच्च । ५ । १ । ६ ।
४ उगवादिभ्यो यत् । ५ । १ । २ ।

गाव अस्य सन्ति इति=गोमान् (गो+मतुप्)।

जब किसी वस्तु के बाहुल्य, निन्दा, प्रशंसा, नित्ययोग, आधिकता अथवा सम्बन्ध का बोध कराना हो तो विशेष करके मत्वर्थीय प्रत्यय लगाते हैं, जैसे —

गोमान् (बहुत गायों वाला)।
ककुदावर्तिनी कन्या (कुबड़ी लड़की)।
रूपवान् (अच्छे रूप वाला)।
क्षीरी वृक्ष (जिसमें नित्य दूध रहता हो)।
उदरिणी कन्या (बड़े पेट वाली लड़की)।
दण्डी (दण्ड के साथ रहने वाला साधु)।

मतुप् प्रत्यय विशेषकर गुणवाची शब्दों (रूप, रस, गन्ध स्पर्श आदि) के उपरान्त लगता है। गुणवान्, रसवान् इत्यादि।

नोट—यदि[1] मतुप् प्रत्यय के पूर्व ऐसे शब्द हों जो म् अथवा अ, आ अथवा पाँचो वर्गों के प्रथम चार वर्णों में अन्त होते हों अथवा जिनकी उपधा (अन्तिम अक्षर के पूर्ववाला अक्षर उपधा कहलाता है) म् अथवा अ या हो तो मतुप् के म् के स्थान में व् हो जाता है, जैसे कि ऊपर उदाहरण, और विद्यावान् लक्ष्मीवान्, यशस्वान् विद्युद्वान, तडिद्वान्, इत्यादि कुछ शब्दों के अनन्तर (यव आदि में) यह नियम नहीं भी लगता है जैसे यवमान्।

1. मादुपधायाश्च मतोर्वोऽयवादिभ्यः । ८ । २ । ९ । झयः । ८ । २ । १०

क्रियाविशेषणार्थ

१३७—कुछ तद्धित प्रत्यय ऐसे हैं, जिनके जोड़ने से वह प्रयोजन सिद्ध होता है जो हिन्दी में दिशावाची, कालवाची आदि क्रियाविशेषणों से होता है।

(क)[1] पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में सञ्ज्ञा तथा सर्वनाम, विशेषण के अनन्तर, तथा परि और अभि प्रत्ययो के अनन्तर तसिल् (तस) लगता है, इस प्रत्यय के पूर्व तथा नीचे लिखे प्रत्ययों के पूर्व कुछ सर्वनामा के रूप में हेर फेर हो जाता है जैसे—

त्वत्त (त्वम्+तसिल्), मत्त, युष्मत्त, अस्मत्त, अत यत, तत, मध्यत, परत कुत, सर्वत, इत, अमुत उभयत, परित, अभित आदि।

(ख)[2] सप्तमी का अर्थ देने के लिए त्रल् (त्र) लगता है—कुत्र, यत्र, तत्र, यत्र, बहुत्र सर्वत्र एकत्र।

(ग)[3] कब, जब आदि अर्थ प्रकट करने के लिए सर्व, एक, अन्य, किम्, यद्, तद् शब्दों के अनन्तर 'दा' प्रत्यय लगता है—

सर्वदा, एकदा अन्यदा, कदा यदा, तदा।

इसी अर्थ में 'दानीम् प्रत्यय भी लगता है, कदानीम्, यदानीम्, तदानीम्, इदानीम् आदि।

---

१ पञ्चम्यास्तसिल । ५ । ३ । ७ । पर्यभिभ्या च । ५ । ३ । ९ । सर्वोभयार्थाभ्यामेव । वा० ।

२ सप्तम्यास्त्रल् । ५ । ३ । १० ।

३ सर्वैकान्यकियत्तद काले दा । ५ । ३ ।१५। दानीं च ।५।३ । १८।

(घ) ऐसे वैसे आदि शब्दों के द्वारा सूचित प्रकार अर्थ को बताने के लिए थाल् (थम्) या प्रत्यय लगाते हैं—इत्थम्, इत्थम् यथा तथा।

(च) आगे, पीछे आदि शब्दों का अर्थ बताने के लिए पुर आदि देशवाची शब्दों के अनन्तर प्रथमान्त, पञ्चमी तथा सप्तमी के अर्थ में अस्ताति (अस्तात्) प्रत्यय लगता है,

पुर + अस्ताति = पुरस्तात्, अधस्तात्, अवस्तात् अवरस्तात्, उपरिष्टात्।

इसी प्रकार एनप् लगाकर प्रथमा और सप्तमी का अर्थ बताने को दक्षिणेन उत्तरेण, अधरेण, पूर्वेण, पश्चिमेन, तथा आति लगाकर पश्चात्, उत्तरात्, अधरात्, दक्षिणात् शब्द बनाते हैं।

(छ) 'दो बार' 'तीन बार आदि की तरह 'बार' शब्द का अर्थ लाने के लिए पञ्चन् और इसके आगे के संख्यावाची शब्दों के अनन्तर कृत्वसुच् (कृत्वम्) प्रत्यय लगाते हैं,

---

१ प्रकारवचने थाल् । ५ । ३ । २३ ।

२ दिक्शब्देभ्य सप्तमीपञ्चमीप्रथमाभ्यो दिग्देशकालेष्वस्ताति । ५ । ३ । २७ । ०नबन्यतरस्यामदूरेऽपञ्चम्या । ५ । ३ । ३५ । पश्चात् । उत्तराधरदक्षिणादाति । ५ । ३ । ३३-३४ ।

३ संख्यायाः क्रियाभ्यावृत्तिगणने कृत्वसुच् । ५ । ४ । १७ । द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् । एकस्य सकृत् ५।४।१८-१९ ॥ विभाषा बहोर्धाऽविप्रकृष्टकाले । ५ । ४ । २० ।

(ग) यदि[1] किसी वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु आवे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु, अथवा मनुष्य से आई है तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

सुघ्नादागत स्रौघ्न ।

आमदनी के स्थान[2] (दूकान, कारखाना) आदि के अनन्तर ठक् (इक) होता है, जैसे—

शुल्कशालाया आगत शौल्कशालिक ।

जिनसे[3] विद्या अथवा जन्म (योनि) का सम्बन्ध हो उन मे, यदि ऋकारान्त शब्द न हों, तो वुञ् (अक) होता है, जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या—औपाध्यायिका

पितामहादागत धन पैतामहकम्, अन्यथा भ्रातृकम् पैतृकम् ।

(घ) यदि[4] कोई मनुष्य किसी वस्तु से जुआ खेले, कुछ खो दे, कुछ जीते, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य का बोध होता है, जैसे—

---

१ तत आगत ।४।३।७४।

२ ठगायस्थानेभ्य ।४।३।७५।

३ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ।४।३।७७। ऋतष्ठञ् ।४।३।७८।

४ तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम् ।४।४।२। तरति । चरति ।४।४।८।

पञ्चकृत्व भुङ्क्ते (पाँच बार खाता है)

इसी प्रकार—षट्कृत्व, सप्तकृत्व आदि।

इस अर्थ में एक बार के लिए 'सकृत्' शब्द है और द्वि, त्रि, चतुर् के अनन्तर सुच् (स्) लगता है—

द्वि —दो बार, त्रि, चतु ।

बहु के अनन्तर कृत्वसुच् और धा दोनों प्रत्यय लगते हैं—

बहुकृत्व, बहुधा—बहुत बार ।

शैषिक

१३८-[1] ऐसे अर्थ जिनका बोध अपत्यार्थ, चातुरर्थिक, रक्ताद्यर्थ प्रत्ययों से नहीं होता वे तद्धित अर्थ पाणिनि व्याकरण में 'शेष' शब्द बतलाये गये हैं। शेष तद्धित अर्थों के लिए बहुधा अण् जोड़ा जाता है उदाहरणार्थ —

चक्षुषा गृह्यते (रूप) = चाक्षुष (चक्षुष् + अण्) ।

श्रवणेन श्रूयते (शब्द) = श्रावण (श्रवण + अण्) ।

अश्वैरुह्यते (रथ) = आश्व ।

चतुर्भिरुह्यते (शकटम्) = चातुरम् ।

चतुर्दश्या दृश्यते (रक्ष) = चातुर्दशम् ।

(क)[2] ग्राम शब्द के अनन्तर शैषिक प्रत्यय यत् और खञ् (ईन होते हैं —ग्राम्य, ग्रामीण ।

---

१ शेषे। ४। २। ९२। २ ग्रामाद्यखञौ। ४। २। ९४।

अचैर्दीव्यति = आक्षिक (अक्ष+ठक्)—ऐसा मनुष्य जो (पाँसे) से जुआ खेलता है।

अभ्या खनति = आभ्रिक —फावड़े से खोदने वाला।

अक्षैर्जयति = आक्षिक — पाँसों से जीतने वाला।

उडुपेन तरति = औडुपिक —डोंगी से तैरने वाला।

हस्तिना चरति = हास्तिक —हाथी के साथ चलने वाला।

(च) अस्ति नास्ति, दिष्ट इनके अनन्तर मति के अर्थ में,[१] प्र वाची शब्दों के अनन्तर, 'यह प्रहरण इस के पास है' इस अर्थ में, बात के करने का शील (स्वभाव) हो उसके अनन्तर, और जिस काम प नियुक्त किया गया हो उसके अनन्तर मनुष्य का बोध कराने के लिए ठ प्रत्यय लगता है, जैसे

अस्ति परलोक इति मतिर्यस्य स = आस्तिक (अस्ति+ठक्)।

नास्ति परलोक इति मतिर्यस्य स = नास्तिकः।

दिष्टमिति मतिर्यस्य स = दैष्टिक (भाग्यवादी)।

असि प्रहरण यस्य स = आसिक (असि+ठक्)।

अपूपभक्षण शीलमस्य = आपूपिक (अपूप+ठक्)—जिसको पुआ खाने की आदत हो।

आकरे नियुक्त = आकरिक (आकर+ठक)=ख़ज़ानची।

१ अस्तिनास्तिदिष्टं मतिः ४।४।६०। प्रहरणम् ।४।४।५७। ४।४।६१। तत्र नियुक्त ।४।४।६९।

घु प्राच्, अपाच्, उदच् प्रतीच् शब्दों के अनन्तर यत् होता है —
दिव्यम् प्राच्यम्, अपाच्यम्, उदीच्यम् प्रतीच्यम्।

अमा इह, क, नि, तसि प्रत्ययान्त शब्द तथा त्रल् प्रत्ययान्त शब्दों के अनन्तर त्यप् (त्य) आता है —अमात्य, इहत्य, क्वत्य निस्य ततस्त्य, तस्त्य कुतस्त्य, यतस्त्य आदि, कुत्रत्य तत्रत्य, अत्रत्य, यत्रत्य आदि।

(ख) जिस शब्द के स्वरों में पहला स्वर वृद्धि वाला (आ ऐ औ) इन शब्दों को तथा त्यद् आदि (त्यद्, तद् यद्, एतद् इदम् अदस्, क, द्वि, युष्मद, अस्मद्, भवत्, किम्) शब्दों को पाणिनि ने ' वृद्ध ' नाम दिया है, इन वृद्धों के अनन्तर शैषिक छ (ईय) प्रत्यय लगता है जैसे—

शाला+छ=शालीय, माला+छ=मालीय, तद्+छ=तदीय, यदीय, एतदीय युष्मदीय, अस्मदीय, भवदीय आदि।

(ग) युष्मद् और अस्मद् शब्दों के अनन्तर इसी अर्थ में छ के

---

1 द्युप्रागपागुदक्प्रतीचो यत्। ४। २। १०१। अमेहक्वतसित्रेभ्य एव। वा०। त्यब्नेर्ध्रुव इति वक्तव्यम्। वा०।

2 वृद्धिर्यस्याचामादिस्तद्वृद्धम्। त्यदादीनि च। १। १। ७३-७४। वृद्धाच्छः। ४। २। ११४।

3 युष्मदस्मदोरन्यतरस्यां खञ् च। तस्मिन्नणि च युष्माकास्माकौ ४। ३। १-२।

(क) 'वश में आया हुआ' के अर्थ में वश के अनन्तर, अनुकूल के अर्थ में धर्म, पथ, अर्थ और न्याय के अनन्तर, प्रिय के अर्थ में हृद् (हृदय) के अनन्तर, तथा यदि किसी वस्तु के लिए अच्छा और योग्य कोई हो तो उस वस्तु के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है; जैसे—[1]

वशगत = वश्य (वश + यत्), धर्मादपेत = धर्म्यम् (धर्म + यत्)—(धर्मानुकूल), पथ्यम्, अर्थ्यम्, न्याय्यम्, हृदयस्य प्रिय = हृद्य (जन)—हृद् + यत्—(प्रिय), शरणे साधु = शरण्य (शरण + यत्)—(शरण लेने के लिए अच्छा), कर्मणि साधु = कर्मण्य—(काम के लिए अच्छा)।

(ख) जिस वस्तु के जो योग्य होता है उस मनुष्य का बोध कराने के लिए उस वस्तु के अनन्तर ठञ् आदि प्रत्यय लगाए जाते हैं, जैसे—[2]

प्रस्थमर्हति असौ याचक = प्रास्थिक (प्रस्थ भर अन्न के योग्य)—प्रस्थ + ठञ्,

द्रौणिक—द्रोण + ठञ्;

श्वेतच्छत्रमर्हति = श्वेतच्छत्रिक—श्वेतच्छत्र + ठक्;

इसी अर्थ में दण्ड आदि (दण्ड, मुसल, मधुपर्क, कशा, अर्घ, मेघ, मेधा, सुवर्ण, उदक, वध, युग, गुहा, भाग, इभ, भङ्ग) शब्दों के अनन्तर यत् प्रत्यय लगता है, जैसे —

---

१ वशं गतः। धर्मपथ्यर्थन्यायादनपेते। हृदयस्य प्रियः। तत्र साधुः। ४।४।८६,९२,९५,९८।

२ तदर्हति।५।१।६३। दण्डादिभ्यः।५।१।६६।

अतिरिक्त अण् और खञ् भी विकल्प से हो सकते हैं, किन्तु इस दशा में युष्मद् और अस्मद् के स्थान में युष्माक और अस्माक तथा एकवचन में तवक और ममक, खञ् और अण् प्रत्यय लगने के पूर्व आदेश हो जाते हैं—

युष्मद्—युष्माक (+ अण्) = यौष्माक, (+ खञ्) = यौष्माकीण (तुम्हारा)। तवक (+ अण्) = तावक, (+ खञ्) = तावकीन (तेरा)। युष्मद् (+ छ) = युष्मदीय।।

अस्मद्—अस्माक (+ अण्) = आस्माक, (+ खञ्) = आस्माकीन (हमारा)। ममक (+ अण्) = मामक, (+ खञ्) = मामकीन (मेरा)। अस्मद् (+ छ) = अस्मदीय।

नोट—'विशेषण विचार' में इनका उल्लेख आ चुका है।

(घ) कालवाची[1] शब्दों के अनन्तर शैषिक ठञ् प्रत्यय होता है—

मास + ठञ् (इक) = मासिक, सावत्सरिक, सायप्रातिक, पौनःपुनिक आदि।

परन्तु[2] सन्धिवेला शब्द, सन्ध्या, अमावास्या, त्रयोदशी, चतुर्दशी, पौर्णमासी, प्रतिपद् तथा ऋतुवाची शब्द (ग्रीष्म आदि) और नक्षत्रवाची शब्दों के अनन्तर अण् होता है—

सान्धिवेलम्, सान्ध्यम्, आमावास्यम्, त्रायोदशम्, चातुर्दशम्, पौर्णमासम्, प्रातिपदम्, ग्रैष्मम् (वार्षिकम्—वर्षा + ठक्, प्रावृषेण्यम्—प्रावृष् + एण्य), शारदम्, हैमन्तम्, शैशिरम्, वासन्तम्, पौषम् आदि।

---

१ कालाट्ठञ्। ४। ३। ११।

२ सन्धिवेलाद्यृतुनक्षत्रेभ्योऽण्। ४। ३। १६।

दण्ड्य, मुसल्य, मधुपर्क्य, अर्घ्य, मेल्य, मेध्य, वध्य, युग्य, गुह्य, भग्य आदि।

(क) प्रयोजन के अर्थ में ठञ् प्रत्यय लगता है, जैसे—

इन्द्रमह प्रयोजनमस्य पदार्थस्य=ऐन्द्रमाहिक (पदार्थ) के उत्सव के लिए। प्रयोजन का अर्थ फल अथवा कारण दोनों हैं।

(ट) जिस रँग से रँगी हुई वस्तु हो उस रङ्गवाची शब्द के आगे अण् प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—

कषाय+अण्=काषाय वस्त्रम्,

मञ्जिष्ठा+अण्=माञ्जिष्ठम्।

किन्तु लाक्षा, रोचन, शकल, कर्दम के अनन्तर ठक् (लाक्षिक रौचनिक शाकलिक कार्दमिक), नीली के अनन्तर अन् (नीली+अन्=नील) पीत के अनन्तर कन् (पीतकम्), तथा हरिद्रा और महारजन के अनन्तर अञ् (हारिद्रम्, माहारजनम्) इसी अर्थ में लगता है।

(ठ) नक्षत्र से युक्त समयवाची शब्द बनाने के लिए नक्षत्रवाची शब्द में अण् जोड़ते हैं, जैसे—

---

१ प्रयोजनम् ।५।१।१०९

२ तेन रक्तं रागात् ४।२।१। लाक्षारोचनाट्ठक् ।४।२।२। शकलकर्दमाभ्यामुपसंख्यानम् (वा०)। नील्या अन् (वा०)। पीतात्कन् (वा०)। हरिद्रामहारजनाभ्यामञ् (वा०)।

३ नक्षत्रेण युक्तः कालः ।४।२।३॥

(च) सायं, चिर, प्राह्णे, प्रगे शब्दों के अनन्तर तथा अव्ययों के अनन्तर शैषिक ट्यु ट्युल (अन) लगते हैं और शब्द और प्रत्यय के बीच त् भी ऊपर से आ जाता है—[1]

सायं+त्+ट्युल् (अन)=सायन्तनम्, चिरन्तनम्, प्राह्णेतनम्, प्रगेतनम्, दोषातनम्, दिवातनम्, इदानीन्तनम्, तदानीन्तनम्, इत्यादि।

(छ) दो के बीच में अतिशय दिखाने के लिए तरप् और ईयसुन् प्रत्यय लगते हैं और दो से अधिक के बीच में दिखाने के लिए तमप् और इष्ठन्।[2]

लघु से लघीयस्, लघुतर (दो के लिए) और लघिष्ठ और लघुतम दो से अधिक के लिए। इनका विस्तारपूर्वक वर्णन विशेषण विचार (१०३) में आ चुका है।

(ज) किम् के अनन्तर, एद् प्रत्ययान्त (प्राह्णे, प्रगे आदि) शब्दों के अनन्तर अव्ययों के अनन्तर तथा तिङन्त के अनन्तर तमप्+आमु= (तमाम्) लगाया जाता है—[3]

किन्तमाम्, प्राह्णेतमाम्, उच्चैस्तमाम्—(खूब ऊँचा), पचतितमाम्—(खूब अच्छी तरह पकाता है)। इसी प्रकार—नीचैस्तमाम् गच्छतितमाम्, वदतितमाम् आदि।

---

१ सायंचिरंप्राह्णेप्रगेऽव्ययेभ्यष्ट्युट्युलौ तुट् च ।४।३।२३।

२ अतिशायने तमबिष्ठनौ । तिङश्च ५।३।५५-५६।

तरप्तमपौ घः ।१।१।२२।

द्विवचनविभज्योपपदे तरबीयसुनौ ।५।३।५७।

३ किमेत्तिङव्ययघादाम्वद्रव्य-प्रकर्षे ।५।४।११।

चित्रया युक्त मासः=चैत्र,
पुष्येण युक्ता रात्रि पौषी रात्रि इत्यादि।

(ड) जिस वस्तु में खाने पीने की वस्तु तय्यार की जाए तो यह
बोध कराने के लिए कि अमुक वस्तु मे यह वस्तु तय्यार हुई है, तो उस वस्तु
के अनन्तर अण् प्रत्यय लगाते हैं; जैसे—

भ्राष्ट्रे संस्कृता यवा भ्राष्ट्रा (भाड में भूने हुए जौ)।
पयसि संस्कृत भक्त=पायसम् (दूध में बने चावल) आदि।
किन्तु दधि शब्द के अनन्तर ठक लगता है।
दधि संस्कृतम्=दाधिकम् (दही में बनी चीज़)।
किसी वस्तु (मिर्च, घी आदि) मे संस्कार की हुई वस्तु के अनन्तर ठक्
लगता है, जैसे—

तैलेन संस्कृत=तैलिकम् (तेल मे बनी वस्तु), घार्तिकम् (घी से
बनी), मारीचिकम् (मिर्च मे छौंकी)।

(ढ) जिस खेल में कोई प्रहरण प्रयोग में लाया जाए तो उस खेल
का बोध कराने के लिए, प्रहरणवाची शब्द के अनन्तर ण (अ) प्रत्यय
लगाते हैं, जैसे —

दण्ड प्रहरणमस्यां क्रीडायां सा दाण्डा (डंडेबाज़ी),
मुष्टि प्रहरणमस्यां क्रीडाया सा मौष्टा (मुक्केबाज़ी),

१ संस्कृत भक्षा ।४।२।१६। दध्नष्ठक् ।४।२।१८ संस्कृतम् ।४।४।३।
२ तदस्या प्रहरणमिति क्रीडायां ण ।४।२।५७।

(झ)[1] कुछ कमी दिखाने के लिए कल्पप् (कल्प) देश्य, देशीय (देशीय) प्रत्यय लगाए जाते हैं , जैसे —

विद्वत्कल्प , विद्वद्देश्य , विद्वद्देशीय —कुछ कम विद्वान् पुरुष।

पञ्चवर्षकल्प , पञ्चवर्षदेश्य पञ्चवर्षदेशीय —कुछ कम पाँच बरस का

यजतिकल्पम्—ज़रा कम यज्ञ करता है।

(ट) अनुकम्पा[2] का बोध कराने के लिए कन् (क) प्रत्यय ल
है , जैसे—

पुत्रक (बेचारा लड़का), भिक्षुक (बेचारा भिखारी) आदि।

(ठ) जब[3] कोई वस्तु कुछ से कुछ हो जाए, इतनी बदल जा
काली न हो तो काली हो जाए, मोटी न हो तो मोटी हो जाए इ
तो च्वि प्रत्यय लगा कर इस अर्थ का बोध कराते हैं। यह प्रत्यय
कृ धातु, भू धातु और अस् धातु के योग में आता है। च्वि का लो
जाता है, किन्तु पूर्व पद का अकार अथवा आकार ईकार में बदल ज
और यदि अन्य स्वर पूर्व में आवे तो वह दीर्घ हो जाता है, जैसे —

अकृष्ण कृष्ण क्रियते (कृष्ण + क्रियते + च्वि) = कृष्ण + ई + क्रि
कृष्णीक्रियते।

---

१ ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः ।५।३।६७।

२ अनुकम्पायाम् । ५ । ३ । ७६ ।

३ कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः । ५ । ४ । ५० । अभूततद्भाव
ग्रहणम् । वा० । अस्य च्वौ । ७ । ४ । ३२ । च्वौ च । ७ । ४ ।

¹कोई चीज़ पढ़नेवाले या जाननेवाले का बोध कराने के लिए अ (अ) लगता है, जैसे —

व्याकरणमधीते वेद वा = वैय्याकरण (व्याकरण + अ ।)

(त) "इसमें यह वस्तु है" "उससे यह बनी है", "इस में उसका निवास है", "यह उससे दूर नहीं है"—ये सब अर्थ दिखाने के लिए अण् प्रत्यय जोड़ते हैं, जैसेः—

उदुम्बराः सन्त्यस्मिन् देशे इति औदुम्बर देश ,

कुशाम्बेन निर्वृत्ता = कौशाम्बी (नगरी),

शिवीनां निवासो देश = शैव देश ,

विदिशाया अदूरभव (नगरम्) = वैदिशम् ।

इन चार अर्थों के बोधक प्रत्ययों को चातुरर्थिक तद्धित प्रत्यय कहते हैं ।

³यदि जनपद का अर्थ लाना हो तो चातुरर्थिक प्रत्ययों का लोप हो जाता है ।

पञ्चालानां निवासो जनपद = पञ्चाला, कुरव, वङ्गा, कलिङ्गा आदि ।

जनपदवाची शब्द सदा बहुवचन में रहते हैं ।

---

१ तदधीते तद्वेद ।४।२।५९।

२ तदस्मिन्नस्तीति देशे तन्नाम्नि । तेन निर्वृत्तम् । तस्य निवास । अदूरभवश्च ।४।२।६७–७० ।

३ जनपदे लुप् ।४।२।८१।

अब्रह्मा ब्रह्मा भवति ब्रह्मीभवति (जो ब्रह्मा नहीं है वह ब्रह्मा होता है)।
अगङ्गा गङ्गा स्यात्=गङ्गीस्यात् (जो गङ्गा नहीं है वह गङ्गा हो
।)। शुचीभवति, पट्करोति इत्यादि।

(ङ) जब[1] किसी वस्तु का दूसरी वस्तु में ही परिणत हो जाना
जाना हो तो साति (सात्) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे —

इन्धनम् अग्निः भवति=इन्धनम् अग्निसात् भवति=(ईंधन आग हो
जाता है)।

अग्नि भस्मसात् भवति—आग भस्म हो जाती है।

प्रकीर्णक

१३९—ऊपर उल्लिखित अर्थों के अतिरिक्त और भी कितने ही
के लिए तद्धित प्रत्यय जोड़े जाते हैं। प्रधान प्रधान अर्थ नीचे दिए
हैं।

(क) यदि[2] किसी वस्तु में दूसरी वस्तु की सत्ता हो अर्थात् वह वहाँ
मान हो तो जिस वस्तु में सत्ता हो उसके अनन्तर अण् प्रत्यय जोड़ा
है, जैसे—

स्रुघ्ने भवः=स्रौघ्नः (स्रुघ्न+अण्)—स्रुघ्न में वर्तमान है।

---

१ विभाषा साति कार्त्स्न्ये। ५।४।५२।

२ तत्र भवः। ४।३।५३।

इ, ई, उ, ऊ में अन्त होने वाले शब्दों में चातुरर्थिक मतुप्[1] प्रत्यय लगता है, जैसे—इक्षुमती।

नवम सोपान

क्रिया विचार

१४०—संस्कृत भाषा के प्राय सभी शब्द धातुओं से बनते हैं, क्या संज्ञा, क्या विशेषण, क्या क्रिया, क्या अव्यय आदि। कुछ शब्द ऐसे हैं जो कि ऊपर से धातु से बने नहीं जान पड़ते, किन्तु वैयाकरण उनको भी धातुओं से निर्मित सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। व्याकरण की दृष्टि से धातु शब्द का अर्थ है 'शब्दयोनि', अर्थात् जिससे शब्दों की उत्पत्ति हो। 'धातुपाठ' में कुल १८८० धातुओं की गणना है, इन्हीं से प्रत्यय विशेष जोड़ जोड़ कर संस्कृत भाषा के शब्द बनते हैं।

धातुओं में कृदन्त प्रत्यय जोड़ कर संज्ञा, विशेषण आदि बनते हैं। इनका विचार आगे ग्यारहवें सोपान में किया जायगा। धातुओं से कुछ (तिङ्) प्रत्यय जोड़ कर क्रियाएँ बनाई जाती हैं। इस सोपान में क्रिया की दृष्टि से ही विचार किया गया है।

(क) धातुएँ दस विभागों में विभक्त की गई हैं। इनको गण कहते हैं। उनके नाम ये हैं—भ्वादि, अदादि, जुहोत्यादि, दिवादि,

---

1 नद्यां मतुप् ।४।२।८१।

इसी[1] अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा (दिश्, वर्ग, पू, ... रहस्, उख्वा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेध, यूथ, न्याय, वश, काल, मुख, जघन), इन शब्दों में यत् (य) जोड़ा जाता है—

दन्त्यम्, मुख्य नासिक्य, दिश्य, पूय, वर्ग्य (पुरुष), पथ्य (...) रहस्य (मन्त्रम्), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्य (पुरुष) आद्य आदि, अन्त्य, मेध्य, यूथ्य, न्याय्य, वश्य काल्य, मुख्य (सेना आदि के अङ्ग के अर्थ में), जघन्य (नीच)। इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा।

इसी[2] अर्थ में कुछ अव्ययीभाव समासों के अनन्तर 'ञ्य (य)' लगता है, जैसे परिमुख भव = पारिमुख्यम्।

(ख) यदि[3] किसी स्थान में किसी मनुष्य का निवास (स्वयं अथवा पूर्वजों का) हो और यह बतलाना हो कि यह अमुक स्थान का निवासी है तो स्थानवाचक शब्द से अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुरायां निवास अभिजनो वाऽस्य = माथुर भाटनागर।

यदि[4] किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध से बताना हो तो जातिवाची शब्द के अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

शिबीनां विषयो देश = शैव देश (शिबि लोगों के रहने का देश)

---

१ दिगादिभ्यो यत् शरीरावयवाच्च। ४।३।५४ ५५।

२ अव्ययीभावाच्च। ४।३।

३ सोऽस्य निवास ४।३।

४ विषयो देशे। ४।२।

स्वादि, तुदादि, रुधादि, तनादि, क्र्यादि और चुरादि। इनको क्रम से प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, सप्तम, अष्टम, नवम तथा दशम गण भी कहते हैं। गण का अर्थ है "समूह", धातुओं के उस समूह को जिसके आदि में भू धातु है भ्वादिगण कहते हैं, इसी प्रकार अदादि भी हैं। जिन धातुओं के रूप एक प्रकार से चलते हैं वे एक गण मे रक्खी गई हैं। प्रत्येक गण मे रूप चलाने के लिए क्या विशेषता लानी होती है यह आगे प्रत्येक गण के विचार के समय उल्लेख किया जाएगा।

(ख) रूप चलाने की सुगमता के लिए धातुओं का विभाग सेट्, वेट्, अनिट्, इन तीन भागो में भी किया जाता है। सेट् का अर्थ है इट् सहित, अर्थात् जिनके रूपो में धातु और प्रत्यय के बीच मे एक "इ" आ जाती है। यह 'इ" कुछ ही प्रत्ययो के पूर्व आती है सब के पूर्व नहीं। वेट् (वा+इट्) विभाग में वे धातुएँ हैं जिनके उपरान्त इ विकल्प मे आती है और अनिट् विभाग में वे हैं जिनमें इट् नहीं लाई जाती।

(ग) कुछ धातुएँ सकर्मक होती हैं, और कुछ अकर्मक। सकर्मक धातुओं के रूपो के साथ किसी कर्म की आकांक्षा रहती है, अकर्मक धातुओं के रूपो के साथ नहीं।

---

१ भ्वाद्यदादी जुहोत्यादि दिवादि स्वादिरेव च।
तुदादिश्च रुधादिश्च तनादिक्रिचुरादय ॥

(ग) यदि किसी[1] वस्तु, स्थान अथवा मनुष्य आदि से कोई वस्तु वे और यह दिखाना हो कि यह अमुक स्थान, अमुक वस्तु, अथवा मनुष्य आई है तो स्थानादिवाचक शब्द के अनन्तर बहुधा अण् प्रत्यय लगाते , जैसे—

सुघ्नादागत स्रौघ्न ।

आमदनी[2] के स्थान (दूकान, कारखाना) आदि के अनन्तर ठक् इक) होता है , जैसे—

शुल्कशालाया आगत शौल्कशालिक ।

जिनमे[3] विद्या अथवा जन्म (योनि) का सम्बन्ध हो उन से, यदि कारान्त शब्द न हों, तो वुञ् (अक) होता है , जैसे—

उपाध्यायादागता विद्या —औपाध्यायिका

पितामहादागत धन पैतामहकम् , अन्यथा भ्रातृकम्, पैतृकम् ।

(घ) यदि कोई[4] मनुष्य किसी वस्तु से जुआ खेले कुछ खो दे, कुछ ते, तैरे, चले तो उस वस्तु के अनन्तर ठक् प्रत्यय लगाकर उस मनुष्य बोध होता है , जैसे—

---

१ तत आगत ।४।३।७४।

२ ठगायस्थानेभ्य ।४।३।७५।

३ विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यो वुञ् ।४।३।७७। ऋतष्ठञ् ।४।३।७८।

४ तेन दीव्यतिखनतिजयतिजितम् ।४।४।२। तरति । चरति ।४।४।५। ४।४।८।

(घ) संस्कृत भाषा में दो पद होते हैं—परस्मैपद और आत्मनेपद। परस्मैपद का सीधा अर्थ है "वह पद जो दूसरे के लिए हो" और आत्मनेपद का अर्थ है 'वह पद जो अपने लिए हो"। सम्भवतः ऐसी क्रियाएँ जिनका फल दूसरे के लिए हो परस्मैपद में होनी चाहिएँ और ऐसी जिनका फल अपने लिए हो आत्मनेपद में होनी चाहिएँ, जैसे—स पचति (वह पकाता है) यहाँ 'पचति' परस्मैपद की क्रिया है और इस से यह तात्पर्य निकलता है कि पकाने की क्रिया का जो फल होगा वह दूसरे के लिए होगा, पकाने वाले के लिए नहीं, यदि स पचते (वह पकाता है) कहा जाय जहाँ 'पचते' आत्मनेपद की क्रिया है तो इसका अर्थ होगा कि पकाने की क्रिया का फल पकाने वाले को मिलेगा। परन्तु क्रिया के रूपों को इस दृष्टि से प्रयोग करने का नियम केवल व्याकरणों में ही दिखाया गया है, संस्कृत के ग्रन्थकार प्रायः सभी इस नियम का उल्लंघन करते आए हैं। धातुएँ पदों के हिसाब से भी विभक्त हैं, कुछ परस्मैपद में ही होती हैं, कुछ आत्मनेपद में ही और कुछ दोनों में। इससे परस्मैपदी धातु, आत्मनेपदी धातु और उभयपदी धातु ये तीन विभाग धातुओं के होते हैं। कभी कभी विशेष दशा में कोई एक पद की धातु दूसरे पद की हो जाती है–इसका विचार आगे किया जायगा।

१४१–क्रिया बनाने के लिए धातुओं के रूप तीन वाच्यों में होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। इनको कभी कभी कर्त्तरि प्रयोग, कर्मणि प्रयोग और भावे प्रयोग भी कहते हैं। हिन्दी में भी इन तीनों प्रयोगों की प्रथा है, जैसे—मैं खाना खाता हूँ (अह

इसी[1] अर्थ में शरीर के अवयवों में तथा (दिश्, वर्ग, पूग, पक्ष, रहस्, उखा, साक्षिन्, आदि, अन्त, मेध, यूथ न्याय, वश, काल, मुख, जघन), इन शब्दों में यत् (य) जोड़ा जाता है—

दन्त्यम्, मुख्य, नासिक्य, दिश्य, पूग्य, वर्ग्य (पुरुष), पक्ष्य (राजा), रहस्य (मन्त्रम्), उख्यम्, साक्ष्यम्, आद्य (पुरुष) आद्य आदि, अन्त्य, मेध्य, यूथ्य, न्याय्य, वश्य काल्य, मुख्य (सेना आदि के अङ्ग के अर्थ में), जघन्य (नीच)। इनका लिङ्ग विशेष्य के अनुसार होगा।

इसी[2] अर्थ में कुछ अव्ययीभाव समासों के अनन्तर 'य्य (य) लगता है जैसे परिमुख भव = पारिमुख्यम्।

(ख) यदि[3] किसी स्थान में किसी मनुष्य का निवास (अथवा पूर्वजों का) हो और यह बतलाना हो कि यह अमुक स्थान निवासी है तो स्थानवाचक शब्द से अण् प्रत्यय लगता है, जैसे—

मथुराया निवास अभिजनो वाऽस्य = माथुर भाटनागर।

यदि[4] किसी देश को जनविशेष के निवास अथवा और किसी सम्बन्ध से बताना हो तो जातिवाची शब्द के अनन्तर अण् लगाते हैं, जैसे—

शिवीना विषयो देश = शैव देश (शिवि लोगों के रहने का देश)।

---

१ दिगादिभ्यो यत् शरीरावयवाच्च। ४। ३। ५४ ५५।

२ अव्ययीभावाच्च। ४। ३। ५९।

३ सोऽस्य निवास ४। ३। ८९। अभिजनश्च। ४। ३। ९०।

४ विषयो देशे। ४। २। ५२। तस्य निवास। ४। २। ६९।

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतन भूत का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात् इस काल के रूप ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जब क्रिया आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो, जैसे—'मैं आज पढ़ने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद संस्कृत में अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा। परोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न हुआ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है तो उस दशा में परोक्षभूत का प्रयोग न होगा, जैसे—'मैं पाठशाला गया', यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ "गया" का अनुवाद परोक्षभूत के रूप में न करके किसी और के रूप से करना होगा।[1] तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो अथवा बरसों पहले।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि स्वयं की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की अवस्था में किया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि पागल मनुष्य की क्रियाएँ समक्ष नहीं कही जातीं।

के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्राय किस्से कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है, जैसे —

कश्चिद्राजा प्रतिवसति स्म।

(७, ८) दोनों भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्वं जीव्याः शरदः शतम्। कभी कभी आशीर्वाद अथवा आकांक्षा प्रकट करने में आज्ञा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्वं जीव शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि वह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अहं नूनं तेन सह अगमिष्यम्) इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी २ भविष्य भी प्रयोग में आता है। यथा—यदि वह आएगा तो मैं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अहं तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाए जाते हैं।

परस्मैपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	सीत्	स्ताम्	सु
म० पु०	सी	स्तम्	स्त
उ० पु०	सम्	स्व	स्म

आत्मनेपद

	एकवचन	द्वि वचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्त	साताम्	सत
म० पु०	स्था	साथाम्	ध्वम्
उ० पु०	सि	स्वहि	स्महि

पञ्चम प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	इष्टाम्	इषु
म० पु०	ई	इष्टम्	इष्ट
उ० पु०	इषम्	इष्व	इष्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	इष्ट	इषाताम्	इषत
म० पु०	इष्ठा	इषाथाम्	इषध्वम्
उ० पु०	इषि	इष्वहि	इष्महि

छठी प्रकार के रूप केवल परस्मैपद में होते हैं और उसके

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया
। बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत
ौर सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतन
त का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात्
त काल के रूप ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जब
त्या आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो
से—'मैं आज पढ़ने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद संस्कृत
अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा।
रोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न
आ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है तो उस
गा में परोक्षभूत का प्रयोग न होगा, जैसे—'मैं पाठशाला गया',
हाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ "गया" का
नुवाद परोक्षभूत के रूप में न करके किसी और के रूप से
रना होगा[1]। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं
ोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो
थवा बरसों पहले।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

---

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि
य की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की अवस्था
किया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि
गल मनुष्य की क्रियाएँ समक्ष नहीं कही जातीं।

प्रत्यय पाँचवां प्रकार के ही हैं केवल उनके पूर्व स् और जोड़ दिया जाता है, सीत् आदि।

सातवाँ प्रकार के प्रत्यय ये हैं —

परस्मैपद

प्र० पु०	सत्	सताम्	सन्
म० पु०	स	सतम्	सत
उ० पु०	सम्	साव	साम

आत्मनेपद

प्र० पु०	सत	साताम्	सन्त
म० पु०	सथा	साथाम्	सध्वम्
उ० पु०	सि	सावहि	सामहि

सात प्रकार के सामान्यभूत के रूप कौन और किस धातु के होते हैं, यह प्रवेशिका व्याकरण में बताना कठिन है। गण विशेषों की मुख्य २ धातुओं के जो रूप होते हैं वे आगे दिखा दिये गये हैं।

(ज) अनद्यतनभविष्य (लुट्)

परस्मैपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तार
म० पु०	तासि	तास्थ	तास्थ
उ० पु०	तास्मि	तास्व	तास्म

के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्राय किस्से कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है, जैसे —

कश्चिद्राजा प्रतिवसति स्म।

(७, ८) दोनों भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य-भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा मे नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्व जीव्या शरदा शतम्। कभी कभी आशीर्वाद अथवा आकांक्षा प्रकट करने को आज्ञा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्व जीव शरदा शतम्, जीवेम शरदा शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि वह आता तो म उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अह नून तेन सह अगमिष्यम्) इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी २ भविष्य भी प्रयोग में आता है। यथा—यदि वह आएगा तो मं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अह तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाए जाते हैं।

आत्मनेपद

प्र० पु०	ता	तारौ	तारः
म० पु०	तासे	तासाथे	ताध्वे
उ० पु०	ताहे	तास्वहे	तास्महे

धातुओं में ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। इनमें प्रथम पुरुष के रूप कर्तृवाचक ऋकारान्त दातृ आदि (४० ग) के रूप हैं और मध्यम तथा उत्तम पुरुष में प्रथमा एकवचन में अस् (होना) के वर्तमान काल के रूप जोड़ देने से निकल सकते हैं।

(भ) सामान्य भविष्य (लृट्)

परस्मैपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्यति	स्यतः	स्यन्ति
म० पु०	स्यसि	स्यथः	स्यथ
उ० पु०	स्यामि	स्यावः	स्यामः

आत्मनेपद

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्यते	स्येते	स्यन्ते
म० पु०	स्यसे	स्येथे	स्यध्वे
उ० पु०	स्ये	स्यावहे	स्यामहे

(४, ५, ६) तीन भूतकाल—संस्कृत में भूतकाल की क्रिया
बोध कराने के लिए तीन काल—अनद्यतनभूत, परोक्षभूत
और सामान्यभूत हैं। इनके प्रयोग में थोड़ा अन्तर है। अनद्यतन
का अर्थ है ऐसा भूतकाल जो आज न हुआ हो, अर्थात्
काल के रूप ऐसी दशा में प्रयोग में लाए जाने चाहिए जब
या आज समाप्त न हुई हो, कल या इससे पूर्व समाप्त हुई हो
जैसे—'मैं आज पढ़ने गया', यहाँ 'गया' शब्द का अनुवाद संस्कृत
अनद्यतनभूत की क्रिया से न होगा, किसी और से होगा।
परोक्षभूत का अर्थ है ऐसा अतीतकाल जो आँखों के सामने न
हुआ हो। यदि कोई क्रिया अपनी आँखों के सामने हुई है तो उस
दशा में परोक्षभूत का प्रयोग न होगा, जैसे—'मैं पाठशाला गया',
यहाँ जाने की क्रिया मेरे समक्ष हुई, इस लिए यहाँ "गया" का
अनुवाद परोक्षभूत के रूप से न करके किसी और के रूप से
करना होगा[१]। तीसरा भूतकाल अर्थात् सामान्यभूत सब कहीं
प्रयोग में लाया जा सकता है, चाहे क्रिया आज समाप्त हुई हो
अथवा बरसों पहले।

नोट—संस्कृत में एक साधारण भूतकाल वर्तमान काल की क्रिया

१ इस प्रकार परोक्षभूत का प्रयोग उत्तम पुरुष में होता ही नहीं, क्योंकि
अपने की हुई क्रिया परोक्ष नहीं हो सकती। परन्तु पागलपन की अवस्था
में किया हुआ काम वस्तुतः परोक्षभूत से भी वर्णित हो सकता है, क्योंकि
पागल मनुष्य की क्रियाएँ समक्ष नहीं कही जातीं।

(ट) आशीर्लिङ्

परस्मैपद

प्र० पु०	यात्	यास्ताम्	यासु
म० पु०	या	यास्तम्	यास्त
उ० पु०	यासम्	यास्व	यास्म

आत्मनेपद

प्र० पु०	सीष्ट	सीयास्ताम्	सीरन्
म० पु०	सीष्ठा	सीयास्थाम्	सीध्वम्
उ० पु०	सीय	सीवहि	सीमहि

(ठ) क्रियातिपत्ति (लृङ्)

परस्मैपद

प्र० पु०	स्यत्	स्यताम्	स्यन्
म० पु०	स्य	स्यतम्	स्यत
उ० पु०	स्यम्	स्याव	स्याम

आत्मनेपद

प्र० पु०	स्यत	स्येताम्	स्यन्त
म० पु०	स्यथा	स्येथाम्	स्यध्वम्
उ० पु०	स्ये	स्यावहि	स्यामहि

नोट१—इस प्रकार ऊपर दसों लकारों के प्रत्यय दिए गए हैं। इनमें अनद्यतनभूत, सामान्यभूत और क्रियातिपत्ति में धातु के पूर्व अ—औ

के अनन्तर 'स्म' शब्द जोड़ कर बनाया जाता है। यह प्राय किस्से कहानियों में वर्णन के काम में लाया जाता है, जैसे —

कश्चिद्राजा प्रतिवसति स्म।

(७, ८) दोनो भविष्यकाल—भविष्यकाल की क्रिया का बोध कराने के लिए दो काल हैं—अनद्यतनभविष्य और सामान्य भविष्य। इन में से पहले का प्रयोग ऐसी दशा में नहीं हो सकता जब क्रिया आज ही होने को हो। दूसरे का सब कहीं प्रयोग हो सकता है।

(९) आशीर्लिङ् का प्रयोग आशीर्वादात्मक होता है, जैसे—तुम सौ वर्ष तक जिओ—त्वं जीव्याः शरदः शतम्। कभी कभी आशीर्वाद अथवा आकांक्षा प्रकट करने को आज्ञा का अथवा विधि का भी प्रयोग होता है, जैसे—त्वं जीव शरदः शतम्, जीवेम शरदः शतम् इत्यादि।

(१०) क्रियातिपत्ति का प्रयोग ऐसे अवसर पर होता है जहाँ एक क्रिया का होना दूसरी क्रिया के होने पर निर्भर हो, जैसे—यदि वह आता तो मैं उसके साथ जाता (यदि स आगमिष्यत्तर्हि अहं नूनं तेन सह अगमिष्यम्) इस क्रियातिपत्ति के अर्थ में कभी २ भविष्य भी प्रयोग में आता है। यथा—यदि वह आएगा तो मैं उसके साथ जाऊँगा (यदि स आगमिष्यति तर्हि अहं तेन सह गमिष्यामि)। इसी प्रकार कभी वर्तमान और कभी आज्ञा के रूप भी काम में लाए जाते हैं।

आता है और परोक्षभूत में धातु द्वित्व (अभ्यस्त) कर दी जाती है। अभ्यास करने के नियम ये हैं —

धातु के प्रथम स्वर को दो बार लाते हैं (जैसे उख् का अभ्यस्त रूप उ उख्); यदि प्रथम स्वर के पूर्व में कोई व्यंजन हो तो उस व्यंजन सहित उस स्वर को लाते हैं (जैसे पत् से पपत्)। यदि आरंभ में संयुक्ताक्षर हो तो संयुक्ताक्षर के प्रथम व्यंजन के साथ स्वर आता है (जैसे प्रच्छ् से पप्रच्छ्), किन्तु यदि संयुक्ताक्षर के आदि में श्, ष्, स् में से कोई हो तो दूसरा अर्थात् श्, ष्, स् के बाद वाला ही व्यंजन साथ वाले स्वर के साथ आता है (जैसे स्पर्ध् से पस्पर्ध्)। अभ्यास में आने वाला अक्षर यदि पञ्चवर्गों का द्वितीय अथवा चतुर्थ हो तो क्रम से उसके स्थान पर प्रथम अथवा तृतीय आ जाते हैं (जैसे छिद् से चिच्छिद्, भुज् से बुभुज्)। कवर्गीय अक्षर का अभ्यास करना हो तो उसके जोड़ का चवर्गीय अक्षर लाना चाहिए (जैसे—कम् से चकम्, खन् = कखन = चखन्)। इसी प्रकार ह् के स्थान पर ज् (जैसे—हु से जुहु)। अभ्यास में दीर्घ स्वर का ह्रस्व (जैसे दा से ददा, नी से निनी), ऋ का अ (जैसे कृ से चकृ), ए अथवा ऐ का इ (जैसे सेव् से सिषेव्), और ओ अथवा औ का उ (जैसे गोप् से जुगोप्, ढौक् से डुढौक्) हो जाता है।

नोट२—दस लकारों में से वर्तमान, आज्ञा, विधि और अनद्यतभूत इनको सार्वधातुक कहते हैं और शेष छः को आर्धधातुक। सार्वधातुक लकारों के प्रत्यय जुड़ने के पूर्व धातुओं में प्रत्येक गण में अलग अलग क

इन दस लकारों के प्रत्यय परस्मैपद और आत्मनेपद दोनो में दिए जाते हैं। जो धातुएँ परस्मैपदी हैं उनमे परस्मैपद के प्रत्यय, जो आत्मनेपदी हैं उनमे आत्मनेपद के प्रत्यय तथा जो उभयपदी हैं उनमे परस्मैपद और आत्मनेपद दोनो के प्रत्यय जुड़ते हैं। प्रत्येक लकार मे तीन पुरुष और तीन वचन होते हैं। (देखिए नियम ४०)। हिन्दी में बहुधा क्रिया कर्तृवाच्य में कर्ता के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—राम जाता है, गौरी जाती है, राम गया, गौरी आई, राम जायगा, गौरी जायगी) तथा कर्मवाच्य में कर्म के लिङ्ग के अनुसार (जैसे—मुझसे किताब नहीं पढ़ी जाती, मुझ से अखबार नहीं पढ़ा जाता आदि) बदलती है परन्तु सस्कृत में क्रिया लिङ्ग के अनुसार नहीं बदलती (राम गच्छति या गौरी गच्छति , रामोऽगच्छत् या गौरी अगच्छत् रामो गमिष्यति या गौरी गमिष्यति , मया पुस्तिका न पठ्यते या मया समाचारपत्र न पठ्यते आदि)।

१४२—लकारों के प्रत्यय इस प्रकार हैं—

(क) वर्तमान काल (लट्)

परस्मैपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	ति	तस्	अन्ति
म० पु०	सि	थस्	थ
उ० पु०	मि	वस्	मस्

कार कर दिया जाता है—कभी २ धातु के रूप में कुछ परिवर्तन हो जाता (जैसे—गम् धातु का गच्छ हो जाता है, प्रच्छ् का पृच्छ्)। आर्धधातुकों यह विकार नहीं किया जाता (जैसे—गम् से सामान्यभूत में अगमत् ादि, प्रच्छ् से अप्राक्षीत् आदि)।

इस सोपान मे केवल कर्तृवाच्य के रूप दिये जारहे हैं। न्य वाच्यों का विचार अगले सोपान मे किया जायगा।

भ्वादिगण

१४३—भ्वादिगण की प्रथम धातु भू है, इस लिए इस गण का ह नाम पड़ा। दसों गणो मे यह प्रमुख है। धातुपाठ में इसको ०३५ धातुएँ गिनाई गई हैं, इस हिसाब से जितनी और ी गणों की धातुएँ मिलाकर हैं उन से कहीं अधिक इस एक गण हैं। सज्ञाओं मे जो महत्व अकारान्त शब्दों का है वही क्रिया ं भ्वादिगण का है।

इस गण की धातुओं के अनन्तर (प्रत्यय लगने के पूर्व) प् (अ) जोड़ दिया जाता है तथा धातु की उपधा का ह्रस्व वर अथवा धातु का अन्तिम स्वर गुणसन्धि (८) को प्राप्त ोता है, जैसे—भू धातु मे वर्तमान के प्रत्यय जोड़ने हों तो भू+ प् (अ)+ति=भ्+ऊ+अ+ति=भ्+ओ (गुण) +अ+ ति=भ्+अव्+अ+ति=भवति, रूप प्रथम पुरुष के एक वचन में नेगा। इसी प्रकार जि+शप्+ति=जि+अ+ति=ज्+इ+अ

आत्मनेपद

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	ते	इते	अन्ते
म० पु०	से	इथे	ध्वे
उ० पु०	इ	वहे	महे

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं:—

प्र० पु०	ते	आते	अते
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

(ख) आज्ञा (लोट्)

	एक वचन	द्वि वचन	बहु वचन
प्र० पु०	तु	ताम्	अन्तु
म० पु०	तु या तात्	तम्	त
उ० पु०	आनि	आव	आम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ताम्	इताम्	अन्ताम्
म० पु०	स्व	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ऊपर लिखे ही प्रत्यय लगते हैं केवल म० पु० एक

+ति=ज्+ए+अ+ति=ज्+अय्+अ + ति=जयति, इसी प्रकार नयति आदि। उपधाभूत ह्रस्वस्वर का गुण, जैसे—बुध्+शप्+ति=ब्+उ+ध्+ अ+ति=ब्+ओ +ध+अ + ति=बोधति। जिन धातुओं की उपधा में अथवा अन्त में अ होगा उन में गुणसन्धि करने से भी अ ही रहता है, यह नियम ८ से स्पष्ट ही है।

१४४—परस्मैपदी भू—होना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	भवति	भवत	भवन्ति
म० पु०	भवसि	भवथ	भवय
उ० पु०	भवामि	भवाव	भवाम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भवतु	भवताम्	भवन्तु
म० पु०	भव	भवतम्	भवत
उ० पु०	भवानि	भवाव	भवाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	भवेत्	भवेताम्	भवेयु
म० पु०	भवे	भवेतम्	भवेत
उ० पु०	भवेयम्	भवेव	भवेम

वचन में 'हि' जोड़ा जाता है। इन गणों में आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं —

प्र० पु०	ताम्	आताम्	अताम्
म० पु०	स्व	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	ऐ	आवहै	आमहै

(ग) विधिलिङ्

परस्मैपद

प्र० पु०	ईत्	ईताम्	ईयुः
म० पु०	ईः	ईतम्	ईत
उ० पु०	ईयम्	ईव	ईम

आत्मनेपद

प्र० पु०	ईत	ईयाताम्	ईरन्
म० पु०	ईथाः	ईयाथाम्	ईध्वम्
उ० पु०	ईय	ईवहि	ईमहि

नोट—दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त परस्मैपद में ये प्रत्यय लगते हैं —

प्र० पु०	यात्	याताम्	युः
म० पु०	याः	यातम्	यात
उ० पु०	याम्	याव	याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
म० पु०	अभवः	अभवतम्	अभवत
उ० पु०	अभवम्	अभवाव	अभवाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभूव	बभूवतु	बभूवु
म० पु०	बभूविथ	बभूवथु	बभूव
उ० पु०	बभूव	बभूविव	बभूविम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
म० पु०	अभू	अभूतम्	अभूत
उ० पु०	अभूवम्	अभूव	अभूम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	भविता	भवितारौ	भवितार
म० पु०	भवितासि	भवितास्थ	भवितास्थ
उ० पु०	भवितास्मि	भवितास्व	भवितास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भविष्यति	भविष्यत	भविष्यन्ति
म० पु०	भविष्यसि	भविष्यथ	भविष्यथ
उ० पु०	भविष्यामि	भविष्याव	भविष्याम

(घ) अनद्यतनभूत (लङ्)

परस्मैपद

प्र० पु०	त्	ताम्	अन्
म० पु०	स	तम्	त
उ० पु०	अम्	व	म

आत्मनेपद

प्र० पु०	त	इताम्	अन्त
म० पु०	थास्	इथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

नोट – दूसरे, तीसरे, पाँचवें, सातवें, आठवें और नवें गण की धातुओं के उपरान्त आत्मनेपद में ये प्रत्यय लगते हैं —

प्र० पु०	त	आताम्	अत
म० पु०	थास्	आथाम्	ध्वम्
उ० पु०	इ	वहि	महि

(च) परोक्षभूत (लिट्)

परस्मैपद

प्र० पु०	अ	अतुस्	उस्
म० पु०	थ	अथुस्	अ
उ० पु०	अ	व	म

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासु
म० पु०	भूया	भूयास्तम्	भूयास्त
उ० पु०	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म

क्रियातिपत्ति—लङ

प्र० पु०	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
म० पु०	अभविष्य	अभविष्यतम्	अभविष्यत
उ० पु०	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

१४५—भ्वादिगण की अन्य धातुओ के रुप—

परस्मैपदी, गम्—जाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम पुरुष	गच्छति	गच्छत	गच्छन्ति
मध्यम पुरुष	गच्छसि	गच्छथ	गच्छथ
उत्तम पुरुष	गच्छामि	गच्छाव	गच्छाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गच्छतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गच्छेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगच्छत्

परोक्षभूत—लिट्

प्रथम पुरुष	जगाम	जग्मतु	जग्मु

आत्मनेपद

प्र० पु०	ए	आते	इरे
म० पु०	से	आथे	ध्वे
उ० पु०	ए	वहे	महे

नोट—परोक्ष भूत के एक प्रकार के रूप इन प्रत्ययों को जोड कर बनते हैं। दूसरे प्रकार के रूप धातु में कृ, भू अथवा अस् के रूप जोड़ कर बनते हैं, इस दशा में धातु और इन रूपों के बीच में—आम्—जोड दिया जाता है। जिस पद की धातु होती है उसी पद के रूप जोडे जाते हैं जैसे—ईड् धातु से ईडाञ्चक्रे, ईडाम्बभूव, ईडामास आदि।

(छ) सामान्यभूत (लुङ्)

सामान्यभूत के रूप सस्कृत में सात प्रकार के होते हैं, कुछ किसी गण की धातुओं में लगते हैं कुछ किसी मे। इन सात प्रकार के प्रत्ययों मे भी कुछ भेद होता है। उदाहरणार्थ प्रथम प्रकार के सामान्यभूत के और अनद्यतनभूत के प्रत्ययों मे केवल प्र० पु० के बहुवचन में अन् के स्थान मे उस् हो जाता है। दूसरी प्रकार के सामान्यभूत के प्रत्यय ठीक अनद्यतनभूत के हैं केवल अ धातु और प्रययो के बीच में जोड लिया जाता है। तीसरी प्रकार के भी प्रत्यय अनद्यतनभूत के हैं, केवल प्रत्यय जोडने के पूर्व धातु को डबल (अभ्यस्त) करके अ जोडते हैं।

सामान्य भूत के चौथी प्रकार के प्रत्यय ये हैं—

मध्यम पुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जग्म
उत्तम पुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्रथम पुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
मध्यम पुरुष	अगम	अगमतम्	अगमत
उत्तम पुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्रथम पुरुष	गन्ता	गन्तारौ	गन्तार
मध्यम पुरुष	गन्तासि	गन्तास्थ	गन्तास्थ
उत्तम पुरुष	गन्तास्मि	गन्तास्व	गन्तास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथ	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्याव	गमिष्याम

आशीर्लिङ्

प्रथम पुरुष	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासु
मध्यम पुरुष	गम्या	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उत्तम पुरुष	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्रथम पुरुष	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
मध्यम पुरुष	अगमिष्य	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उत्तम पुरुष	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

परस्मैपदी—गै—गाना[1]

लट्

प्र० पु०	गायति	गायत	गायन्ति
म० पु०	गायसि	गायथ	गायथ
उ० पु०	गायामि	गायाव	गायाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	गायतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	गायेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अगायत्

लिट्

प्र० पु०	जगौ	जगतु	जगु
म० पु०	जगिथ, जगाथ	जगतु	जग
उ० पु०	जगौ	जगिव	जगिम

लुङ्

प्र० पु०	अगासीत्	अगासिष्टाम्	अगासिषु
म० पु०	अगासी	अगासिष्टम्	अगासिष्ट
उ० पु०	अगासिषम्	अगासिष्व	अगासिष्म

लुट्

प्र० पु०	गाता	गातारौ	गातार

1 ग्लै (प०, क्षीण होना), ध्यै (प०, ध्यान करना), म्लै (प०, मुरझाना) के रूप गै की तरह होते हैं।

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार
म० पु०	नेतासि	नेतास्थ	नेतास्थ
उ० पु०	नेतास्मि	नेतास्व	नेतास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यति	नेष्यत	नेष्यन्ति
म० पु०	नेष्यसि	नेष्यथ	नेष्यथ
उ० पु०	नेष्यामि	नेष्याव	नेष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासु
म० पु०	नीया	नीयास्तम्	नीयास्त
उ० पु०	नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
म० पु०	अनेष्य	अनेष्यतम्	अनेष्यत
उ० पु०	अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयते	नयेते	नयन्ते
म० पु०	नयसे	नयेथे	नयध्वे
उ० पु०	नये	नयावहे	नयामहे

मध्यम पुरुष	जगमिथ, जगन्थ	जग्मथु	जग्म
उत्तम पुरुष	जगाम, जगम	जग्मिव	जग्मिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्रथम पुरुष	अगमत्	अगमताम्	अगमन्
मध्यम पुरुष	अगम	अगमतम्	अगमत
उत्तम पुरुष	अगमम्	अगमाव	अगमाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्रथम पुरुष	गन्ता	गन्तारौ	गन्तार
मध्यम पुरुष	गन्तासि	गन्तास्थ	गन्तास्थ
उत्तम पुरुष	गन्तास्मि	गन्तास्व	गन्तास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्रथम पुरुष	गमिष्यति	गमिष्यत	गमिष्यन्ति
मध्यम पुरुष	गमिष्यसि	गमिष्यथ	गमिष्यथ
उत्तम पुरुष	गमिष्यामि	गमिष्याव	गमिष्याम

आशीर्लिङ्

प्रथम पुरुष	गम्यात्	गम्यास्ताम्	गम्यासु
मध्यम पुरुष	गम्या	गम्यास्तम्	गम्यास्त
उत्तम पुरुष	गम्यासम्	गम्यास्व	गम्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्रथम पुरुष	अगमिष्यत्	अगमिष्यताम्	अगमिष्यन्
मध्यम पुरुष	अगमिष्य	अगमिष्यतम्	अगमिष्यत
उत्तम पुरुष	अगमिष्यम्	अगमिष्याव	अगमिष्याम

लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निन्ये	निन्याते	निन्यिरे
म० पु०	निन्यिषे	निन्याथे	निन्यिध्व,-ढ्वे
उ० पु०	निन्ये	निन्यिवहे	निन्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनेष्ट	अनेषाताम्	अनेषत
म० पु०	अनेष्ठा	अनेषाथाम्	अनेढ्वम्
उ० पु०	अनेषि	अनेष्वहि	अनेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	नेता	नेतारौ	नेतार
म० पु०	नेतासे	नेतासाथे	नेताध्वे
उ० पु०	नेताहे	नेतास्वहे	नेतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	नेष्यते	नेष्येते	नेष्यन्ते
म० पु०	नेष्यसे	नेष्येथे	नेष्यध्वे
उ० पु०	नेष्ये	नेष्यावहे	नेष्यामहे

आशीर्लिङ

प्र० पु०	नेषीष्ट	नेषीयास्ताम्	नेषीरन्

लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतु	जिग्यु
म० पु०	जिगयिथ जिगेथ	जिग्यथु	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

लुङ्

प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषु
म० पु०	अजैषी	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० पु०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

लुट

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतार
म० पु०	जेतासि	जेतास्थ	जेतास्थ
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्व	जेतास्म

लृट्

प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यत	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथ	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्याव	जेष्याम

आशी०

प्र० पु०	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासु
म० पु०	जीया	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

म० पु०	नेषीष्ठा	नेषीयास्थाम्	नेषीध्वम्
उ० पु०	नेषीय	नेषीवहि	नेषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अनेष्यत	अनेष्येताम्	अनेष्यन्त
म० पु०	अनेष्यथा	अनेष्येथाम्	अनेष्यध्वम्
उ० पु०	अनेष्ये	अनेष्यावहि	अनेष्यामहि

परस्मैपदी

पठ्—पढ़ना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	पठति	पठतः	पठन्ति
म० पु०	पठसि	पठथः	पठथ
उ० पु०	पठामि	पठावः	पठामः
लोट्	प्र० पु०		पठतु, पठतात्

विधिलिङ्

प्र० पु०	पठेत्	पठेताम्	पठेयुः
म० पु०	पठेः	पठेतम्	पठेत
उ० पु०	पठेयम्	पठेव	पठेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अपठत्	अपठताम्	अपठन्
म० पु०	अपठः	अपठतम्	अपठत
उ० पु०	अपठम्	अपठाव	अपठाम

म० पु०	गातासि	गातास्थ	गातास्थ
उ० पु०	गातास्मि	गातास्व	गातास्म.

लृट्

प्र० पु०	गास्यति	गास्यत	गास्यन्ति
म० पु०	गास्यसि	गास्यथ	गास्यथ
उ० पु०	गास्यामि	गास्याव	गास्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	गेयात्	गेयास्ताम्	गेयासु
म० पु०	गेया	गेयास्तम्	गेयास्त
उ० पु०	गेयासम्	गेयास्व	गेयास्म

लङ्—अगास्यत्।

परस्मैपदी

जि—जीतना

लट्

प्र० पु०	जयति	जयत	जयन्ति
म० पु०	जयसि	जयथ	जयथ
उ० पु०	जयामि	जयाव	जयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	जयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	जयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अजयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पपाठ	पेठतु	पेठु
म० पु०	पेठिथ	पेठथु	पेठ
उ० पु०	पपाठ, पपठ	पेठिव	पेठिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अपाठीत्	अपाठिष्टाम्	अपाठिषु
म० पु०	अपाठी	अपाठिष्टम्	अपाठिष्ट
उ० पु०	अपाठिषम्	अपाठिष्व	अपाठिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	पठिता	पठितारौ	पठितार.
म० पु०	पठितासि	पठितास्थ	पठितास्थ
उ० पु०	पठितास्मि	पठितास्व	पठितास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	पठिष्यति	पठिष्यत	पठिष्यन्ति
म० पु०	पठिष्यसि	पठिष्यथ	पठिष्यथ
उ० पु०	पठिष्यामि	पठिष्याव	पठिष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	पठ्यात्	पठ्यास्ताम्	पठ्यासु
म० पु०	पठ्या	पठ्यास्तम्	पठ्यास्त
उ० पु०	पठ्यासम्	पठ्यास्व	पठ्यास्म

लिट्

प्र० पु०	जिगाय	जिग्यतु	जिग्युः
म० पु०	जिगयिथ, जिगेथ	जिग्यथु	जिग्य
उ० पु०	जिगाय, जिगय	जिग्यिव	जिग्यिम

लुङ्

प्र० पु०	अजैषीत्	अजैष्टाम्	अजैषुः
म० पु०	अजैषीः	अजैष्टम्	अजैष्ट
उ० पु०	अजैषम्	अजैष्व	अजैष्म

लुट्

प्र० पु०	जेता	जेतारौ	जेतारः
म० पु०	जेतासि	जेतास्थः	जेतास्थ
उ० पु०	जेतास्मि	जेतास्वः	जेतास्मः

लृट्

प्र० पु०	जेष्यति	जेष्यतः	जेष्यन्ति
म० पु०	जेष्यसि	जेष्यथः	जेष्यथ
उ० पु०	जेष्यामि	जेष्यावः	जेष्यामः

आशी०

प्र० पु०	जीयात्	जीयास्ताम्	जीयासुः
म० पु०	जीयाः	जीयास्तम्	जीयास्त
उ० पु०	जीयासम्	जीयास्व	जीयास्म

लङ्

प्र० पु०	अजेष्यत्	अजेष्यताम्	अजेष्यन्
म० पु०	अजेष्य	अजेष्यतम्	अजेष्यत
उ० पु०	अजेष्यम्	अजेष्याव	अजेष्याम

परस्मैपदी

दृश्—देखना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	पश्यति	पश्यत	पश्यन्ति
म० पु०	पश्यसि	पश्यथ	पश्यथ
उ० पु०	पश्यामि	पश्याव	पश्याम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	पश्यतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	पश्येत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अपश्यत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददर्श	ददृशतु	ददृशु
म० पु०	ददर्शिथ, दद्रष्ठ	ददृशथु	ददृश
उ० पु०	ददर्श	ददृशिव	ददृशिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अदर्शत् { अद्राक्षीत्	{ अदर्शताम् { अद्राष्टाम्	{ अदर्शन् { अद्राक्षु

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	लब्धा	लब्धारौ	लब्धारः
म० पु०	लब्धासे	लब्धासाथे	लब्धाध्वे
उ० पु०	लब्धाहे	लब्धास्वहे	लब्धास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	लप्स्यते	लप्स्येते	लप्स्यन्ते
म० पु०	लप्स्यसे	लप्स्येथे	लप्स्यध्वे
उ० पु०	लप्स्ये	लप्स्यावहे	लप्स्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	लप्सीष्ट	लप्सीयास्ताम्	लप्सीरन्
म० पु०	लप्सीष्ठाः	लप्सीयास्थाम्	लप्सीध्वम्
उ० पु०	लप्सीय	लप्सीवहि	लप्सीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अलप्स्यत	अलप्स्येताम्	अलप्स्यन्त
म० पु०	अलप्स्यथाः	अलप्स्येथाम्	अलप्स्यध्वम्
उ० पु०	अलप्स्ये	अलप्स्यावहि	अलप्स्यामहि

आत्मनेपदी

वृत्—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वर्तते	वर्तेते	वर्तन्ते
म० पु०	वर्तसे	वर्तेथे	वर्तध्वे
उ० पु०	वर्ते	वर्तावहे	वर्तामहे

म० पु०	अदर्श / अद्राक्षी	अदर्शतम् / अद्राष्टम्	अदर्शत / अद्राष्ट
उ० पु०	अदर्शम् / अद्राक्षम्	अदर्शाव / अद्राक्ष्व	अदर्शाम / अद्राक्ष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	द्रष्टा	द्रष्टारौ	द्रष्टारः
म० पु०	द्रष्टासि	द्रष्टास्थः	द्रष्टास्थ
उ० पु०	द्रष्टास्मि	द्रष्टास्वः	द्रष्टास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	द्रक्ष्यति	द्रक्ष्यतः	द्रक्ष्यन्ति
म० पु०	द्रक्ष्यसि	द्रक्ष्यथः	द्रक्ष्यथ
उ० पु०	द्रक्ष्यामि	द्रक्ष्यावः	द्रक्ष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दृश्यात्	दृश्यास्ताम्	दृश्यासुः
म० पु०	दृश्याः	दृश्यास्तम्	दृश्यास्त
उ० पु०	दृश्यासम्	दृश्यास्व	दृश्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अद्रक्ष्यत्	अद्रक्ष्यताम्	अद्रक्ष्यन्
म० पु०	अद्रक्ष्यः	अद्रक्ष्यतम्	अद्रक्ष्यत
उ० पु०	अद्रक्ष्यम्	अद्रक्ष्याव	अद्रक्ष्याम

लोट	प्र० पु०	एकवचन	वर्तताम्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	वर्तेत
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अवर्तत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ववृते	ववृताते	ववृतिरे
म० पु०	ववृतिषे	ववृताथे	ववृतिध्वे
उ० पु०	ववृते	ववृतिवहे	ववृतिमहे

सामान्यभूत—लुङ्[1]

प्र० पु०	{ अवर्तिष्ट { अवृतत्	{ अवर्तिषाताम् { अवृतताम्	{ अवर्तिषत { अवृतन्
म० पु०	{ अवर्तिष्ठा { अवृत	{ अवर्तिषाथाम् { अवृततम्	{ अवर्तिध्वम्-ढ्वम् { अवृतत
उ० पु०	{ अवर्तिषि { अवृतम्	{ अवर्तिष्वहि { अवृताव	{ अवर्तिष्महि { अवृताम
लुट्	प्र० पु०	एकवचन	वर्तिता

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	वर्तिष्यते	वर्तिष्येते	वर्तिष्यन्ते
म० पु०	वर्तिष्यसे	वर्तिष्येथे	वर्तिष्यध्वे
उ० पु०	वर्तिष्ये	वर्तिष्यावहे	वर्तिष्यामहे

अथवा

प्र० पु०	वर्त्स्यति	वर्त्स्यत	वर्त्स्यन्ति
म० पु०	वर्त्स्यसि	वर्त्स्यथ	वर्त्स्यथ

1 लुङ्, लृट् तथा लृङ् में यह परस्मैपदी भी हो जाती है।

उभयपदी धृ—धरना[1]

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	धरति	धरत	धरन्ति
म० पु०	धरसि	धरथ	धरथ
उ० पु०	धरामि	धराव	धराम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	धरतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	धरेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अधरत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधार	दध्रतु	दध्रु
म० पु०	दधर्थ	दध्रथु	दध्र
उ० पु०	दधार, दधर	दध्रिव	दध्रिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधार्षीत्	अधार्ष्टाम्	अधार्षु
म० पु०	अधार्षी	अधार्ष्टम्	अधार्ष्ट
उ० पु०	अधार्षम्	अधार्ष्व	अधार्ष्म

---

1 तृ (उ०, पार करना), भृ (उ०, भरण पोषण करना), मृ (प०, चलना,), स्मृ (प०, स्मरण करना), हृ (उ०, हरण करना) के रूप धृ के समान होते हैं।

उ० पु०	वर्त्स्यामि	वर्त्स्याव	वर्त्स्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वर्तिषीष्ट	वर्तिषीयास्ताम्	वर्तिषीरन्
म० पु०	वर्तिषीष्ठा	वर्तिषीयास्थाम्	वर्तिषीध्वम्
उ० पु०	वर्तिषीय	वर्तिषीवहि	वर्तिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवर्तिष्यत	अवर्तिष्येताम्	अवर्तिष्यन्त
म० पु०	अवर्तिष्यथा	अवर्तिष्येथाम्	अवर्तिष्यध्व
उ० पु०	अवर्तिष्ये	अवर्तिष्यावहि	अवर्तिष्याम

अथवा

प्र० पु०	अवर्त्स्यत्	अवर्त्स्यताम्	अवर्त्स्यन्
म० पु०	अवर्त्स्यः	अवर्त्स्यतम्	अवर्त्स्यत
उ० पु०	अवर्त्स्यम्	अवर्त्स्याव	अवर्त्स्याम

उभयपदी

श्रि—सहारा लेना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	श्रयति	श्रयत	श्रयन्ति
म० पु०	श्रयसि	श्रयथ	श्रयथ
उ० पु०	श्रयामि	श्रयाव	श्रयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयतु
विधि	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत्

अनद्यतनभविष्य—लुट्

नेता	नेतारौ	नेतारः
नेतासि	नेतास्थः	नेतास्थ
नेतास्मि	नेतास्वः	नेतास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

नेष्यति	नेष्यतः	नेष्यन्ति
नेष्यसि	नेष्यथः	नेष्यथ
नेष्यामि	नेष्यावः	नेष्यामः

आशीर्लिङ्

नीयात्	नीयास्ताम्	नीयासुः
नीयाः	नीयास्तम्	नीयास्त
नीयासम्	नीयास्व	नीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

अनेष्यत्	अनेष्यताम्	अनेष्यन्
अनेष्यः	अनेष्यतम्	अनेष्यत
अनेष्यम्	अनेष्याव	अनेष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

नयते	नयेते	नयन्ते
नयसे	नयेथे	नयध्वे
नये	नयावहे	नयामहे

इ	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत्
	परोक्षभूत—लिट्		
प्र० पु०	शिश्राय	शिश्रियतु	शिश्रियु
म० पु०	शिश्रयिथ	शिश्रियथु	शिश्रिय
उ० पु०	शिश्राय, शिश्रय	शिश्रियिव	शिश्रियिम
	सामान्यभूत—लुङ्		
प्र० पु०	अशिश्रियत्	अशिश्रियताम्	अशिश्रियन्
म० पु०	अशिश्रिय	अशिश्रियतम्	अशिश्रियत
उ० पु०	अशिश्रियम्	अशिश्रियाव	अशिश्रियाम
	अनद्यतनभविष्य—लुट		
प्र० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितार
म० पु०	श्रयितासि	श्रयितास्थ	श्रयितास्थ
उ० पु०	श्रयितास्मि	श्रयितास्व	श्रयितास्म
	सामान्यभविष्य—लृट्		
प्र० पु०	श्रयिष्यति	श्रयिष्यत	श्रयिष्यन्ति
म० पु०	श्रयिष्यसि	श्रयिष्यथ	श्रयिष्यथ
उ० पु०	श्रयिष्यामि	श्रयिष्याव	श्रयिष्याम
	आशीर्लिट्		
प्र० पु०	श्रीयात्	श्रीयास्ताम्	श्रीयासु
म० पु०	श्रीया	श्रीयास्तम्	श्रीयास्त
उ० पु०	श्रीयासम्	श्रीयास्व	श्रीयास्म

लुट्—धर्ता	धर्तारौ	धर्तार । धर्तासे	धर्तासाथे ।	
लृट्—			धरिष्यते	
आशी०—			धृषीष्ट	

उभयपदी नी (नय्)—ले जाना ।

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	नयति	नयत	नयन्ति
म० पु०	नयसि	नयथ	नयथ
उ० पु०	नयामि	नयाव	नयाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	नयतु, नयतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	नयेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अनयत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	निनाय	निन्यतु	निन्युः
म० पु०	निनयिथ, निनेथ	निन्यथु	निन्य
उ० पु०	निनाय, निनय	निन्यिव	निन्यिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अनैषीत्	अनैष्टाम्	अनैषु
म० पु०	अनैषी	अनैष्टम्	अनैष्ट
उ० पु०	अनैषम्	अनैष्व	अनैष्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अश्रयिष्यत्	अश्रयिष्यताम्	अश्रयिष्यन्
म० पु०	अश्रयिष्य	अश्रयिष्यतम्	अश्रयिष्यत
उ० पु०	अश्रयिष्यम्	अश्रयिष्याव	अश्रयिष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	श्रयते	श्रयेते	श्रयन्ते
म० पु०	श्रयसे	श्रयेथे	श्रयध्वे
उ० पु०	श्रये	श्रयावहे	श्रयामहे
लोट	प्र० पु०	एकवचन	श्रयताम्
लिङ्	प्र० पु०	एकवचन	श्रयेत
लङ	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्रिये	शिश्रियाते	शिश्रियिरे
म० पु०	शिश्रियिषे	शिश्रियाथे	शिश्रियिध्वे,-ढ्वे
उ० पु०	शिश्रिये	शिश्रियिवहे	शिश्रियिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिश्रियत	अशिश्रियेताम्	अशिश्रियन्त
म० पु०	अशिश्रियथाः	अशिश्रियेथाम्	अशिश्रियध्वम्
उ० पु०	अशिश्रिये	अशिश्रियावहि	अशिश्रियामहि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

० पु०	श्रयिता	श्रयितारौ	श्रयितार
० पु०	श्रयितासे	श्रयितासाथे	श्रयिताध्वे
० पु०	श्रयिताहे	श्रयितास्वहे	श्रयितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

० पु०	श्रयिष्यते	श्रयिष्येते	श्रयिष्यन्ते
० पु०	श्रयिष्यसे	श्रयिष्येथे	श्रयिष्यध्वे
० पु०	श्रयिष्ये	श्रयिष्यावहे	श्रयिष्यामहे
ाशी०	प्र० पु०	एकवचन	श्रयिषीष्ट
ृङ्	प्र० पु०	एकवचन	अश्रयिष्यत

परस्मैपदी

श्रु—सुनना

वर्तमान—लट्

० पु०	शृणोति	शृणुत	शृण्वन्ति
० पु०	शृणोषि	शृणुथ	शृणुथ
० पु०	शृणोमि	शृणुव , शृण्व	शृणुम , शृण्म

आज्ञा—लोट्

० पु०	शृणोतु	शृणुताम्	शृण्वन्तु
० पु०	शृणु	शृणुतम्	शृणुत
० पु०	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम

१ (उ०)—जानना। बोधति, बोधते। लिट्—बुबोध बुबुधे। लुङ्—अबुधत् अबुधताम् अबुधन्। अबोधीत् अबोधिष्टाम् अबोधिषुः। अबोधिष्ट अबोधिषाताम् अबोधिषत। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यति, बोधिष्यते। आशी०—बुध्यात्, बोधिषीष्ट।

ज् (उ०)—सेवा करना। भजति भजते। लिट्—बभाज भेजतुः भेजुः। भेजिथ बभक्थ भेजथुः भेज। बभाज बभज भेजिव भेजिम। भेजे भेजाते भेजिरे। भेजिषे भेजाथे भेजिध्वे। भेजे भेजिवहे भेजिमहे। लुङ्—अभाक्षीत् अभाक्ताम् अभाक्षुः। अभाक्षीः अभाक्तम् अभाक्त। अभाक्षम् अभाक्ष्व अभाक्ष्म। अभक्त अभक्षाताम् अभक्षत। अभक्थाः अभक्षाथाम्। अभग्ध्वम्। अभक्षि अभक्ष्वहि अभक्ष्महि। लुट्—भक्ता। लृट्—भक्ष्यति भक्ष्यते। आशी०—भज्यात् भक्षीष्ट।

भाष् (आ०)—बोलना। भाषते भाषेते भाषन्ते। लिट्—बभाषे बभाषाते बभाषिरे। बभाषिषे बभाषाथे बभाषिध्वे। बभाषे बभाषिवहे बभाषिमहे। लुङ्—अभाषिष्ट अभाषिषाताम् अभाषिषत। अभाषिष्ठाः अभाषिषाथाम् अभाषिढ्वम्। अभाषिषि अभाषिष्वहि अभाषिष्महि। लुट्—भाषिता। लृट्—भाषिष्यते। आशी०—भाषिषीष्ट।

---

१ यह दिवादिगणी भी है। वहाँ यह आत्मनेपद होती है और बुध्यते रूप चलता है।

विधिलिङ्

प्र० पु०	शृणुयात्	शृणुयाताम्	शृणुयु
म० पु०	शृणुया	शृणुयातम्	शृणुयात
उ० पु०	शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

अनद्यनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशृणोत्	अशृणुताम्	अशृण्वन्
म० पु०	अशृणो	अशृणुतम्	अशृणुत
उ० पु०	अशृणवम्	अशृणुव, अशृण्व	अशृणुम, अशृण्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शुश्राव	शुश्रुवतु	शुश्रुवु
म० पु०	शुश्रोथ	शुश्रुवथु	शुश्रुव
उ० पु०	शुश्राव, शुश्रव	शुश्रुव	शुश्रुम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अश्रौषीत्	अश्रौष्टाम्	अश्रौषु
म० पु०	अश्रौषी	अश्रौष्टम्	अश्रौष्ट
उ० पु०	अश्रौषम्	अश्रौष्व	अश्रौष्म
लुट् —	श्रोता	श्रोतारौ	श्रोतार
लृट् —	श्रोष्यति	श्रोष्यत	श्रोष्यन्ति
आशी०—	श्रूयात्	श्रूयास्ताम्	श्रूयासु
लृङ् —	अश्रोष्यत्	अश्रोष्यताम्	अश्रोष्यन्

भिक्ष् (आ०)—भीख माँगना । भिक्षते । लिट्—बिभिक्षे बिभिक्षाते बिभिक्षिरे । बिभिक्षिषे बिभिक्षाथे बिभिक्षिध्वे । बिभिक्षे बिभिक्षिवहे बिभिक्षिमहे । लुङ्—अभिक्षिष्ट अभिक्षिषाताम् अभिक्षिषत । लुट् भिक्षिता । लृट्—भिक्षिष्यते । आशी०—भिक्षिषीष्ट ।

भूष्[1] (प०)—सजाना । भूषति । लिट्—बुभूष बुभूषतु बुभूषु । लुङ्—अभूषीत् अभूषिष्टाम् अभूषिषु । लुट्—भूषिता । लृट्—भूषिष्यति । आशी०—भूष्यात् भूष्यास्ताम् भूष्यासु ।

भृ[2] (उ०)—भरना या पालना पोसना । भरति भरते । लिट्—बभार बभ्रतु बभ्रु । बभर्थ बभ्रथु बभ्र । बभार बभर बभृव बभृम । बभ्रे बभ्राते बभ्रिरे । बभृषे बभ्राथे बभृध्वे । बभ्रे बभृवहे बभृमहे । लुङ्—अभार्षीत् अभार्ष्टाम् अभार्षु । अभार्षी अभार्ष्टम् अभार्ष्ट । अभार्षम् अभार्ष्व अभार्ष्म । अभृत अभृषाताम् अभृषत । अभृथा अभृषाथाम् अभृढ्वम् । अभृषि अभृष्वहि अभृष्महि । लुट्—भर्ता । लृट्—भरिष्यति भरिष्यते । आशी०—भ्रियात्, भृषीष्ट ।

---

१ यह धातु चुरादिगणी भी है। वहाँ यह उभयपदी है । भूषयति, भूषयते रूप होते हैं ।

२ यह धातु जुहोत्यादिगणी भी है, वहाँ इसके रूप बिभर्ति, बिभृत बिभ्रति, इत्यादि होते हैं ।

परस्मैपदी

स्था—ठहरना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तिष्ठति	तिष्ठत	तिष्ठन्ति
म० पु०	तिष्ठसि	तिष्ठथ	तिष्ठथ
उ० पु०	तिष्ठामि	तिष्ठाव	तिष्ठाम
लोट्	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठतु, तिष्ठतात्
विधि	प्र० पु०	एकवचन	तिष्ठेत्
लङ्	प्र० पु०	एकवचन	अतिष्ठत्

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तस्थौ	तस्थतु	तस्थु
म० पु०	तस्थिथ, तस्थाथ	तस्थथु	तस्थ
उ० पु०	तस्थौ	तस्थिव	तस्थिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्थात्	अस्थाताम्	अस्थु
म० पु०	अस्था	अस्थातम्	अस्थात
उ० पु०	अस्थाम्	अस्थाव	अस्थाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	स्थाता	स्थातारौ	स्थातार
म० पु०	स्थातासि	स्थातास्थ	स्थातास्थ
उ० पु०	स्थातास्मि	स्थातास्व	स्थातास्म

(आ०)—गिरना । भ्रशते । लिट—बभ्रशे । लुट्—अभ्रशत्
अभ्रशताम् अभ्रशन् तथा अभ्रशिष्ट अभ्रशिषाताम् अभ्रशिषत ।
लुट्—भ्रशिता । लृट्—भ्रशिष्यते । आशी०—भ्रशिषीष्ट ।

(१) यह दिवादिगणी भी है । वहाँ यह परस्मैपदी होती है (भ्रश्यति)

(२) भ्वादिगण में लुट् लकार में इसके रूप परस्मैपद तथा
मनेपद दोनों में चलते हैं ।

(प०)—भ्रमण करना । भ्रमति । लिट्—बभ्राम भ्रेमतु भ्रेमु ।
भ्रेमिथ भ्रेमथु भ्रेम । बभ्राम-बभ्रम भ्रेमिव भ्रेमिम तथा बभ्राम
बभ्रमतु बभ्रमु । बभ्रमिथ बभ्रमथु बभ्रम । बभ्राम बभ्रम
बभ्रमिव बभ्रमिम । लुङ्—अभ्रमीत् । लुट्—भ्रमिता । लृट्—
भ्रमिष्यति । आशी०—भ्रम्यात् ।

(आ०)—गिरना । भ्रशते । लिट्—बभ्रश । लुङ्—अभ्रशत अभ्र
शिष्ट। लुट्—भ्रशिता। लृट्—भ्रशिष्यते। आशी०—भ्रशिषीष्ट।

(प०)—मथना । मथति। लिट्—ममाथ। लुङ्—अमथीत् । लुट्—
मथिता । लृट्—मथिष्यति । आशी०—मथ्यात् ।

(प०) —मथना। मन्थति । लिट्—ममन्थ । लुङ्—अमन्थीत् ।
लुट्—मन्थिता । लृट्—मन्थिष्यति । आशी० मथ्यात् ।

---

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर लट्, लोट्, विधि, लङ् तथा
में भेद पड़ जाता है ।

२ यह क्र्यादिगणी भी है । यहाँ मथ्नाति, मथ्नीति, मथ्नन्ति इत्यादि
होते हैं ।

सामान्यभविष्य – लृट्

प्र० पु०	स्थास्यति	स्थास्यत	स्थास्यन्ति
म० पु०	स्थास्यसि	स्थास्यथ	स्थास्यथ
उ० पु०	स्थास्यामि	स्थास्याव	स्थास्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्थेयात्	स्थेयास्ताम्	स्थेयासु
म० पु०	स्थेया	स्थेयास्तम्	स्थेयास्त
उ० पु०	स्थेयासम्	स्थेयास्व	स्थेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अस्थास्यत्	अस्थास्यताम्	अस्थास्यन्
म० पु०	अस्थास्य	अस्थास्यतम्	अस्थास्यत
उ० पु०	अस्थास्यम्	अस्थास्याव	अस्थास्याम

१५६—भ्वादिगण की मुख्य धातुओं की सूची और रूपों का दिग्दर्शन—

क्रन्द् (प०)—रोना । क्रन्दति । लिट्—चक्रन्द चक्रन्दतु चक्रन्दु । चक्रन्दिथ । लुङ्—अक्रन्दीत् अक्रन्दिष्टाम् अक्रन्दिषु । अक्रन्दी अक्रन्दिष्टम् अक्रन्दिष्ट । अक्रन्दिषम् अक्रन्दिष्व अक्रन्दिष्म । लुट्—क्रन्दिता । लृट्—क्रन्दिष्यति । आशी०—क्रन्द्यात् । लृङ्—अक्रन्दिष्यत् ।

क्रीड् (प०)—खेलना । क्रीडति । लोट्—क्रीडतु । विधि—क्रीडेत् । लङ्—अक्रीडत् अक्रीडताम् अक्रीडन् । लिट्—चिक्रीड चिक्री

मुद् (आ०) — प्रसन्न होना । मोदते । लिट्—मुमुदे । लुङ्
लुट्—मोदिता । लृट्—मोदिष्यते । आशी०—मोदिषीष्ट ।

यज्—(उ०)—यज्ञ करना, देवता की पूजा करना, संग करना या दान
यजति, यजते ।

लिट्—इयाज	ईजतुः	ईजुः
{ इयजिथ / इयष्ठ	ईजथुः	ईज
{ इयाज / इयज	ईजिव	ईजिम
ईजे	ईजाते	ईजिरे
ईजिषे	ईजाथे	ईजिध्वे
ईजे	ईजिवहे	ईजिमहे

लुङ्—परस्मैपद

अयाक्षीत्	अयाष्टाम्	अयाक्षुः
अयाक्षीः	अयाष्टम्	अयाष्ट
अयाक्षम्	अयाक्ष्व	अयाक्ष्म

लुङ्—आत्मनेपद

अयष्ट	अयक्षाताम्	अयक्षत

लुट्—यष्टा यष्टारौ यष्टारः । लृट्—यक्ष्यति यक्ष्यते । आशी०
इज्यात्, यक्षीष्ट ।

यत् (आ०)—प्रयत्न करना । यतते । लिट्—येते येताते येतिरे । ये

डतु । चिक्रीडु । चिक्रीडिथ चिक्रीडथु चिक्रीड । चिक्रीड चिक्रीडिव चिक्रीडिम । लुङ्—अक्रीडीत्, अक्रीडिष्टाम् अक्रीडिषु । अक्रीडी अक्रीडिष्टम् अक्रीडिष्ट । अक्रीडिषम् अक्रीडिष्व अक्रीडिष्म । लुट्—क्रीडिता । लृट्—क्रीडिष्यति । आशी०—क्रीड्यात् । लृङ्—अक्रीडिष्यत् ।

क्रुश् (प०)—चिल्लाना, रोना । लट्—क्रोशति । लोट्—क्रोशतु । विधि—क्रोशेत् । लङ्—अक्रोशत । लिट्—चुक्रोश, चुक्रुशतु, चुक्रुशु । चुक्रुशिथ चुक्रुशथु चुक्रुश । चुक्रोश चुक्रुशिव चुक्रुशिम । लुङ्—अक्रुशत् अक्रुशताम् अक्रुशन् । अक्रुशः अक्रुशतम् अक्रुशत । अक्रुशम् अक्रुशाव अक्रुशाम । लुट्—क्रोष्टा । लृट्—क्रोक्ष्यति । आशी०—क्रुश्यात् । लृङ्—अक्रोक्ष्यत् ।

क्रम्[1] (प०)—क्रामति । लिट्—चक्राम चक्रमतु चक्रमु । चक्रमिथ चक्रमथु चक्रम । चक्राम चक्रम चक्रमिव चक्रमिम । लुङ्—अक्रमत् अक्रमताम् अक्रमन् । लुट्—क्रमिता । लृट्—क्रमिष्यति । आशी०—क्रम्यात् ।

क्षम्[2] (आ०)—क्षमा करना । क्षमते क्षमेते क्षमन्ते ।

लिट्—चक्षमे	चक्षमाते	चक्षमिरे
{ चक्षमिषे { चक्षसे	चक्षमाथे	{ चक्षमिध्वे { चक्षन्ध्वे

१ यह दिवादि गण में भी है । वहाँ इसका रूप क्राम्यति इत्यादि होता है । २ यह भी दिवादि में होती है, क्षाम्यति इत्यादि ।

येताथे येतिध्वे। येते येतिवहे येतिमहे। लुङ्—अयतिष्ट अयतिषाताम् अयतिषत। अयतिष्ठा अयतिषाथाम् अयतिढ्वम्। अयतिषि अयतिष्वहि अयतिष्महि। लुट्—यतिता। लृट्—यतिष्यते। आशी०—यतिषीष्ट।

(उ०)—माँगना। याचति याचते। लिट्—ययाच ययाचतु ययाचु। ययाचिथ ययाचथु ययाच। ययाच ययाचिव ययाचिम। ययाचे ययाचाते ययाचिरे। ययाचिषे ययाचाथे ययाचिध्वे। ययाचे ययाचिवहे ययाचिमहे। लुङ्—अयाचीत् अयाचिष्ट। लुट्—याचिता। लृट्—याचिष्यति याचिष्यते। आशी०—याच्यात्, याचिषीष्ट।

(आ०)—शुरू करना, आलिङ्गन करना, अभिलाषा करना, जल्दबाज़ी म काम करना। रभते। लिट्—रेभे रेभाते रेभिरे। रेभिषे रेभाथे रेभिध्वे। रेभे रेभिवहे रेभिमहे। लुङ्—अरब्ध अरप्साताम् अरप्सत। अरब्धा अरप्साथाम् अरब्ध्वम्। अरप्सि अरप्स्वहि अरप्स्महि। लुट्—रब्धा रब्धारौ रब्धार। लृट्—रप्स्यते। आशी०—रप्सीष्ट। लृङ्—अरप्स्यत।

(आ०)—खेलना, हर्षित होना। रमते रमेते रमन्ते। लिट्—रेमे रेमाते रेमिरे। लुङ्—अरंस्त अरंसाताम् अरंसत। अरंस्था अरंसाथाम् अरंध्वम्। अरंसि अरंस्वहि अरंस्महि। लुट्—रन्ता रन्तारौ। लृट्—रंस्यते। लृङ्—अरंस्यत।

(प०)—उगना, बढ़ना, उठना। रोहति रोहत रोहन्ति। लिट्—रुरोह रुरुहतु रुरुहु। रुरोहिथ रुरुहथु रुरुह। रुरोह रुरुहिव रुरुहिम।

चचमे { चचमिवहे / चचमवहे } { चचमिमहे / चचमहे }

कम्प् (आ०)—काँपना। लट्—कम्पते कम्पेते कम्पन्ते। लोट्—कम्पताम् कम्पेताम् कम्पन्ताम्। कम्पस्व। विधि—कम्पेत कम्पेयाताम् कम्पेरन्। लङ्—अकम्पत अकम्पेताम् अकम्पन्त। अकम्पथा अकम्पेथाम् अकम्पध्वम्। अकम्पे अकम्पावहि अकम्पामहि। लिट्—चकम्पे चकम्पाते चकम्पिरे। चकम्पिषे चकम्पाथे चकम्पिध्वे। चकम्पे चकम्पिवहे चकम्पिमहे। लुङ्—अकम्पिष्ट अकम्पिषाताम् अकम्पिषत। अकम्पिष्ठा अकम्पिषाथाम् अकम्पिध्वम्। अकम्पिषि अकम्पिष्वहि अकम्पिष्महि। लुट्—कम्पिता कम्पितारौ कम्पितार। कम्पितासे कम्पितासाथे कम्पिताध्वे। कम्पिताहे कम्पितास्वहे कम्पितास्महे। लृट्—कम्पिष्यते कम्पिष्येते कम्पिष्यन्ते कम्पिष्यसे कम्पिष्येथे कम्पिष्यध्वे। कम्पिष्ये कम्पिष्यावहे कम्पिष्यामहे। आशी०—कम्पिषीष्ट कम्पिषीयास्ताम् कम्पिषीरन्। लृङ्—अकम्पिष्यत अकम्पिष्येताम् अकम्पिष्यन्त।

काङ्क्ष् (प०)—इच्छा करना। लँट्—काङ्क्षति। लोट्—काङ्क्षतु विधि—काङ्क्षेत्। लङ्—अकाङ्क्षत्। लिट्—चकाङ्क्ष चकाङ्क्षतु चकाङ्क्षु। चकाङ्क्षिथ चकाङ्क्षथु चकाङ्क्ष चकाङ्क्ष चकाङ्क्षिव चकाङ्क्षिम। लुङ्—अकाङ्क्षीत् अकाङ्क्षिष्टाम् अकाङ्क्षिषु। अकाङ्क्षी अकाङ्क्षिष्टम् अकाङ्क्षिष्ट। अकाङ्क्षिषम् अकाङ्क्षिष्व अकाङ्क्षिष्म। लुट्—काङ्क्षिता। लृट्—काङ्क्षिष्यति। आशी०—काङ्क्ष्यात् लृट्—अकाङ्क्षिष्यत्।

लुङ्—अरुचत् अरुचताम् अरुचन्। अरुच अरुचतम् अरुचत अरुचम् अरुचाव अरुचाम।

वद् (प०)—कहना। वदति।

लिट्

प्र० पु०	उवाद	ऊदतु	ऊदुः
म० पु०	उवदिथ	ऊदथु	ऊद
उ० पु०	उवाद उवाद	ऊदिव	ऊदिम

लुङ्

प्र० पु०	अवादीत्	अवादिष्टाम्	अवादिषुः
म० पु०	अवादी	अवादिष्टम्	अवादिष्ट
उ० पु०	अवादिषम्	अवादिष्व	अवादिष्म

लुट्—वदिता। लृट्—वदिष्यति। आशी०—उद्यात्।

वन्द् (आ०)—नमस्कार करना या स्तुति करना। वन्दते वन्देते वन्दन्ते। लिट्—ववन्दे ववन्दाते ववन्दिरे। लुङ्—अवन्दिष्ट अवन्दिषाताम् अवन्दिषत। लुट्—वन्दिता। लृट्—वन्दिष्यते। आशी०—वन्दिषीष्ट।

वप् (उ०)—बोना, छितराना, कपड़ा बुनना, बाल बनाना। वपति वपते।

लिट्—परस्मैपद

प्र० पु०	उवाप	ऊपतु	ऊपुः
म० पु०	उवपिथ उवप्थ	ऊपथु	ऊप

काश् (आ०)—चमकना । लट्—काशते काशेते काशन्ते । लिट्—चकाशे चकाशाते चकाशिरे । चकाशिषे चकाशाथे चकाशिध्वे । चकाशे चकाशिवहे चकाशिमहे । लुङ्—अकाशिष्ट अकाशिषाताम् अकाशिषत । अकाशिष्ठा अकाशिषाथाम् अकाशिध्वम् । अकाशिषि अकाशिष्वहि अकाशिष्महि । लुट्—काशिता । लृट्—काशिष्यते। आशी०—काशिषीष्ट। लृङ्—अकाशिष्यत।

खन् (उ०)—खनना । लट्—खनति, खनते । लिट्—चखान चख्नतु चख्नुः । चखनिथ चख्नथुः चख्न । चखान चखन चख्निव चख्निम । चख्ने चख्नाते चख्निरे चख्निषे चख्नाथे चख्निध्वे । चख्ने चख्निवहे चख्निमहे । लुङ्—अखनीत् अखनिष्टाम् अखनिषुः, अखानीत् अखानिष्टाम् अखानिषुः । अखनिष्ट अखनिषाताम् अखनिषत । लुट्—खनिता । लृट्—खनिष्यति खनिष्यते । आशी०—खन्यात् खायात्, खनिषीष्ट ।

ग्लै (प०)—क्षीण होना । ग्लायति ग्लायतः ग्लायन्ति । लिट्—जग्लौ जग्लतुः जग्लुः । जग्लिथ जग्लाथ जग्लथुः जग्ल । जग्लौ जग्लिव जग्लिम । लुङ्—अग्लासीत् । लुट्—ग्लाता । लृट—ग्लास्यति । आशी०—ग्लायात् ग्लेयात् ।

चल् (प०)—चलना । चलति चलतः चलन्ति । लिट्—चचाल चेलतुः चेलुः । चेलिथ चेलथुः चेल । चचाल चचल चेलिव चेलिम । लुङ्—अचालीत् । लुट—चलिता । लृट—चलिष्यति । आशी०—चल्यात् । लृङ्—अचलिष्यत् ।

(प०)—बरसना। वर्षति वर्षत वर्षन्ति । लिट्—ववर्ष ववर्षतु ववर्षु । लुङ्—अवर्षीत् । लुट्—वर्षिता । लृट्—वर्षिष्यति । आशी०—वृष्यात् ।

(प०)—चलना । व्रजति । लिट्—वव्राज वव्रजतु । लुङ्—अव्राजीत् अव्राजिष्टाम् । लुट्—व्रजिता । लृट्—व्रजिष्यति । आशी०—व्रज्यात्

(प०)—स्तुति करना या चोट पहुँचाना । शंसति । लिट्—शशंस शशंसतु शशंसु । लुङ्—अशंसीत् अशंसिष्टाम् अशंसिषु । लुट्—शंसिता । लृट्—शंसिष्यति । आशी०—शस्यात् शस्यास्ताम् शस्यासु ।

(आ०)—शङ्का करना । शंकते शङ्केते शङ्कन्ते । लिट्—शशङ्के शशङ्काते शशङ्किरे । लुङ्—अशङ्किष्ट अशङ्किषाताम् अशङ्किषत । लुट्—शङ्किता । लृट् शङ्किष्यते । आशी०—शङ्किषीष्ट ।

(आ०)—सीखना । शिक्षते । लिट्—शिशिक्षे । लुङ्—अशिक्षिष्ट अशिक्षिषाताम् अशिक्षिषत । लुट्—शिक्षिता । लृट्—शिक्षिष्यते । आशी०—शिक्षिषीष्ट ।

(प०)—शोक करना, पछताना । शोचति शोचत शोचन्ति । लिट्—शुशोच शुशुचतु शुशुचु । शुशोचिथ । लुङ्—अशोचीत् अशोचिष्टाम् अशोचिषु । लुट्—शोचिता । लृट्—शोचिष्यति । आशी०—शुच्यात् ।

(आ०)—शोभित होना, प्रसन्न होना । शोभते शोभेते शोभन्ते । लिट्—शुशुभे शुशुभाते शुशुभिरे । लुङ्—अशोभिष्ट अशो

ज्वल् (प०)—जलना । ज्वलति । लिट्—जज्वाल जज्वलतु जज्वलु । जज्वलिथ जज्वलथु जज्वल । जज्वाल जज्वल जज्वलिव जज्वलिम । लुङ्—अज्वालीत् अज्वालिष्टाम् अज्वालिषु । लुट्—ज्वलिता । लृट्—ज्वलिष्यति । आशी०—ज्वल्यात् ।

डी[1] (आ०)—उड़ना । डयते डयेते डयन्ते । लिट्—डिड्ये डिड्याते डिड्यिरे । लुङ्—अडयिष्ट अडयिषाताम् अडयिषत । लुट्—डयिता । लृट्—डयिष्यते । आशी०—डयिषीष्ट ।

त्यज् (प०)—छोड़ना । त्यजति त्यजत त्यजन्ति । लिट्—तत्याज तत्यजतु तत्यजु । तत्यजिथ तत्यक्थ तत्यजथु तत्यज । तत्याज तत्यज तत्यजिव तत्यजिम । लुङ्—अत्याक्षीत् अत्याक्ताम् अत्याक्षु अत्याक्षी अत्याक्तम् अत्याक्त । अत्याक्षम् अत्याक्ष्व अत्याक्ष्म लुट्—त्यक्ता त्यक्तारौ । लृट्—त्यक्ष्यति त्यक्ष्यत त्यक्ष्यन्ति आशी०—त्यज्यात् ।

दह् (प०)—जलाना । दहति दहत दहन्ति । लिट्—ददाह देहतु देहु देहिथ ददग्ध देहथु देह । ददाह-ददह देहिव देहिम । लुङ्—अधाक्षीत अदाग्धाम् अधाक्षु । अधाक्षी अदाग्धम् अदाग्ध अधाक्षम् अधाक्ष्व अधाक्ष्म । लुट्—दग्धा दग्धारौ दग्धार लृट्—धक्ष्यति धक्ष्यत धक्ष्यन्ति । आशी०—दह्यात् ।

---

१ यह दिवादिगणी भी है । वहाँ पर इसके रूप डीयते डीयेते डीयन्ते चलते हैं ।

लुङ्

प्र० पु०	अवात्सीत्	अवात्ताम्	
म० पु०	अवात्सीः	अवात्तम्	
उ० पु०	अवात्सम्	अवात्स्व	

लुट्

प्र० पु०	वस्ता	वस्तारौ	

लृट्

प्र० पु०	वत्स्यति	वत्स्यतः	वत्स्य[...]
म० पु०	वत्स्यसि	वत्स्यथः	वत्स्य[...]
उ० पु०	वत्स्यामि	वत्स्यावः	वत्स्या[...]

वाञ्छ् (प०)—इच्छा करना। वाञ्छति वाञ्छतः वाञ्छन्ति। लि[...] ववाञ्छ ववाञ्छतुः ववाञ्छुः। ववाञ्छिथ। लुङ्—अवाञ्छी[...] लुट् वाञ्छिता। लृट्—वाञ्छिष्यति। आशी०—वाञ्छ्या[...]

वृध्[1] (आ०)—बढ़ना। वर्धते वर्धेते वर्धन्ते। लिट्—ववृधे व[...] ववृधिरे। ववृधिषे ववृधाथे ववृधिध्वे। ववृधे ववृधिवहे ववृ[...] लुङ्—अवर्धिष्ट अवर्धिषाताम् अवर्धिषत। अवृधत् अवृध[...] अवृधन्। लुट्—वर्धिता। लृट्—वर्धिष्यते अथवा वर्त्स्य[...]

आशी०

वर्धिषीष्ट	वर्धिषीयास्ताम्	वर्धिषीरन्
वर्धिषीष्ठाः	वर्धिषीयास्थाम्	वर्धिषीध्वम्
वर्धिषीय	वर्धिषीवहि	वर्धिषीमहि

---

१ यह लृट्, लुङ् तथा लृङ् में परस्मैपदी भी हो जाती है।

उ०)—जानना। बोधति, बोधते। लिट् – बुबोध बुबुधे। लुङ्—अबुधत् अबुधताम् अबुधन्। अबोधीत् अबोधिष्टाम् अबोधिषु। अबोधिष्ट अबोधिषाताम् अबोधिषत। लुट्—बोधिता। लृट्—बोधिष्यति, बोधिष्यते। आशी० – बुध्यात्, बोधिषीष्ट।

उ०)—सेवा करना। भजति भजते। लिट्—बभाज भेजतु भेजु। भेजिथ बभक्थ भेजथु भेज। बभाज बभज भेजिव भेजिम। भेजे भेजाते भेजिरे। भेजिषे भेजाथे भेजिध्वे। भेजे भेजिवहे भेजिमहे। लुङ्—अभाक्षीत् अभाक्ताम् अभाक्षु। अभाक्षी अभाक्तम् अभाक्त। अभाक्षम् अभाक्ष्व अभाक्ष्म। अभक्त अभक्षाताम् अभक्षत। अभक्था अभक्षाथाम्। अभग्ध्वम्। अभक्षि अभक्ष्वहि अभक्ष्महि। लुट् - भक्ता। लृट्—भक्ष्यति भक्ष्यते। आशी०—भज्यात् भक्षीष्ट।

आ०)—बोलना। भाषते भाषेते भाषन्ते। लिट्—बभाषे बभाषाते बभाषिरे। बभाषिषे बभाषाथे बभाषिध्वे। बभाषे बभाषिवहे बभाषिमहे। लुङ्—अभाषिष्ट अभाषिषाताम् अभाषिषत। अभाषिष्ठा अभाषिषाथाम् अभाषिध्वम्। अभाषिषि अभाषिष्वहि अभाषिष्महि। लुट्—भाषिता। लृट्—भाषिष्यते। आशी०—भाषिषीष्ट।

---

१ यह दिवादिगणी भी है। वहाँ बुध्यते चलता है

(प०)—बरसना। वर्षति वर्षतः वर्षन्ति । लिट्—ववर्ष ववर्षतुः ववर्षुः । लुङ्—अवर्षीत् । लुट्—वर्षिता । लृट्—वर्षिष्यति । आशी०—वृष्यात् ।

(प०)—चलना । व्रजति । लिट्—वव्राज वव्रजतुः । लुङ्—अव्राजीत् अव्राजिष्टाम् । लुट्—व्रजिता । लृट्—व्रजिष्यति । आशी०—व्रज्यात्

(प०)—स्तुति करना या चोट पहुँचाना । शंसति । लिट्—शशंस शशंसतुः शशंसुः । लुङ्—अशंसीत् अशंसिष्टाम् अशंसिषुः । लुट्—शंसिता । लृट्—शंसिष्यति । आशी०—शस्यात् शस्यास्ताम् शस्यासुः ।

(आ०)—शङ्का करना । शङ्कते शङ्केते शङ्कन्ते । लिट्—शशङ्के शशङ्काते शशङ्किरे । लुङ्—अशङ्किष्ट अशङ्किषाताम् अशङ्किषत । लुट्—शङ्किता । लृट्—शङ्किष्यते । आशी०—शङ्किषीष्ट ।

(आ०)—सीखना । शिक्षते । लिट्—शिशिक्षे । लुङ्—अशिक्षिष्ट अशिक्षिषाताम् अशिक्षिषत । लुट्—शिक्षिता । लृट्—शिक्षिष्यते । आशी०—शिक्षिषीष्ट ।

(प०)—शोक करना, पछताना । शोचति शोचतः शोचन्ति । लिट्—शुशोच शुशुचतुः शुशुचुः । शुशोचिथ । लुङ्—अशोचीत् अशोचिष्टाम् अशोचिषुः । लुट्—शोचिता । लृट्—शोचिष्यति । आशी०—शुच्यात् ।

(आ०)—शोभित होना, प्रसन्न होना । शोभते शोभेते शोभन्ते । लिट्—शुशुभे शुशुभाते शुशुभिरे । लुङ्—अशोभिष्ट अशो

म० पु०	अपक्थाः	अपक्षाथाम्	अपग्ध्वम्
उ० पु०	अपक्षि	अपक्ष्वहि	अपक्ष्महि

लुट्—पक्ता पक्तारौ पक्तार । लृट्—पक्ष्यति, पक्ष्यते । आशी०—पच्यात् पक्षीष्ट । लृङ्—अपक्ष्यत्, अपक्ष्यत ।

पत् (प०)—गिरना । पतति । लिट्—पपात पेततु पेतु ।

लुङ्

प्र० पु०	अपप्तत्	अपप्तताम्	अपप्तन्
म० पु०	अपप्तः	अपप्ततम्	अपप्तत
उ० पु०	अपप्तम्	अपप्ताव	अपप्ताम

लुट्—पतिता । लृट्– पतिष्यति ।

फल् (प०)—फलना । फलति । लिट्—पफाल फेलतु फेलु । फेलिथ । लुङ्—अफालीत् अफालिष्टाम् । लुट्—फलिता । लृट्—फलिष्यति ।

फुल्ल् (प०)—फूलना । फुल्लति । लिट्—पुफुल्ल पुफुल्लतु पुफुल्लु । लुङ्—अफुल्लीत् अफुल्लिष्टाम् । लुट्—फुल्लिता । लृट्—फुल्लिष्यति ।

बाध् (आ०)—पीड़ा देना । बाधते । लिट्—बबाधे बबाधाते बबाधिरे । लुङ्—अबाधिष्ट अबाधिषाताम् अबाधिषत । लुट्—बाधिता । लृट्—बाधिष्यते ।

भिषाताम् अशोभिषत । लुट्—शोभिता । लृट्—शोभि

आशी०—शोभिषीष्ट ।

सह (आ०)—सहना । सहते । लिट्—सेहे सेहाते सेहिरे ।

लुङ्

प्र० पु०	असहिष्ट	असहिषाताम्	असहिषत
म० पु०	असहिष्ठाः	असहिषाथाम्	असहिध्वम्
उ० पु०	असहिषि	असहिष्वहि	असहिष्महि

लुट्

प्र० पु०	सोढा	सोढारौ	सोढारः
म० पु०	सोढासे	सोढासाथे	सोढाध्वे
उ० पु०	सोढाहे	सोढास्वहे	सोढास्महे

अथवा

प्र० पु०	सहिता	सहितारौ	सहितारः
म० पु०	सहितासे	सहितासाथे	सहिताध्वे
उ० पु०	सहिताहे	सहितास्वहे	सहितास्महे

लृट्—सहिष्यते । आशी०—सहिषीष्ट ।

सृ (प०)—चलना । सरति सरतः सरन्ति । लिट्—ससार सस्रतुः ससुः

ससर्थ सस्रथुः सस्र । ससार-ससर सस्रिव सस्रिम । लुङ्

असरत् असरताम् असरन् अथवा असार्षीत् असार्ष्टाम् असा

लुट्—सर्ता । लृट्—सरिष्यति । आशी०—स्रियात् ।

सेव् (आ०)—सेवा करना । सेवते सेवेते सेवन्ते । लिट्—सिषेवे सिषे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अत्तु, अत्तात्	अत्ताम	अदन्तु
म० पु०	अद्धि, अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्यु
म० पु०	अद्या	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन् आदु॰
म० पु०	आद	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम	आद्व	आद्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतु	जक्षु
म० पु०	जघसिथ	जक्षथु	जक्ष
उ० पु०	जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम

अथवा

प्र० पु०	आद	आदतु	आदु
म० पु०	आदिथ	आदथु	आद
उ० पु०	आद	आदिव	आदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्

परोक्षभूत—लिट्

० पु०	इयाय	ईयतु	ईयु
० पु०	इययिथ, इयेथ	ईयथु	ईय
० पु०	इयाय, इयय	ईयिव	ईयिम

सामान्यभूत—लुङ्

० पु०	अगात्	अगाताम्	अगु
म० पु०	अगा	अगातम्	अगात
उ० पु०	अगाम्	अगाव	अगाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	एता	एतारौ	एतार
म० पु०	एतासि	एतास्थ	एतास्थ
उ० पु०	एतास्मि	एतास्व	एतास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	एष्यति	एष्यत	एष्यन्ति
म० पु०	एष्यसि	एष्यथ	एष्यथ
उ० पु०	एष्यामि	एष्याव	एष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयास्ताम्	इयासु
म० पु०	इया	इयास्तम्	इयास्त
उ० पु०	इयासम्	इयास्व	इयास्म

ह्राद् (आ०)— खुश होना या शब्द करना। ह्रादते। लिट्—जह्रादाते जह्रादिरे । लुङ्—अह्रादिष्ट । लुट्—ह्रादिता लृट्—ह्रादिष्यते । आशी०—ह्रादिषीष्ट

(२) अदादिगण

१४७—इस गण के आदि में अद्—खाना धातु है, इसलिये इसका नाम अदादि है। धातुपाठ में इस गण की ७२ धातुएँ पठित हैं। इस गण की धातुओं के उपरान्त ही प्रत्यय जोड़ दिये जाते हैं, धातु और प्रत्यय के बीच में भ्वादिगण के शप् (अ) की तरह कुछ नहीं लाया जाता। उदाहरणार्थ अद्+मि=अद्मि, अद्+ति=अत्ति, स्ना+ति=स्नाति।

परस्मैपदी आकारान्त धातुओं के अनन्तर अनद्यतन भूत के प्रथम पुरुष बहुवचन के अन् प्रत्यय के स्थान पर विकल्प से उस् आता है; जैसे—आदन् अथवा आदु ।

परस्मैपदी

अद्—खाना।

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अत्ति	अत्त	अदन्ति
म० पु०	अत्सि	अत्थ	अत्थ
उ० पु०	अद्मि	अद्व	अद्म

क्रियातिपत्ति—लट्

प्र० पु०	ऐष्यत्	ऐष्यताम्	ऐष्यन्
म० पु०	ऐष्य	ऐष्यतम्	ऐष्यत
उ० पु०	ऐष्यम्	ऐष्याव	ऐष्याम

उभयपदी

ब्रू—बोलना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	{ ब्रवीति { आह	{ ब्रूत { आहतु	ब्रुवन्ति आहु
म० पु०	{ ब्रवीषि { आत्थ	{ ब्रूथ { आहथु	ब्रूथ
उ० पु०	ब्रवीमि	ब्रूव	ब्रूम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रवीतु ब्रूतात्	ब्रूताम्	ब्रुवन्तु
म० पु०	ब्रूहि, ब्रूतात्	ब्रूतम्	ब्रूत
उ० पु०	ब्रवाणि	ब्रवाव	ब्रवाम

विधि-लिङ्

प्र० पु०	ब्रूयात्	ब्रूयाताम्	ब्रूयु
म० पु०	ब्रूया	ब्रूयातम्	ब्रूयात
उ० पु०	ब्रूयाम्	ब्रूयाव	ब्रूयाम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अत्तु अत्तात्	अत्ताम्	अदन्तु
म० पु०	अद्धि अत्तात्	अत्तम्	अत्त
उ० पु०	अदानि	अदाव	अदाम

विधि—लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्याताम्	अद्युः
म० पु०	अद्याः	अद्यातम्	अद्यात
उ० पु०	अद्याम्	अद्याव	अद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आदत्	आत्ताम्	आदन् आदु-
म० पु०	आदः	आत्तम्	आत्त
उ० पु०	आदम	आद्व	आद्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघास	जक्षतुः	जक्षुः
म० पु०	जघसिथ	जक्षथुः	जक्ष
उ० पु०	जघास, जघस	जक्षिव	जक्षिम
		अथवा	
प्र० पु०	आद	आदतुः	आदुः
म० पु०	आदिथ	आदथुः	आद
उ० पु०	आद	आदिव	आदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अघसत्	अघसताम्	अघसन्

म० पु०	अघस	अघसतम्	अघसत
उ० पु०	अघसम्	अघसाव	अघसाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	अत्ता	अत्तारौ	अत्तारः
म० पु०	अत्तासि	अत्तास्थ	अत्तास्थ
उ० पु०	अत्तास्मि	अत्तास्व	अत्तास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० प्र०	अत्स्यति	अत्स्यत	अत्स्यन्ति
म० पु०	अत्स्यसि	अत्स्यथ	अत्स्यथ
उ० पु०	अत्स्यामि	अत्स्याव	अत्स्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	अद्यात्	अद्यास्ताम्	अद्यासु
म० पु०	अद्या	अद्यास्तम्	अद्यास्त
उ० पु०	अद्यासम्	अद्यास्व	अद्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	आत्स्यत्	आत्स्यताम्	आत्स्यन्
म० पु०	आत्स्य	आत्स्यतम्	आत्स्यत
उ० पु०	आत्स्यम्	आत्स्याव	आत्स्याम

आशीर्लिट्

प्र० पु०	उच्यात्	उच्यास्ताम्	उच्यासुः
म० पु०	उच्याः	उच्यास्तम्	उच्यास्त
उ० पु०	उच्यासम्	उच्यास्व	उच्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत्	अवक्ष्यताम्	अवक्ष्यन्
म० पु०	अवक्ष्यः	अवक्ष्यतम्	अवक्ष्यत
उ० पु०	अवक्ष्यम्	अवक्ष्याव	अवक्ष्याम

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	ब्रूते	ब्रुवाते	ब्रुवते
म० पु०	ब्रूषे	ब्रुवाथे	ब्रूध्वे
उ० पु०	ब्रुवे	ब्रूवहे	ब्रूमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ब्रूताम्	ब्रुवाताम्	ब्रुवताम्
म० पु०	ब्रूष्व	ब्रुवाथाम्	ब्रूध्वम्
उ० पु०	ब्रवै	ब्रवावहै	ब्रवामहै

विधि-लिङ्

प्र० पु०	ब्रुवीत	ब्रुवीयाताम्	ब्रुवीरन्
म० पु०	ब्रुवीथाः	ब्रुवीयाथाम्	ब्रुवीध्वम्
उ० पु०	ब्रुवीय	ब्रुवीवहि	ब्रुवीमहि

१४९—अदादिगण की अन्य धातुओं के रूप।

परस्मपदी

अस—होना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अस्ति	स्तः	सन्ति
म० पु०	असि	स्थः	स्थ
उ० पु०	अस्मि	स्वः	स्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अस्तु	स्ताम्	सन्तु
म० पु०	एधि, स्तात्	स्तम्	स्त
उ० पु०	असानि	असाव	असाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्यात्	स्याताम्	स्यु
म० पु०	स्या	स्यातम्	स्यात
उ० पु०	स्याम्	स्याव	स्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आसीत्	आस्ताम्	आसन्
म० पु०	आसी	आस्तम्	आस्त
उ० पु०	आसम्	आस्व	आस्म

शेष लकारों में अस् धातु के रूप वे ही हैं जो भ्वादिगणी भू धातु के हैं।

आत्मनेपदी

आस्—बैठना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	आस्ते	आसाते	आसते
म० पु०	आस्से	आसाथे	आध्वे
उ० पु०	आसे	आस्वहे	आस्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	आस्ताम्	आसाताम्	आसताम्
म० पु०	आस्स्व	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसै	आसावहै	आसामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	आसीत	आसीयाताम्	आसीरन्
म० पु०	आसीथा	आसीयाथाम्	आसीध्वम्
उ० पु०	आसीय	आसीवहि	आसीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आस्त	आसाताम्	आसत
म० पु०	आस्था	आसाथाम्	आध्वम्
उ० पु०	आसि	आस्वहि	आस्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चक्राते	आसाञ्चक्रिरे
म० पु०	आसाञ्चकृषे	आसाञ्चक्राथे	आसाञ्चकृढ्वे
उ० पु०	आसाञ्चक्रे	आसाञ्चकृवहे	आसाञ्चकृमहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	वक्षीष्ट	वक्षीयास्ताम्	वक्षीरन्
म० पु०	वक्षीष्ठा	वक्षीयास्थाम्	वक्षीध्वम्
उ० पु०	वक्षीय	वक्षीवहि	वक्षीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अवक्ष्यत	अवक्ष्येताम्	अवक्ष्यन्त
म० पु०	अवक्ष्यथा	अवक्ष्येथाम्	अवक्ष्यध्वम्
उ० पु०	अवक्ष्ये	अवक्ष्यावहि	अवक्ष्यामहि

परस्मैपदी, या—जाना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	याति	यातः	यान्ति
म० पु०	यासि	याथः	याथ
उ० पु०	यामि	यावः	यामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	यातु, यातात्	याताम्	यान्तु
म० पु०	याहि, यातात्	यातम्	यात
उ० पु०	यानि	याव	याम

विधि-लिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायाताम्	यायुः
म० पु०	यायाः	यायातम्	यायात
उ० पु०	यायाम्	यायाव	यायाम

आसाम्बभूव तथा आसामास इत्यादि भी होते हैं।

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	आसिष्ट	आसिषाताम्	आसिषत
म० पु०	आसिष्ठा	आसिषाथाम्	आसिध्वम्
उ० पु०	आसिषि	आसिष्वहि	आसिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	आसिता	आसितारौ	आसितारः, इत्यादि।

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	आसिष्यते	आसिष्येते	आसिष्यन्ते, इत्यादि।

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	आसिषीष्ट	आसिषीयास्ताम्	आसिषीरन्, इत्यादि।

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	आसिष्यत	आसिष्येताम्	आसिष्यन्त, इत्यादि।

आत्मनेपदी

(अधि+) इङ्—अध्ययन करना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	अधीते	अधीयाते	अधीयते
म० पु०	अधीषे	अधीयाथे	अधीध्वे
उ० पु०	अधीये	अधीवहे	अधीमहे

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अयात्	अयाताम्	अयु
म० पु०	अया	अयातम्	अयात
उ० पु०	अयाम्	अयाव	अयाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ययौ	ययतु	ययु
म० पु०	ययिथ,ययाथ	ययथु	यय
उ० पु०	ययौ	ययिव	ययिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अयासीत्	अयासिष्टाम्	अयासिषु
म० पु०	अयासी	अयासिष्टम्	अयासिष्ट
उ० पु०	अयासिषम्	अयासिष्व	अयासिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	याता	यातारौ	यातार
म० पु०	यातासि	यातास्थ	यातास्थ
उ० पु०	यातास्मि	यातास्व	यातास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	यास्यति	यास्यत	यास्यन्ति
म० पु०	यास्यसि	यास्यथ	यास्यथ
उ० पु०	यास्यामि	यास्याव	यास्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	यायात्	यायास्ताम्	यायासु

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	अधीताम्	अधीयाताम्	अधीयताम
म० पु०	अधीष्व	अधीयाथाम्	अधीध्वम्
उ० पु०	अध्ययै	अध्ययावहै	अध्ययामहै

विधि—लिङ्

प्र० पु०	अधीयीत	अधीयीयाताम्	अधीयीर
म० पु०	अधीयीथा	अधीयीयाथाम्	अधीयीध्व
उ० पु०	अधीयीय	अधीयीवहि	अधीयीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अध्यैत	अध्यैयाताम्	अध्यैयत
म० पु०	अध्यैथा	अध्यैयाथाम्	अध्यैध्वम
उ० पु०	अध्यैयि	अध्यैवहि	अध्यैमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	अधिजगे	अधिजगाते	अधिजगिरे
म० पु०	अधिजगिषे	अधिजगाथे	अधिजगिध्वे
उ० पु०	अधिजगे	अधिजगिवहे	अधिजगिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अध्यगीष्ट	अध्यगीषाताम्	अध्यगीषत
म० पु०	अध्यगीष्ठा	अध्यगीषाथाम्	अध्यगीढ्वम्
उ० पु०	अध्यगीषि	अध्यगीष्वहि	अध्यगीष्महि

म० पु०	याया	यायास्तम्	यायास्त
उ० पु०	यायासम्	यायास्व	यायास्म

क्रियातिपत्ति—लृट्

प्र० पु०	अयास्यत्	अयास्यताम्	अयास्यन्
म० पु०	अयास्य	अयास्यतम्	अयास्यत
उ० पु०	अयास्यम्	अयास्याव	अयास्याम

ख्या (कहना), पा (पालना), भा (चमकना), मा (नापना) रा (देना), ला (देना या लेना), वा (बहना) के रूप या के समान होते हैं।

परस्मैपदी

रुद्—रोना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	रोदिति	रुदित	रुदन्ति
म० पु०	रोदिषि	रुदिथ	रुदिथ
उ० पु०	रोदिमि	रुदिव	रुदिम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रोदितु	रुदिताम्	रुदन्तु
म० पु०	रुदिहि	रुदितम्	रुदित
उ० पु०	रोदानि	रोदाव	रोदाम

अथवा

पु०	अध्यैष्ट	अध्यैषाताम्	अध्यैषत
पु०	अध्यैष्ठा	अध्यैषाथाम्	अध्यैढ्वम् ढ्वम्
पु०	अध्यैषि	अध्यैष्वहि	अध्यैष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

पु०	अध्येता	अध्येतारौ	अध्येतार
पु०	अध्येतासे	अध्येतासाथे	अध्येताध्वे
पु०	अध्येताहे	अध्येतास्वहे	अध्येतास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

पु०	अध्येष्यते	अध्येष्येते	अध्येष्यन्ते
पु०	अध्येष्यसे	अध्येष्येथे	अध्येष्यध्वे
पु०	अध्येष्ये	अध्येष्यावहे	अध्येष्यामहे

आशीर्लिङ्

पु०	अध्येषीष्ट	अध्येषीयास्ताम्	अध्येषीरन्
पु०	अध्येषीष्ठा	अध्येषीयास्थाम्	अध्येषीध्वम्
पु०	अध्येषीय	अध्येषीवहि	अध्येषीमहि

क्रियानिपत्ति—लृङ्

पु०	अध्यगीष्यत	अध्यगीष्येताम्	अध्यगीष्यन्त
पु०	अध्यगीष्यथा	अध्यगीष्येथाम्	अध्यगीष्यध्वम्
पु०	अध्यगीष्ये	अध्यगीष्यावहि	अध्यगीष्यामहि

विधि-लिङ्

प्र० पु०	रुद्यात्	रुद्याताम्	रुद्युः
म० पु०	रुद्याः	रुद्यातम्	रुद्यात
उ० पु०	रुद्याम्	रुद्याव	रुद्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरोदीत्, अरोदत्	अरुदिताम्	अरुदन्
म० पु०	अरोदीः, अरोदः	अरुदितम्	अरुदित
उ० पु०	अरोदम्	अरुदिव	अरुदिम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुरोद	रुरुदतुः	रुरुदुः
म० पु०	रुरोदिथ	रुरुदथुः	रुरुद
उ० पु०	रुरोद	रुरुदिव	रुरुदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अरुदत् अरोदीत्	अरुदताम् अरोदिष्टाम्	अरुदन् अरोदिषुः
म० पु०	अरुदः अरोदीः	अरुदतम् अरोदिष्टम्	अरुदत अरोदिष्ट
उ० पु०	अरुदम् अरोदिषम्	अरुदाव अरोदिष्व	अरुदाम अरोदिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोदिता	रोदितारौ	रोदितारः
म० पु०	रोदितासि	रोदितास्थः	रोदितास्थ
उ० पु०	रोदितास्मि	रोदितास्वः	रोदितास्मः

अथवा

प्र० पु०	अध्यैष्यत	अध्यैष्येताम्	अध्यैष्यत
म० पु०	अध्यैष्यथाः	अध्यैष्येथाम्	अध्यैष्यध्व
उ० पु०	अध्यैष्ये	अध्यैष्यावहि	अध्यैष्याम

परस्मैपदी

इ—जाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	एति	इतः	यन्ति
म० पु०	एषि	इथः	इथ
उ० पु०	एमि	इवः	इमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	एतु	इताम्	यन्तु
म० पु०	इहि	इतम्	इत
उ० पु०	अयानि	अयाव	अयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	इयात्	इयाताम्	इयुः
म० पु०	इयाः	इयातम्	इयात
उ० पु०	इयाम्	इयाव	इयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	ऐत्	ऐताम्	आयन्
म० पु०	ऐः	ऐतम्	ऐत
उ० पु०	आयम्	ऐव	ऐम

प्र.

स

उ

म० पु०	शाधि	शिष्टम्	शिष्ट
उ० पु०	शासानि	शासाव	शासाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्याताम्	शिष्यासुः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशात्	अशिष्टाम्	अशासुः
म० पु०	अशाः, अशात्	अशिष्टम्	अशिष्ट
उ० पु०	अशासम्	अशिष्व	अशिष्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशास	शशासतुः	शशासुः
म० पु०	शशासिथ	शशासथुः	शशास
उ० पु०	शशास	शशासिव	शशासिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशिषत्	अशिषताम्	अशिषन्
म० पु०	अशिषः	अशिषतम्	अशिषत
उ० पु०	अशिषम्	अशिषाव	अशिषाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शासिता	शासितारौ	शासितारः
म० पु०	शासितासि	शासितास्थः	शासितास्थ
उ० पु०	शासितास्मि	शासितास्वः	शासितास्मः

आशीर्लिट्

प्र० पु०	धेयात्	धेयास्ताम्	धेयासु
म० पु०	धेया	धेयास्तम्	धेयास्त
उ० पु०	धेयासम्	धेयास्त्र	धेयास्म

क्रियातिपत्ति—लट्

प्र० पु०	अधास्यत्	अधास्यताम्	अधास्यन्
म० पु०	अधास्य	अधास्यतम्	अधास्यत
उ० पु०	अधास्यम्	अधास्याव	अधास्याम

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट

प्र० पु०	धत्ते	दधाते	दधते
म० पु०	धत्से	दधाथे	धद्ध्वे
उ० पु०	दधे	दध्वहे	दध्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	धत्ताम्	दधाताम्	दधताम्
म० पु०	धत्स्व	दधाथाम्	धध्वम्
उ० पु०	दधै	दधावहै	दधामहै

विधिलिङ

प्र० पु०	दधीत	दधीयाताम्	दधीरन्
म० पु०	दधीथा	दधीयाथाम्	दधीध्वम्
उ० पु०	दधीय	दधीवहि	दधीमहि

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शासिष्यति	शासिष्यतः	शासिष्यन्ति
म० पु०	शासिष्यसि	शासिष्यथः	शासिष्यथ
उ० पु०	शासिष्यामि	शासिष्यावः	शासिष्यामः

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शिष्यात्	शिष्यास्ताम्	शिष्यासुः
म० पु०	शिष्याः	शिष्यास्तम्	शिष्यास्त
उ० पु०	शिष्यासम्	शिष्यास्व	शिष्यास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशासिष्यत्	अशासिष्यताम्	अशासिष्यन्
म० पु०	अशासिष्यः	अशासिष्यतम्	अशासिष्यत
उ० पु०	अशासिष्यम्	अशासिष्याव	अशासिष्याम

आत्मनेपदी

शी—लेटना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेते	शयाते	शेरते
म० पु०	शेषे	शयाथे	शेध्वे
उ० पु०	शये	शेवहे	शेमहे

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शेताम्	शयाताम्	शेरताम्

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अधत्त	अदधाताम्	अदधत
म० पु०	अधत्था	अदधाथाम्	अधद्ध्वम्
उ० पु०	अदधि	अदध्वहि	अदध्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधे	दधाते	दधिरे
म० पु०	दधिषे	दधाथे	दधिध्वे
उ० पु०	दधे	दधिवहे	दधिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधित	अधिषाताम्	अधिषत
म० पु०	अधिथा	अधिषाथाम्	अधिध्वम्
उ० पु०	अधिषि	अधिष्वहि	अधिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातार
म० पु०	धातासे	धातासाथे	धाताध्वे
उ० पु०	धाताहे	धातास्वहे	धातास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यते	धास्येते	धास्यन्ते
म० पु०	धास्यसे	धास्येथे	धास्यध्वे
उ० पु०	धास्ये	धास्यावहे	धास्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	धासीष्ट	धासीयास्ताम्	धासीरन्

म० पु०	शेष्व	शयाथाम्	शेध्वम्
उ० पु०	शयै	शयावहै	शयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	शयीत	शयीयाताम्	शयीरन्
म० पु०	शयीथा	शयीयाथाम्	शयीध्वम्
उ० पु०	शयीय	शयीवहि	शयीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अशेत	अशयाताम्	अशेरत
म० पु०	अशेथा	अशयाथाम्	अशेध्वम्
उ० पु०	अशयि	अशेवहि	अशेमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शिश्ये	शिश्याते	शिशियरे
म० पु	शिशियषे	शिश्याथे	शिशियध्वे ढ्वे
उ० पु०	शिश्ये	शिशियवहे	शिशियमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अशयिष्ट	अशयिषाताम्	अशयिषत
म० पु०	अशयिष्ठा	अशयिषाथाम्	अशयिढ्वम्, ध्वम्
उ० पु०	अशयिषि	अशयिष्वहि	अशयिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	शयिता	शयितारौ	शयितार
म० पु०	शयितासे	शयितासाथे	शयिताध्वे
उ० पु०	शयिताहे	शयितास्वहे	शयितास्महे

म० पु०	धासीष्ठा	धासीयास्थाम्	धासीध्वम्
उ० पु०	धासीय	धासीवहि	धासीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अधास्यत	अधास्येताम्	अधास्यन्त
म० पु०	अधास्यथा	अधास्येथाम्	अधास्यध्वम्
उ० पु०	अधास्ये	अधास्यावहि	अधामास्यहि

परस्मैपदी भी—डरना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बिभेति	बिभितः, बिभीत	बिभ्यति
म० पु०	बिभेषि	बिभिथ बिभीथ	बिभिथ, बिभीथ
उ० पु०	बिभेमि	बिभित्र, बिभीत्र	बिभिम, बिभीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	बिभेतु / बिभितात्	बिभिताम् / बिभीताम्	बिभ्यतु
म० पु०	बिभिहि / बिभीहि	बिभितम् / बिभीतम्	बिभित / बिभीत
उ० पु०	बिभयानि	बिभयाव	बिभयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बिभियात् / बिभीयात्	बिभियाताम् / बिभीयाताम्	बिभियु / बिभीयु
म० पु०	बिभिया / बिभीया	बिभियातम् / बिभीयातम्	बिभियात / बिभीयात

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	शयिष्यते	शयिष्येते	शयिष्यन्ते
म० पु०	शयिष्यसे	शयिष्येथे	शयिष्यध्वे
उ० पु०	शयिष्ये	शयिष्यावहे	शयिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	शयिषीष्ट	शयिषीयास्ताम्	शयिषीरन्
म० पु०	शयिषीष्ठाः	शयिषीयास्थाम्	शयिषीढ्वम्, श[illegible]
उ० पु०	शयिषीय	शयिषीवहि	शयिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अशयिष्यत	अशयिष्येताम्	अशयिष्यन्त
म० पु०	अशयिष्यथाः	अशयिष्येथाम्	अशयिष्यध्वम्
उ० पु०	अशयिष्ये	अशयिष्यावहि	अशयिष्यामहि

परस्मैपदी

स्ना—स्नान करना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	स्नाति	स्नातः	स्नान्ति
म० पु०	स्नासि	स्नाथः	स्नाथ
उ० पु०	स्नामि	स्नावः	स्नामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्नातु, स्नातात्	स्नाताम्	स्नान्तु
म० पु०	स्नाहि, स्नातात्	स्नातम्	स्नात

उ० पु०	विभियाम् बिभीयाम्	विभियाव बिभीयाव	विभियाम बिभीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अबिभेत्	अबिभिताम् अबिभीताम्	अबिभयु
म० पु०	अबिभे	अबिभितम् अबिभीतम्	अबिभित अबिभीत
उ० पु०	अबिभयम्	अबिभिव अबिभीव	अबिभिम अबिभीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बिभयाञ्चकार	बिभयाञ्चक्तु	बिभयाञ्चक्रु
म० पु०	बिभयाञ्चकर्थ	बिभयाञ्चकथु	बिभयाञ्चक्र
उ० पु०	बिभयाञ्चकार बिभयाञ्चकर	बिभयाञ्चकृव	बिभयाञ्चकृम
प्र० पु०	बिभयाम्बभूव	बिभयाम्बभूवतु	बिभयाम्बभूवु
म० पु०	बिभयाम्बभूविथ	बिभयाम्बभूवथु	बिभयाम्बभूव
उ० पु०	बिभयाम्बभूव	बिभयाम्बभूविव	बिभयाम्बभूविम
प्र० पु०	बिभयामास	बिभयामासतु	बिभयामासु
म० पु०	बिभयामासिथ	बिभयामासथु	बिभयामास
उ० पु०	बिभयामास	बिभयामासिव	बिभयामासिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभैषीत्	अभैष्टाम्	अभैषु

आज्ञा—लोट्

तु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
हि	स्वपितम्	स्वपित
ानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ्

यात्	स्वप्याताम्	स्वप्युः
्याः	स्वप्यातम्	स्वप्यात
्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

वपीत् वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
वपीः स्वपः	अस्वपितम्	अस्वपित
स्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

परोक्षभूत—लिट्

सुष्वाप	सुषुपतुः	सुषुपुः
सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथुः	सुषुप
सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

सामान्यभूत—लुङ्

	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सुः
	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
		अस्वाप्स्म

म० पु०	अभैषी	अभैष्टम्	अभैष्ट
उ० पु०	अभैषम्	अभैष्व	अभैष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	भेता	भेतारौ	भेतार
म० पु०	भेतासि	भेतास्थ	भेतास्थ
उ० पु०	भेतास्मि	भेतास्व	भेतास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	भेष्यति	भेष्यत	भेष्यन्ति
म० पु०	भेष्यसि	भेष्यथ	भेष्यथ
उ० पु०	भेष्यामि	भेष्याव	भेष्याम

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	भीयात्	भीयास्ताम्	भीयासु
म० पु०	भीया	भीयास्तम्	भीयास्त
उ० पु०	भीयासम्	भीयास्व	भीयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अभेष्यत्	अभेष्यताम्	अभेष्यन्
म० पु०	अभेष्य	अभेष्यतम्	अभेष्यत
उ० पु०	अभेष्यम्	अभेष्याव	अभेष्याम

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	म्नास्यति	स्नास्यत:	स्नास्यन्ति
म० पु०	स्नास्यसि	स्नास्यथ:	स्नास्यथ
उ० पु०	स्नास्यामि	स्नास्याव:	स्नास्याम:

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	स्नायात्	स्नायास्ताम्	स्नायासु:
म० पु०	स्नाया:	स्नायास्तम्	स्नायास्त
उ० पु०	स्नायासम्	स्नायास्व	स्नायास्म

अथवा

प्र० पु०	स्नेयात्	स्नेयास्ताम्	स्नेयासु:
म० पु०	स्नेया:	स्नेयास्तम्	स्नेयास्त
उ० पु०	स्नेयासम्	स्नेयास्व	स्नेयास्म

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अस्नास्यत्	अस्नास्यताम्	अस्नास्यन्
म० पु०	अस्नास्य:	अस्नास्यतम्	अस्नास्यत
उ० पु०	अस्नास्यम्	अस्नास्याव	अस्नास्याम

परस्मैपदी

स्वप्—सोना

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	स्वपिति	स्वपित:	स्वपन्ति
म० पु०	स्वपिषि	स्वपिथ:	स्वपिथ
उ० पु०	स्वपिमि	स्वपिव:	स्वपिम:

परस्मैपदी

हा—छोड़ना

वर्तमान-लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहाति	जहितः / जहीतः	जहति
म० पु०	जहासि	जहिथः / जहीथः	जहिथ / जहीथ
उ० पु०	जहामि	जहिवः / जहीवः	जहिमः / जहीमः

आज्ञा—लोट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जहातु / जहितात् / जहीतात्	जहिताम् / जहीताम्	जहतु
म० पु०	जहाहि / जहिहि, जहीहि / जहितात्, जहीतात्	जहितम् / जहीतम्	जहित / जहीत
उ० पु०	जहानि	जहाव	जहाम

विधिलिङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जह्यात्	जह्याताम्	जह्युः
म० पु०	जह्याः	जह्यातम्	जह्यात
उ० पु०	जह्याम्	जह्याव	जह्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	अजहात्	अजहीताम् / अजहिताम्	अजहुः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	स्वपितु	स्वपिताम्	स्वपन्तु
म० पु०	स्वपिहि	स्वपितम्	स्वपित
उ० पु०	स्वपानि	स्वपाव	स्वपाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	स्वप्यात्	स्वप्याताम्	स्वप्यु
म० पु०	स्वप्या	स्वप्यातम्	स्वप्यात
उ० पु०	स्वप्याम्	स्वप्याव	स्वप्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अस्वपीत्, अस्वपत्	अस्वपिताम्	अस्वपन्
म० पु०	अस्वपी, अस्वप	अस्वपितम्	अस्वपित
उ० पु०	अस्वपम्	अस्वपिव	अस्वपिम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	सुष्वाप	सुषुपतु	सुषुपु
म० पु०	सुष्वपिथ, सुष्वप्थ	सुषुपथु	सुषुप
उ० पु०	सुष्वाप, सुष्वप	सुषुपिव	सुषुपिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अस्वाप्सीत्	अस्वाप्ताम्	अस्वाप्सु
म० पु०	अस्वाप्सी	अस्वाप्तम्	अस्वाप्त
उ० पु०	अस्वाप्सम्	अस्वाप्स्व	अस्वाप्स्म

म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयु
म० पु०	दीव्ये	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्य	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिवतु	दिदिवु
म० पु०	दिदेविथ	दिदिवथु	दिदिव
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषु
म० पु०	अदेवी	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म
लुट्—	देविता	देवितारौ	देवितार
लृट्—	देविष्यति	देविष्यत	देविष्यन्ति
आशी०—	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासु
लृङ्—	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्

		एकवचन	
लुट्—	प्र० पु०	,,	स्वप्ता
लृट्—	,,	,,	स्वप्स्
आशीर्लिङ्—	,,	,,	सुप्या
लृङ्—	,,	,,	अस्व

परस्मैपदी

श्वस्—साँस लेना

		एकवचन	
लट्—	प्र० पु०	,,	श्वसिति।
लोट्—	,,	,,	श्वसितु।
विधि—	,,	,,	श्वस्यात्।
लङ्—	,,	,,	अश्वसीत्
लिट्—	,,	,,	शश्वास
लुङ्—	,,	,,	अश्वसीत्
लुट्—	,,	,,	श्वसिता
लृट्—	,,	,,	श्वसिष्य

श्वस् के रूप स्वप् के समान होते हैं

परस्मैपदी

हन्—मार डालना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	हन्ति	हत
म० पु०	हसि	हथ
उ० पु०	हन्मि	हन्व

म० पु०	हेया	हेयास्तम्	हेयास्त
उ० पु०	हेयासम्	हेयास्त्र	हेयास्म

क्रियातिपत्ति—लङ्

प्र० पु०	अहास्यत्	अहास्यताम्	अहास्यन्
म० पु०	अहास्य	अहास्यतम्	अहास्यत
उ० पु०	अहास्यम्	अहास्याव	अहास्याम

(४) दिवादिगण

१५१—इस गण की प्रथम धातु दिव् (जुआ खेलना) है इस कारण इसका नाम दिवादिगण है। इस में १४० धातुएँ हैं। इस गण की धातुओं और प्रत्ययों के बीच में श्यन् (य) जोड़ा जाता है, जैसे—मन् धातु से मन्+य+ते=मन्यते। कुप्+य+ति=कुप्यति।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओं के रूप दिखाए जाते हैं—

परस्मैपदी

(क) दिव्—जुआ खेलना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	दीव्यति	दीव्यत	दीव्यन्ति
म० पु०	दीव्यसि	दीव्यथ	दीव्यथ
उ० पु०	दीव्यामि	दीव्याव	दीव्याम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीव्यतु,दीव्यतात्	दीव्यताम्	दीव्यन्तु

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	हन्तु, हतात्	हताम्	घ्नन्तु
म० पु०	जहि, हतात्	हतम्	हत
उ० पु०	हनानि	हनाव	हनाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	हन्यात्	हन्याताम्	हन्युः
म० पु०	हन्याः	हन्यातम्	हन्यात
उ० पु०	हन्याम्	हन्याव	हन्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अहन्	अहताम्	अघ्नन्
म० पु०	अहन्	अहतम्	अहत
उ० पु०	अहनम्	अहन्व	अहन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जघान	जघ्नतुः	जघ्नुः
म० पु०	जघनिथ, जघन्थ	जघ्नथुः	जघ्न
उ० पु०	जघान, जघन	जघ्निव	जघ्निम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवधीत्	अवधिष्टाम्	अवधिषुः
म० पु०	अवधीः	अवधिष्टम्	अवधिष्ट
उ० पु०	अवधिषम्	अवधिष्व	अवधिष्म

म० पु०	दीव्य, दीव्यतात्	दीव्यतम्	दीव्यत
उ० पु०	दीव्यानि	दीव्याव	दीव्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीव्येत्	दीव्येताम्	दीव्येयु
म० पु०	दीव्ये	दीव्येतम्	दीव्येत
उ० पु०	दीव्येयम्	दीव्येव	दीव्येम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीव्यत्	अदीव्यताम्	अदीव्यन्
म० पु०	अदीव्य	अदीव्यतम्	अदीव्यत
उ० पु०	अदीव्यम्	अदीव्याव	अदीव्याम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दिदेव	दिदिवतु	दिदिवु
म० पु०	दिदेविथ	दिदिवथु	दिदिव
उ० पु०	दिदेव	दिदिविव	दिदिविम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदेवीत्	अदेविष्टाम्	अदेविषु
म० पु०	अदेवी	अदेविष्टम्	अदेविष्ट
उ० पु०	अदेविषम्	अदेविष्व	अदेविष्म
लुट्—	देविता	देवितारौ	देवितार
लृट्—	देविष्यति	देविष्यत	देविष्यन्ति
आशी०—	दीव्यात्	दीव्यास्ताम्	दीव्यासु
लृङ्—	अदेविष्यत्	अदेविष्यताम्	अदेविष्यन्

उ० पु०	दध्याम्	दध्याव	दध्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदधात्	अधत्ताम्	अदधुः
म० पु०	अदधाः	अधत्तम्	अधत्त
उ० पु०	अदधाम्	अदध्व	अदध्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दधौ	दधतुः	दधुः
म० पु०	दधिथ, दधाथ	दधथुः	दध
उ० पु०	दधौ	दधिव	दधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अधात्	अधाताम्	अधुः
म० पु०	अधाः	अधातम्	अधात
उ० पु०	अधाम्	अधाव	अधाम

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	धाता	धातारौ	धातारः
म० पु०	धातासि	धातास्थः	धातास्थ
उ० पु०	धातास्मि	धातास्वः	धातास्मः

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	धास्यति	धास्यतः	धास्यन्ति
म० पु०	धास्यसि	धास्यथः	धास्यथ
उ० पु०	धास्यामि	धास्यावः	धास्यामः

आत्मनेपदी

(ख) जन्—पैदा होना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जायते	जायेते	जायन्ते
म० पु०	जायसे	जायेथे	जायध्वे
उ० पु०	जाये	जायावहे	जायामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जायताम्	जायेताम्	जायन्ताम्
म० पु०	जायस्व	जायेथाम्	जायध्वम्
उ० पु०	जायै	जायावहै	जायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जायेत	जायेयाताम्	जायेरन्
म० पु०	जायेथा	जायेयाथाम्	जायेध्वम्
उ० पु०	जायेय	जायेवहि	जायेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजायत	अजायेताम्	अजायन्त
म० पु०	अजायथा	अजायेथाम्	अजायध्वम्
उ० पु०	अजाये	अजायावहि	अजायामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिढ्वे

उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अजनि, अजनिष्ट	अजनिषाताम्	अजनिषत
म० पु०	अजनिष्ठाः	अजनिषाथाम्	अजनिढ्वम्
उ० पु०	अजनिषि	अजनिष्वहि	अजनिष्महि
लुट्—	जनिता	जनितारौ	जनितारः
लृट्—	जनिष्यते	जनिष्येते	जनिष्यन्ते
आशी०—	जनिषीष्ट	जनिषीयास्ताम्	जनिषीरन्
लृङ्—	अजनिष्यत	अजनिष्येताम्	अजनिष्यन्त

परस्मैपदी

(ग) कुप्—कोप करना

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	कुप्यति	कुप्यतः	कुप्यन्ति
म० पु०	कुप्यसि	कुप्यथः	कुप्यथ
उ० पु०	कुप्यामि	कुप्यावः	कुप्यामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुप्यतु	कुप्यताम्	कुप्यन्तु
म० पु०	कुप्य	कुप्यतम्	कुप्यत
उ० पु०	कुप्यानि	कुप्याव	कुप्याम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुप्येत्	कुप्येताम्	कुप्येयु
म० पु०	कुप्ये	कुप्येतम्	कुप्येत
उ० पु०	कुप्येयम्	कुप्येव	कुप्येम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकुप्यत्	अकुप्यताम्	अकुप्यन्
म० पु०	अकुप्य	अकुप्यतम्	अकुप्यत
उ० पु०	अकुप्यम्	अकुप्याव	अकुप्याम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चुकोप	चुकुपतु	चुकुपु
म० पु०	चुकोपिथ	चुकुपथु	चुकुप
उ० पु०	चुकोप	चुकुपिव	चुकुपिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकुपत्	अकुपताम्	अकुपन्
म० पु०	अकुप	अकुपतम्	अकुपत
उ० पु०	अकुपम्	अकुपाव	अकुपाम
लुट्—	कोपिता	कोपितारौ	कोपितार
लट्—	कोपिष्यति	कोपिष्यत	कोपिष्यन्ति
आशी०—	कुप्यात्	कुप्यास्ताम्	कुप्यासु
लृङ्—	अकोपिष्यत्	अकोपिष्यताम्	अकोपिष्यन्

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनोतु	चिनुताम्	चिन्वन्तु
म० पु०	चिनु	चिनुतम्	चिनुत
उ० पु०	चिनवानि	चिनवाव	चिनवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिनुयात्	चिनुयाताम्	चिनुयुः
म० पु०	चिनुयाः	चिनुयातम्	चिनुयात
उ० पु०	चिनुयाम्	चिनुयाव	चिनुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचिनोत्	अचिनुताम्	अचिन्वन्
म० पु०	अचिनोः	अचिनुतम्	अचिनुत
उ० पु०	अचिनवम्	अचिन्व	अचिन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिकाय	चिक्यतुः	चिक्युः
म० पु०	चिकयिथ चिकेथ	चिक्यथुः	चिक्य
उ० पु०	चिकाय, चिकय	चिक्यिव	चिक्यिम

अथवा

प्र० पु०	चिचाय	चिच्यतुः	चिच्युः
म० पु०	चिचयिथ, चिचेथ	चिच्यथुः	चिच्य
उ० पु०	चिचाय, चिचय	चिच्यिव	चिच्यिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचैषीत्	अचैष्टाम्	अचैषुः

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

(व) विद्—होना

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	विद्यते	विद्येते	विद्यन्ते
म० पु०	विद्यसे	विद्येथे	विद्यध्वे
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहे	विद्यामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	विद्यताम्	विद्येताम्	विद्यन्ताम्
म० पु०	विद्यस्व	विद्येथाम्	विद्यध्वम्
उ० पु०	विद्ये	विद्यावहै	विद्यामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	विद्येत	विद्येयाताम्	विद्येरन्
म० पु०	विद्येथा	विद्येयाथाम्	विद्येध्वम्
उ० पु०	विद्येय	विद्येवहि	विद्येमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अविद्यत	अविद्येताम्	अविद्यन्त
म० पु०	अविद्यथा	अविद्येथाम्	अविद्यध्वम्
उ० पु०	अविद्ये	अविद्यावहि	अविद्यामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विविदे	विविदाते	विविदिरे

म० पु०	अचैषी	अचैष्टम्	अचैष्ट
उ० पु०	अचैषम्	अचैष्व	अचैष्म
लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतार.
लृट्—	चेष्यति	चेष्यत	चेष्यन्ति
आशी०—	चीयात्	चीयास्ताम्	चीयासु
लृङ्—	अचेष्यत्	अचेष्यताम्	अचेष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	चिनुते	चिन्वाते	चिन्वते
म० पु०	चिनुषे	चिन्वाथे	चिनुध्वे
उ० पु०	चिन्वे	चिनुवहे, चिन्वहे	चिनुमहे, चिन्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चिनुताम्	चिन्वाताम्	चिन्वताम्
म० पु०	चिनुष्व	चिन्वाथाम्	चिनुध्वम्
उ० पु०	चिनवै	चिनवावहै	चिनवामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चिन्वीत	चिन्वीयाताम्	चिन्वीरन्
म० पु०	चिन्वीथा	चिन्वीयाथाम्	चिन्वीध्वम्
उ० पु०	चिन्वीय	चिन्वीवहि	चिन्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचिनुत	अचिन्वाताम्	अचिन्वत

म० पु०	विविदिषे	विविदाथे	विविदिध्वे
उ० पु०	विविदे	विविदिवहे	विविदिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवित्त	अवित्साताम्	अवित्सत
म० पु०	अवित्था	अवित्साथाम्	अविद्ध्वम्
उ० पु०	अवित्सि	अवित्स्वहि	अवित्स्महि
लुट्—	वेत्ता	वेत्तारौ	वेत्तार
लृट्—	वेत्स्यते	वेत्स्येते	वेत्स्यन्ते
आशी०—	वित्सीष्ट	वित्सीयास्ताम्	वित्सीरन्
लृङ्—	अवेत्स्यत	अवेत्स्येताम	अवेत्स्यन्त

१५२—नीचे कुछ मुख्य धातुओं की सूची दी जाती है।

क्रम् (प०)—जाना। क्राम्यति। लुट्—क्रमिता, क्रन्ता। लृट्—क्रमिष्यति। आशी०—क्रम्यात्। लङ्—अक्रमिष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्राम	चक्रमतु	चक्रमु
म० पु०	चक्रमिथ	चक्रमथु	चक्रम
उ० पु०	चक्राम, चक्रम	चक्रमिव	चक्रमिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अक्रमीत्	अक्रमिष्टाम्	अक्रमिषु
म० पु०	अक्रमी	अक्रमिष्टम्	अक्रमिष्ट
उ० पु०	अक्रमिषम्	अक्रमिष्व	अक्रमिष्म

म० पु०	अचिनुथा	अचिन्वाथाम्	अचिनुध्वम्
उ० पु०	अचिन्वि	अचिन्वहि	अचिन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

अथवा

प्र० पु०	चिच्ये	चिच्याते	चिच्यिरे
म० पु०	चिच्यिषे	चिच्याथे	चिच्यिध्वे
उ० पु०	चिच्ये	चिच्यिवहे	चिच्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचेष्ट	अचेषाताम्	अचेषत
म० पु०	अचेष्ठाः	अचेषाथाम्	अचेढ्वम्
उ० पु०	अचेषि	अचेष्वहि	अचेष्महि
लुट्—	चेता	चेतारौ	चेतारः
लृट्—	चेष्यते	चेष्येते	चेष्यन्ते
आशी०—	चेषीष्ट	चेषीयास्ताम्	चेषीरन्
लृङ्—	अचेष्यत	अचेष्येताम्	अचेष्यन्त

क्रुध् (प०)—गुस्सा करना। क्रुध्यति। लिट्—चुक्रोध। लुङ्—अक्रुधत्। लुट्—क्रोद्धा। लृट्—क्रोत्स्यति। आशी०—क्रुध्यात्। लृङ्—अक्रोत्स्यत्।

क्लिश (आत्म०)—दुःखी होना, क्लेश पाना। क्लिश्यते। लुट्—क्लेशिता। लृट्— क्लेशिष्यते। आशी०—क्लेशिषीष्ट। लृङ्—अक्लेशिष्यत

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्लेश	चिक्लिशतुः	चिक्लिशुः
म० पु०	चिक्लेशिथ चिक्लेष्ठ	चिक्लिशथुः	चिक्लिश
उ० पु०	चिक्लेश	चिक्लिशिव चिक्लिश्व	चिक्लिशिम चिक्लिश्म
लुङ्	प्र० पु०	एकवचन	अक्लेशिष्ट

क्षम् (प०)—क्षमा करना। क्षाम्यति। लुट्—क्षमिता अथवा क्षन्ता।

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	क्षमिष्यति	क्षमिष्यतः	क्षमिष्यन्ति
म० पु०	क्षमिष्यसि	क्षमिष्यथः	क्षमिष्यथ
उ० पु०	क्षमिष्यामि	क्षमिष्यावः	क्षमिष्यामः

अथवा

प्र० पु०	क्षंस्यति	क्षंस्यतः	क्षंस्यन्ति
म० पु०	क्षंस्यसि	क्षंस्यथः	क्षंस्यथ
उ० पु०	क्षंस्यामि	क्षंस्यावः	क्षंस्यामः

आशी०— क्षम्यात्। लृङ्—अक्षमिष्यत्, अक्षंस्यत्

उभयपदी

(ग) वृ—चुनना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणोति	वृणुत	वृण्वन्ति
म० पु०	वृणोषि	वृणुथ	वृणुथ
उ० पु०	वृणोमि	वृणुव , वृण्व	वृणुम , वृण्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणोतु	वृणुताम्	वृण्वन्तु
म० पु०	वृणु	वृणुतम्	वृणुत
उ० पु०	वृणवानि	वृणवाव	वृणवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृणुयात्	वृणुयाताम्	वृणुयुः
म० पु०	वृणुयाः	वृणुयातम्	वृणुयात
उ० पु०	वृणुयाम्	वृणुयाव	वृणुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अवृणोत्	अवृणुताम्	अवृण्वन्
म० पु०	अवृणोः	अवृणुतम्	अवृणुत
उ० पु०	अवृणवम्	अवृणुव, अवृण्व	अवृणुम, अवृण्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ववार	वव्रतुः	वव्रुः

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्षाम	चक्षमतु	चक्षमु
म० पु०	चक्षमिथ / चक्षन्थ	चक्षमथु	चक्षम
उ० पु०	चक्षाम / चक्षम	चक्षमिव / चक्षण्व	चक्षमिम / चक्षण्म

लुङ्—अक्षमत् अक्षमताम् अक्षमन् ।

क्षुध् (प०)—भूखा होना । क्षुध्यति । लिट्—चुक्षोध । लुङ्—अक्षुधत् । लुट्—क्षोद्धा । लृट्—क्षोत्स्यति । आशी०—क्षुध्यात् । लृङ्—अक्षोत्स्यत् ।

खिद् (आत्म०)—दुःखी होना । खिद्यते । लिट्—चिखिदे । लुङ्—अखैत्सीत् । लुट्—खेत्ता । लृट्—खेत्स्यते । आशी०—खित्सीष्ट । लृङ्—अखेत्स्यत ।

तुष् (प०)—प्रसन्न होना । तुष्यति । लिट्—तुतोष । लुङ्—अतुषत् । लुट्—तोष्टा । लृट्—तोक्ष्यति । आशी०—तुष्यात् । लृङ्—अतोक्ष्यत् ।

दम् (प०)—दमन करना, दबाना । दाम्यति । लिट्—ददाम । लुङ्—अदमत् । लुट्—दमिता । लृट्—दमिष्यति । आशी०—दम्यात् । लृङ्—अदमिष्यत् ।

दुष् (प०)—अशुद्ध होना । दुष्यति । लिट्—दुदोष । लुङ्—अदुषत् । लुट्—दोष्टा । लृट्—दोक्ष्यति । आशी०—दुष्यात् । लृङ्—अदोक्ष्यत् ।

म० पु०	ववरिथ	वव्रथु	वव्र
उ० पु०	ववार, ववर	वव्रिव	वव्रिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवारीत्	अवारिष्टाम्	अवारिषु
म० पु०	अवारी	अवारिष्टम्	अवारिष्ट
उ० पु०	अवारिषम्	अवारिष्व	अवारिष्म
लुट्—	वरिता / वरीता	वरितारौ / वरीतारौ	वरितार / वरीतार
लट्—	वरिष्यति / वरीष्यति	वरिष्यत / वरीष्यत	वरिष्यन्ति / वरीष्यन्ति
आशी०—	व्रियात्	व्रियास्ताम्	व्रियासु
लङ्—	अवरिष्यत् / अवरीष्यत्	अवरिष्यताम् / अवरीष्यताम्	अवरिष्यन् / अवरीष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	वृणुते	वृण्वाते	वृण्वते
म० पु०	वृणुषे	वृण्वाथे	वृणुध्वे
उ० पु०	वृण्वे	वृणुवहे, वृण्वहे	वृणुमहे,वृण्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	वृणुताम्	वृण्वाताम्	वृण्वताम्
म० पु०	वृणुष्व	वृण्वाथाम्	वृणुध्वम्
उ० पु०	वृणवै	वृणवावहै	वृणवामहै

द्रुह् (प०)—द्रोह करना। द्रुह्यति। लुट्—द्रोहिता, द्रोग्धा, द्रोढा। लृट्—द्रोहिष्यति, ध्रोक्ष्यति। आशी०—द्रुह्यात्। लृङ्—अद्रोहिष्यत्, अध्रोक्ष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहतु	दुद्रुहु
म० पु०	दुद्रोहिथ दुद्रोढ दुद्रोग्ध	दुद्रुहथु	दुद्रुह
उ० पु०	दुद्रोह	दुद्रुहिव दुद्रुह्व	दुद्रुहिम दुद्रुह्म

नश् (प०)—नाश हो जाना। नश्यति। लुट्—नशिता, नंष्टा। लृट्—नशिष्यति, नंक्ष्यति। आशी०—नश्यात्। लृङ्—अनशिष्यत्, अनंक्ष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ननाश	नेशतु	नेशु
म० पु०	नेशिथ ननंष्ठ	नेशथु	नेश
उ० पु०	ननाश ननश	नेशिव नेश्व	नेशिम नेश्म

नृत् (प०)—नाचना। नृत्यति। लुट्—नर्तिता। लृट्—नर्तिष्यति नर्त्स्यति। आशी०—नृत्यात्।

लिट्

प्र० पु०	ननर्त	ननृततु	ननृतु

विधिलिङ्

प्र० पु०	वृण्वीत	वृण्वीयाताम्	वृण्वीरन्
म० पु०	वृण्वीथा	वृण्वीयाथाम्	वृण्वीध्वम्
उ० पु०	वृण्वीय	वृण्वीवहि	वृण्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अवृणुत	अवृण्वाताम्	अवृण्वत
म० पु०	अवृणुथा	अवृण्वाथाम्	अवृणुध्वम्
उ० पु०	अवृण्वि	अवृण्वहि	अवृण्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	वव्रे	वव्राते	वव्रिरे
म० पु०	ववृषे	वव्राथे	ववृध्वे
उ० पु०	वव्रे	ववृवहे	ववृमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अवरिष्ट	अवरिषाताम्	अवरिषत
म० पु०	अवरिष्ठा	अवरिषाथाम्	अवरिध्वम्
उ० पु०	अवरिषि	अवरिष्वहि	अवरिष्महि

या

प्र० पु०	अवरीष्ट	अवरीषाताम्	अवरीषत
म० पु०	अवरीष्ठा	अवरीषाथाम्	अवरीध्वम्
उ० पु०	अवरीषि	अवरीष्वहि	अवरीष्महि

अथवा

प्र० पु०	अवृत	अवृषाताम्	अवृषत

म० पु०	ननर्तिथ	ननृतथु	ननृत
उ० पु०	ननर्त	ननृतिव	ननृतिम

लुङ्

अनर्तीत् अनर्तिष्टाम् अनर्तिषु, इत्यादि।

भ्रम् (प०)—घूमना। भ्राम्यति। लुट्—भ्रमिता। लृट्—भ्रमिष्यति। आशी०—भ्रम्यात्।

लिट्

प्र० पु०	बभ्राम	बभ्रमतु: / भ्रेमतु	बभ्रमु / भ्रेमु
म० पु०	बभ्रमिथ / भ्रेमिथ	बभ्रमथु / भ्रेमथु:	बभ्रम / भ्रेम
उ० पु०	बभ्राम / बभ्रम	बभ्रमिव / भ्रेमिव	बभ्रमिम / भ्रेमिम

लुङ्— अभ्रमत्

मन् (आत्म०)—समझना। मन्यते। लुट्—मन्ता। लृट्—मंस्यते। आशी०—मंसीष्ट। लिट्—मेने मेनाते मेनिरे। लुङ्—अमस्त अमसाताम् अमसत अमस्था अमसाथाम् अमन्ध्वम् अमसि अमस्वहि अमस्महि।

युध् (आ०)—सङ्ग्राम करना। युध्यते। लुट्—योद्धा। लृट्—योत्स्यते। आशी०—युत्सीष्ट। लृङ्—अयोत्स्यत। लिट्—युयुधे। लुङ्—अयुद्ध अयुत्साताम् अयुत्सत।

व्यध् (प०)—वेधना। विध्यति। लुट्—व्यद्धा। लृट्—व्यत्स्यति। आशी० विध्यात्।

म० पु०	अवृथा	अवृषाथाम्	अवृढ्वम्
उ० पु०	अवृषि	अवृष्वहि	अवृष्महि
लुट्—	वरिता वरीता	वरितारौ वरीतारौ	वरितार वरीतार
लृट्—	वरिष्यते वरीष्यते	वरिष्येते वरीष्येते	वरिष्यन्ते वरीष्यन्ते
आशी०—	वरिषीष्ट वृषीष्ट	वरिषीयास्ताम् वृषीयास्ताम्	वरिषीरन् वृषीरन्
लृङ्—	अवरिष्यत अवरीष्यत	अवरिष्येताम् अवरीष्येताम्	अवरिष्यन्त अवरीष्यन्त

परस्मैपदी

(ग) शक्—सकना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	शक्नोति	शक्नुत	शक्नुवन्ति
म० पु०	शक्नोषि	शक्नुथ	शक्नुथ
उ० पु०	शक्नोमि	शक्नुव	शक्नुम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	शक्नोतु	शक्नुताम्	शक्नुवन्तु
म० पु०	शक्नुहि	शक्नुतम्	शक्नुत
उ० पु०	शक्नवानि	शक्नवाव	शक्नवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	शक्नुयात्	शक्नुयाताम्	शक्नुयु

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	विव्याध	विविधतु	विविधु
म० पु०	विव्यधिथ, विव्यद्ध	विविधथु	विविध
उ० पु०	विव्याध, विव्यध	विविधिव	विविधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अव्यात्सीत्	अव्याताम्	अव्यात्सु
म० पु०	अव्यात्सी	अव्यात्तम्	अव्यात्त
उ० पु०	अव्यात्सम्	अव्यात्स्व	अव्यात्स्म

शुष् (प०)—सूखना। शुष्यति। लुट्—शोष्टा। लृट्—शोक्ष्यति। आशी०—शुष्यात्। लिट्—शुशोष। लुङ्—अशुषत्।

सिध् (प०)—सिद्ध करना, कामयाब होना। सिध्यति। लुट्—सेद्धा। आशी०—सिध्यात्। लिट्—सिषेध। लुङ्—असिधत्।

सिव् (प०)—सीना। सीव्यति। लुट्—सेविता। आशी०—सीव्यात्। लिट्—सिषेव। लुङ्—असेवीत्।

हृष् (प०)—हर्षित होना। हृष्यति। लुट्—हर्षिता। लृट्—हर्षिष्यति। आशी०—हृष्यात्। लिट्—जहर्ष। लुङ्—अहृषत्।

(५) स्वादिगण

१५३—इस गण की प्रथम धातु सु (रस निकालना) है, इस कारण इसका नाम स्वादि पड़ा। इसमें ३५ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच में इस गण में श्नु (नु) जोड़ा जाता है। उदाहरणार्थ—सु+नु+ते = सुनुते आदि।

म० पु०	शक्नुयाः	शक्नुयातम्	शक्नुयात
उ० पु०	शक्नुयाम्	शक्नुयाव	शक्नुयाम

अनद्यतनभूत लङ्

प्र० पु०	अशक्नोत्	अशक्नुताम्	अशक्नुवन्
म० पु०	अशक्नोः	अशक्नुतम्	अशक्नुत
उ० पु०	अशक्नवम्	अशक्नुव	अशक्नुम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	शशाक	शेकतुः	शेकुः
म० पु०	शेकिथ, शशक्थ	शेकथुः	शेक
उ० पु०	शशाक, शशक	शेकिव	शेकिम

सामान्यभूत लुङ्

प्र० पु०	अशकत्	अशकताम्	अशकन्
म० पु०	अशकः	अशकतम्	अशकत
उ० पु०	अशकम्	अशकाव	अशकाम
लुट्—	शक्ता	शक्तारौ	शक्तारः
लृट्—	शक्ष्यति	शक्ष्यतः	शक्ष्यन्ति
आशीर्लिङ्—	शक्यात्	शक्यास्ताम्	शक्यासुः
लृङ्—	अशक्ष्यत्	अशक्ष्यताम्	अशक्ष्यन्

(६) तुदादिगण

२५४—इस गण की प्रथम धातु तुद् (पीड़ा पहुँचाना) है इसी से इस का नाम तुदादिगण है। इस में १५८ धातुएँ हैं। धातु और

नोट—प्रत्यय के व्, म् के पूर्व विकल्प मे नु का उ गिरा कर केवल न् जोड़ा जाता है, (जैसे—सु+नु+व =सुनुव, सुन्व अथवा सुनुम सुन्म) किन्तु यदि नु के पूर्व कोई व्यजन हो तो उ नहीं गिराया जाता। (जैसे—साध्+नु+म =साध्नुम)।

नीचे इस गण की मुख्य २ धातुओ के रूप दिये जाते हैं।

परस्मैपदी

(क) आप्—पाना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	आप्नोति	आप्नुत	आप्नुवन्ति
म० पु०	आप्नोषि	आप्नुथ	आप्नुथ
उ० पु०	आप्नोमि	आप्नुव	आप्नुम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	आप्नोतु	आप्नुताम्	आप्नुवन्तु
म० पु०	आप्नुहि	आप्नुतम्	आप्नुत
उ० पु०	आप्नवानि	आप्नवाव	आप्नवाम

विधि लिङ्

प्र० पु०	आप्नुयात्	आप्नुयाताम्	आप्नुयुः
म० पु०	आप्नुयाः	आप्नुयातम्	आप्नुयात
उ० पु०	आप्नुयाम्	आप्नुयाव	आप्नुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	आप्नोत्	आप्नुताम्	आप्नुवन्
म० पु०	आप्नोः	आप्नुतम्	आप्नुत

प्रत्यय के बीच मे इस गण मे श (अ) जोडा जाता है। भ्वादिगण म भी अ जोडा जाता है किन्तु वहाँ धातु की उपधा को अथवा अन्त के स्वर को गुण प्राप्त होता है, यहां तुदादिगण मे ऐसा नहीं होता। यहाँ अन्तिम इ ई को इय्, उ ऊ को उव् और ऋ को रिय् और ॠ को इर् हो जाता है, जैसे—रि+अ+ति=रियति। धु+अ+ति= धुवति मृ+अ+ते=म्रियते। गृ+अ+ति=गिरति। कृप् धातु भ्वादिगण तथा तुदादिगण दोनो मे है, भ्वादि में कर्पति आदि और तुदादि मे कृपति आदि रूप होते हैं

नीचे मुख्य धातुओ के रूप दिये जाते हैं।

उभयपदी

तुद्—पीडा पहुँचाना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदति	तुदत	तुदन्ति
म० पु०	तुदसि	तुदथ	तुदथ
उ० पु०	तुदामि	तुदाव	तुदाम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तुदतु, तुदतात्	तुदताम्	तुदन्तु
म० पु०	तुद तुदतात्	तुदतम्	तुदत
उ० पु०	तुदानि	तुदाव	तुदाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	तुदेत्	तुदेताम्	तुदेयुः
म० पु०	तुदेः	तुदेतम्	तुदेत
उ० पु०	तुदेयम्	तुदेव	तुदेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतुदत्	अतुदताम्	अतुदन्
म० पु०	अतुदः	अतुदतम्	अतुदत
उ० पु०	अतुदम्	अतुदाव	अतुदाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तुतोद	तुतुदतुः	तुतुदुः
म० पु०	तुतोदिथ	तुतुदथुः	तुतुद
उ० पु०	तुतोद, तुतुद	तुतुदिव	तुतुदिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतौत्सीत्	अतौत्ताम्	अतौत्सुः
म० पु०	अतौत्सीः	अतौत्तम्	अतौत्त
उ० पु०	अतौत्सम्	अतौत्स्व	अतौत्स्म

लुट्—तोत्ता। लृट्—तोत्स्यति। आशी०—तुद्यात्। लृङ्—अतोत्स्यत्।

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	तुदते	तुदेते	तुदन्ते
म० पु०	तुदसे	तुदेथे	तुदध्वे
उ० पु०	तुदे	तुदावहे	तुदामहे

आज्ञा—लोट्

छिनत्तु	छिन्ताम्	छिन्दन्तु
छिन्द्धि	छिन्तम्	छिन्त
छिनदानि	छिनदाव	छिनदाम

विधिलिङ्

छिन्द्यात्	छिन्द्याताम्	छिन्द्युः
छिन्द्याः	छिन्द्यातम्	छिन्द्यात
छिन्द्याम्	छिन्द्याव	छिन्द्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

अच्छिनत्	अच्छिन्ताम्	अच्छिन्दन्
अच्छिनः अच्छिनत्	अच्छिन्तम्	अच्छिन्त
अच्छिनदम्	अच्छिन्द्व	अच्छिन्द्म

परोक्षभूत—लिट्

चिच्छेद	चिच्छिदतुः	चिच्छिदुः
चिच्छेदिथ	चिच्छिदथुः	चिच्छिद
चिच्छेद	चिच्छिदिव	चिच्छिदिम

सामान्यभूत—लुङ्

अच्छिदत्	अच्छिदताम्	अच्छिदन्
अच्छिदः	अच्छिदतम्	अच्छिदत
अच्छिदम्	अच्छिदाव	अच्छिदाम

अथवा

अच्छैत्सीत्	अच्छैत्ताम्	अच्छैत्सुः

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	ऐपीत्	ऐपिष्टाम्	ऐपिषु
म० पु०	ऐपी	ऐपिष्टम्	ऐपिष्ट
उ० पु०	ऐपिषम्	ऐपिष्व	ऐपिष्म

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	एषिता / एष्टा	एषितारौ / एष्टारौ	एषितार / एष्टार
म० पु०	एषितासि / एष्टासि	एषितास्थ / एष्टास्थ	एषितास्थ / एष्टास्थ
उ० पु०	एषितास्मि / एष्टास्मि	एषितास्व / एष्टास्व	एषितास्म / एष्टास्म

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	एषिष्यति	एषिष्यत	एषिष्यन्ति
म० पु०	एषिष्यसि	एषिष्यथ	एषिष्यथ
उ० पु०	एषिष्यामि	एषिष्याव	एषिष्याम
आशी०—	इष्यात्।	लृङ्—	ऐषिष्यत्।

१५५—तुदादिगण की अन्य मुख्य धातुओं की सूची।

कृत् (प०)—काटना। कृन्तति। लुट्—कर्तिता। लृट्—कर्तिष्यति। आशी०—कृत्यात्। लृङ्—अकर्तिष्यत्। लिट्—चकर्त चकृततु चकृतु। लुङ्—अकर्तीत्।

कृष् (उ०)—जोतना। कृषति, कृषते। लुट्—कर्ष्टा, क्रष्टा लृट्—कर्क्ष्यति, क्रक्ष्यति, कर्क्ष्यते, क्रक्ष्यते। आशी०—कृष्यात्, कृक्षीष्ट। लृङ्—

म० पु०	अच्छैत्सी	अच्छैत्तम्	अच्छैत्त
उ० पु०	अच्छैत्सम्	अच्छैत्स्व	अच्छैत्स्म
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तार
लृट्—	छेत्स्यति	छेत्स्यत	छेत्स्यन्ति
आशी०—	छिद्यात्	छिद्यास्ताम्	छिद्यासु
लृङ्—	अच्छेत्स्यत्	अच्छेत्स्यताम्	अच्छेत्स्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	छिन्ते	छिन्दाते	छिन्दते
म० पु०	छिन्त्से	छिन्दाथे	छिन्द्ध्वे
उ० पु०	छिन्दे	छिन्द्वहे	छिन्द्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	छिन्ताम्	छिन्दाताम्	छिन्दताम्
म० पु०	छिन्त्स्व	छिन्दाथाम्	छिन्द्ध्वम्
उ० पु०	छिनदै	छिनदावहै	छिनदामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	छिन्दीत	छिन्दीयाताम्	छिन्दीरन्
म० पु०	छिन्दीथा	छिन्दीयाथाम्	छिन्दीध्वम्
उ० पु०	छिन्दीय	छिन्दीवहि	छिन्दीमहि

अनद्यतनभूत—लुट्

प्र० पु०	अच्छिन्त	अच्छिन्दाताम्	अच्छिन्दत
म० पु०	अच्छिन्त्था	अच्छिन्दाथाम्	अच्छिन्द्ध्वम्

अकर्षत्, अकर्ष्यत्, अकष्यत, अकक्ष्यत। लिट्—चकर्ष, चकृषे।
लुङ्—अकार्षीत्, अक्राक्षीत्, अकृक्षत्। अकृष्ट, अकृक्षत।

कॄ (प०)—तितर बितर करना। किरति। लुट्—करिता, करीता। लृट्—करिष्यति, करीष्यति। आशी०—कीर्यात्। लृङ्—अकरिष्यत् अकरीष्यत्। लिट्—चकार चकरतु चकरु। चकरिथ। लुङ्—अकारीत् अकारिष्टाम् अकारिषु।

गॄ (प०)—निगलना। गिरति गिरत गिरन्ति तथा गिलति, गिलत गिलन्ति भी। लुट्—गरिता, गरीता। गलिता, गलीता। लृट्—गरिष्यति गरीष्यति। गलिष्यति, गलीष्यति। आशी०—गीर्यात्। लिट्—जगार जगरतु जगरु। जगाल जगलतु। जगरिथ। लुङ्—अगारीत्। अगालीत्।

त्रुट् (प०)—टूट जाना। त्रुटति। लुट्—त्रुटिता। लृट्—त्रुटिष्यति। आशी०—त्रुट्यात्। लिट्—तुत्रोट, तुत्रुटतु तुत्रुटु। तुत्रुटिथ तुत्रुटथु तुत्रुट। लुङ्—अत्रुटीत् अत्रुटिष्टाम् अत्रुटिषु।

प्रच्छ् (प०)—पूछना। पृच्छति पृच्छत पृच्छन्ति। लुट्—प्रष्टा प्रष्टारौ प्रष्टार। लृट्—प्रक्ष्यति। आशी०—पृच्छ्यात्। लृङ्—अप्रक्ष्यत्।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छतु	पप्रच्छु
म० पु०	पप्रच्छिथ, पप्रष्ठ	पप्रच्छथु	पप्रच्छ
उ० पु०	पप्रच्छ	पप्रच्छिव	पप्रच्छिम

उ० पु०	अच्छिन्धि	अच्छिन्द्वहि	अच्छिन्द्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदाते	चिच्छिदिरे
म० पु०	चिच्छिदिषे	चिच्छिदाथे	चिच्छिदिध्वे
उ० पु०	चिच्छिदे	चिच्छिदिवहे	चिच्छिदिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अच्छित्त	अच्छित्साताम्	अच्छित्सत
म० पु०	अच्छित्था	अच्छित्साथाम्	अच्छिद्ध्वम्
उ० पु०	अच्छित्सि	अच्छित्स्वहि	अच्छित्स्महि
लुट्—	छेत्ता	छेत्तारौ	छेत्तार
लृट्—	छेत्स्यते	छेत्स्येते	छेत्स्यन्ते
आशी०—	छित्सीष्ट	छित्सीया ताम्	छित्सीरन्
लृङ्—	अच्छेत्स्यत	अच्छेत्स्येताम्	अच्छेत्स्यन्त

परस्मपदी

(ग) भञ्ज्—तोड़ना

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	भनक्ति	भङ्क्त	भञ्जन्ति
म० पु०	भनक्षि	भङ्क्थ	भङ्क्थ
उ० पु०	भनज्मि	भञ्ज्व	भञ्ज्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भनक्तु, भङ्क्तात्	भङ्क्ताम्	भञ्जन्तु

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अप्राक्षीत्	अप्राष्टाम्	अप्राक्षुः
म० पु०	अप्राक्षीः	अप्राष्टम्	अप्राष्ट
उ० पु०	अप्राक्षम्	अप्राक्ष्व	अप्राक्ष्म

मिल् (उ०)—मिलना। मिलति मिलते। लिट्—मिमेल मिमिलतुः मिमिलुः मिमेलिथ मिमिलथुः मिमिल। मिमेल मिमिलिव मिमिलिम। मिमिले मिमिलाते मिमिलिरे। लुङ्—अमेलीत् अमेलिष्टाम् अमेलिषुः। अमेलिष्ट अमेलिषाताम् अमेलिषत। लुट्—मेलिता। लृट्—मेलिष्यति मेलिष्यते। आशी०—मिल्यात् मेलिषीष्ट। लृङ्—अमेलिष्यत् अमेलिष्यत।

मुच् (उ०)—छोड़ना। मुञ्चति मुञ्चतः मुञ्चन्ति। मुञ्चते मुञ्चेते मुञ्चन्ते। लुट्—मोक्ता। लृट्—मोक्ष्यति मोक्ष्यते। आशी०—मुच्यात् मुक्षीष्ट। लृङ्—अमोक्ष्यत् अमोक्ष्यत।

परोक्षभूत—लिट्, परस्मैपद

प्र० पु०	मुमोच	मुमुचतुः	मुमुचुः
म० पु०	मुमोचिथ	मुमुचथुः	मुमुच
उ० पु०	मुमोच	मुमुचिव	मुमुचिम

परोक्षभूत—लिट् आत्मनेपद

प्र० पु०	मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
म० पु०	मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
उ० पु०	मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे

म० पु०	भङ्ग्धि, भङ्क्तात्	भङ्क्तम्	भङ्क्त
उ० पु०	भनजानि	भनजाव	भनजाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	भञ्ज्यात्	भञ्ज्याताम्	भञ्ज्युः
म० पु०	भञ्ज्याः	भञ्ज्यातम्	भञ्ज्यात
उ० पु०	भञ्ज्याम्	भञ्ज्याव	भञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभनक्	अभङ्क्ताम्	अभञ्जन्
म० पु०	अभनक्	अभङ्क्तम्	अभङ्क्त
उ० पु०	अभनजम्	अभञ्ज्व	अभञ्ज्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बभञ्ज	बभञ्जतुः	बभञ्जुः
म० पु०	बभञ्जिथ, बभङ्क्थ	बभञ्जथुः	बभञ्ज
उ० पु०	बभञ्ज	बभञ्जिव	बभञ्जिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभाङ्क्षीत्	अभाङ्क्ताम्	अभाङ्क्षुः
म० पु०	अभाङ्क्षीः	अभाङ्क्तम्	अभाङ्क्त
उ० पु०	अभाङ्क्षम्	अभाङ्क्ष्व	अभाङ्क्ष्म
लुट्—	भङ्क्ता	भङ्क्तारौ	भङ्क्तारः
लृट्—	भङ्क्ष्यति	भङ्क्ष्यतः	भङ्क्ष्यन्ति
आशी०—	भज्यात्	भज्यास्ताम्	भज्यासुः

सामान्यभूत—लुङ्, परस्मैपद

प्र० पु०	अमुचत्	अमुचताम्	अमुचन्
म० पु०	अमुच	अमुचतम्	अमुचत
उ० पु०	अमुचम्	अमुचाव	अमुचाम

सामान्यभूत—लुङ्, आत्मनेपद

प्र० पु०	अमुक्त	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
म० पु०	अमुक्था	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
उ० पु०	अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि

लिख् (प०)—लिखना। लिखति। लुट्—लेखिता। लृट्—लेखिष्यति। आशी०—लिख्यात्। लृङ्—अलेखिष्यत्। लिट्—लिलेख लिलिखतु लिलिखुः। लिलेखिथ लिलिखथु लिलिख। लुङ्—अलेखीत्।

लिप् (उ०)—लीपना। लिम्पति लिम्पत लिम्पन्ति। लिम्पते लिम्पेते लिम्पन्ते। लुट्—लेप्ता। लृट्—लेप्स्यति लेप्स्यते। आशी०—लिप्यात्। लिप्सीष्ट लिप्सीयास्ताम् लिप्सीरन्। लिट्—लिलेप लिलिपतु लिलिपु। लिलिपे लिलिपाते लिलिपिरे। लुङ्—अलिपत्। अलिपत अलिपेताम् अलिपन्त। अलिप्त अलिप्साताम् अलिप्सत।

विश् (प०)—घुसना। विशति। लुट्—वेष्टा। लृट्—वेक्ष्यति। आशी०—विश्यात्। लृङ्—अवेक्ष्यत्। लिट्—विवेश। लुङ्—अविशत्।

सद् (प०)—दुःखी होना, सहारा लेना, जाना। सीदति। लुट्—सत्ता। लृट्—सत्स्यति। आशी०—सद्यात्। लृङ्—असत्स्यत्। लिट्—

[—	अभङ्क्ष्यत्	अभङ्क्ष्यताम्	अभङ्क्ष्यन्

उभयपदी

(ख) भुज्—रक्षा करना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

पु०	भुनक्ति	भुङ्क्तः	भुञ्जन्ति
पु०	भुनक्षि	भुङ्क्थः	भुङ्क्थ
पु०	भुनज्मि	भुञ्ज्वः	भुञ्ज्मः

आज्ञा—लोट्

पु०	भुनक्तु	भुङ्क्ताम्	भुञ्जन्तु
पु०	भुङ्ग्धि	भुङ्क्तम्	भुङ्क्त
पु०	भुनजानि	भुनजाव	भुनजाम

विधिलिङ्

पु०	भुञ्ज्यात्	भुञ्ज्याताम्	भुञ्ज्युः
पु०	भुञ्ज्याः	भुञ्ज्यातम्	भुञ्ज्यात
पु०	भुञ्ज्याम्	भुञ्ज्याव	भुञ्ज्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

पु०	अभुनक्—ग्	अभुङ्क्ताम्	अभुञ्जन्
पु०	अभुनक्—ग्	अभुङ्क्तम्	अभुङ्क्त
पु०	अभुनजम्	अभुञ्ज्व	अभुञ्ज्म

ससाद सेदतु सेदु । सेदिथ ससथ सेदथु सेद। ससाद, स सेदिव सेदिम । लुङ्—असदत् असदताम् असदन् ।

सिच् (उ०)—छिड़कना, सींचना । सिञ्चति सिञ्चते । लुट्—सेक्ता लृट्—सेक्ष्यति सेक्ष्यते । आशी०—सिच्यात् सिक्षीष्ट । लिट् सिषेच सिषिचतु सिषिचु । सिषेचिथ। लुङ्—असिचत् । असि असिक्त ।

सृज् (प०)—बनाना । सृजति । लुट्—स्रष्टा। लृट्—स्रक्ष्यति । आशी० सृज्यात् । लृङ् अस्रक्ष्यत् । लिट्—ससर्ज ससृजतु ससृजु ससर्जिथ, सस्रष्ठ ससृजथु ससृज । ससर्ज ससृजिव ससृजिम लुङ्—अस्राक्षीत् अस्राष्टाम् ।

स्पृश् (प०)—छूना । स्पृशति । लुट्—स्पर्ष्टा, स्प्रष्टा । लृट्—स्प्रक्ष्यति आशी०—स्पृश्यात् । लिट्—पस्पर्श पस्पृशतु पस्पृशु । पस्पर्शिथ पस्पृशथु पस्पृश । पस्पर्श पस्पृशिव पस्पृशिम । लुङ्- अस्प्राक्षीत् अस्प्राष्टाम् अस्प्राक्षु । अस्प्राक्षी अस्प्राष्टम् अस्प्राष्ट अस्प्राक्षम् अस्प्राक्ष्व अस्प्राक्ष्म, तथा—अस्पार्क्षीत् अस्पार्ष्टाम् अस्पार्क्षु और अस्पृक्षत् अस्पृक्षताम् अस्पृक्षन् ।

स्फुट् (प०)—खुलना, खिलना या फट जाना । स्फुटति । लुट्—स्फुटिता लृट्—स्फुटिष्यति । आशी०—स्फुट्यात् । लिट् पुस्फोट पुस्फुटतु पुस्फुटु । पुस्फुटिथ पुस्फुटथु पुस्फुट । पुस्फोट पुस्फुटिव पुस्फुटिम । लुङ्—अस्फुटीत् अस्फुटिष्टाम् अस्फुटिषु । अस्फुटीः अस्फुटिष्टम् अस्फुटिष्ट । अस्फुटिषम् अस्फुटिष्व अस्फुटिष्म ।

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभोज	बुभुजतुः	बुभुजुः
म० पु०	बुभोजिथ	बुभुजथुः	बुभुज
उ० पु०	बुभोज	बुभुजिव	बुभुजिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभौक्षीत्	अभौक्ताम्	अभौक्षुः
म० पु०	अभौक्षीः	अभौक्तम्	अभौक्त
उ० पु०	अभौक्षम्	अभौक्ष्व	अभौक्ष्म
लुट्—	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
लृट्—	भोक्ष्यति	भोक्ष्यतः	भोक्ष्यन्ति
आशी०—	भुज्यात्	भुज्यास्ताम्	भुज्यासुः
लृङ्—	अभोक्ष्यत्	अभोक्ष्यताम्	अभोक्ष्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान लट्

प्र० पु०	भुङ्क्ते	भुञ्जाते	भुञ्जते
म० पु०	भुङ्क्षे	भुञ्जाथे	भुङ्ग्ध्वे
उ० पु०	भुञ्जे	भुञ्ज्वहे	भुञ्ज्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	भुङ्क्ताम्	भुञ्जाताम्	भुञ्जताम्
म० पु०	भुङ्क्ष्व	भुञ्जाथाम्	भुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	भुनजै	भुनजावहै	भुनजामहै

स्फुर् (प०)—काँपना, फड़कना, लपलपाना, चमकना। स्फुरति। लुट्—स्फुरिता। लृट्—स्फुरिष्यति। आशी०—स्फुर्यात्। लिट्—पुस्फोर पुस्फुरतु पुस्फुर। पुस्फुरिथ। लुङ्—अस्फुरीत् अस्फुरिष्टाम् अस्फुरिषु।

(७) रुधादिगण

१५६—इस गण की प्रथम धातु रुध् (रोकना, घेरना) है, इस कारण इसका नाम रुधादि है। इसमें २५ धातुएँ हैं। धातु के प्रथम स्वर के उपरान्त इस गण में श्नम् (न) अथवा न् जोड़ा जाता है, जैसे—छुद्+ति=छु+न+द्+ति=छु+ण+द्+ति=छुणत्ति। छुद्+यात्=छु+न्+द्+यात्=छुन्द्यात्।

नीचे मुख्य मुख्य धातुओं के रूप दिखाये जाते हैं।

उभयपदी

(क) रुध—रोकना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	रुणद्धि	रुन्द्धः	रुन्धन्ति
म० पु०	रुणत्सि	रुन्द्धः	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणध्मि	रुन्ध्वः	रुन्ध्मः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रुणद्धु	रुन्द्धाम्	रुन्धन्तु

विधिलिङ्

प्र० पु०	भुञ्जीत	भुञ्जीयाताम्	भुञ्जीरन्
म० पु०	भुञ्जीथा	भुञ्जीयाथाम्	भुञ्जीध्वम्
उ० पु०	भुञ्जीय	भुञ्जीवहि	भुञ्जीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अभुङ्क्त	अभुञ्जाताम्	अभुञ्जत
म० पु०	अभुङ्क्था	अभुञ्जाथाम्	अभुङ्ग्ध्वम्
उ० पु०	अभुञ्जि	अभुञ्ज्वहि	अभुञ्ज्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बुभुजे	बुभुजाते	बुभुजिरे
म० पु०	बुभुजिषे	बुभुजाथे	बुभुजिध्वे
उ० पु०	बुभुजे	बुभुजिवहे	बुभुजिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभुक्त	अभुक्षाताम्	अभुक्षत
म० पु०	अभुक्था	अभुक्षाथाम्	अभुग्ध्वम्
उ० पु०	अभुक्षि	अभुक्ष्वहि	अभुक्ष्महि
लुट्—	भोक्ता	भोक्तारौ	भोक्तारः
लृट्—	भोक्ष्यते	भोक्ष्येते	भोक्ष्यन्ते
आशी०—	भुक्षीष्ट	भुक्षीयास्ताम्	भुक्षीरन्
लृङ्—	अभोक्ष्यत	अभोक्ष्येताम्	अभोक्ष्यन्त

म० पु०	रुन्द्धि	रुन्द्धम्	रुन्द्ध
उ० पु०	रुणधानि	रुणधाव	रुणधाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्ध्यात्	रुन्ध्याताम्	रुन्ध्युः
म० पु०	रुन्ध्याः	रुन्ध्यातम्	रुन्ध्यात
उ० पु०	रुन्ध्याम्	रुन्ध्याव	रुन्ध्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरुणत्, अरुणद्	अरुन्द्धाम्	अरुन्धन्
म० पु०	अरुणः, अरुणत्	अरुन्द्धम्	अरुन्द्ध
उ० पु०	अरुणधम्	अरुन्ध्व	अरुन्ध्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुरोध	रुरुधतुः	रुरुधुः
म० पु०	रुरोधिथ	रुरुधथुः	रुरुध
उ० पु०	रुरोध	रुरुधिव	रुरुधिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	{ अरुधत् { अरौत्सीत्	{ अरुधताम् { अरौद्धाम्	{ अरुधन् { अरौत्सुः
म० पु०	{ अरुधः { अरौत्सीः	{ अरुधतम् { अरौद्धम्	{ अरुधत { अरौद्ध
उ० पु०	{ अरुधम् { अरौत्सम्	{ अरुधाव { अरौत्स्व	{ अरुधाम { अरौत्स्म
लुट्—	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
लृट्—	रोत्स्यति	रोत्स्यतः	रोत्स्यन्ति

(८) तनादिगण

१५७–इस गण की प्रथम धातु तन् (फैलाना) है, इस लि इस का नाम तनादि है। इसमें दस धातुएँ हैं। धातु और प्रत के बीच में, इस गण में उ जोड़ा जाता है, जैसे—तन्+उ+ते तनुते।

[नोट—नियम १५३ में उदाहृत नोट यहाँ भी लागू होता है नीचे तन् और कृ धातुओं के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी

(क) तन्—फैलाना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनोति	तनुत	तन्वन्ति
म० पु०	तनोषि	तनुथ	तनुथ
उ० पु०	तनोमि	{ तनुव { तन्व	{ तनुम { तन्म

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	तनोतु	तनुताम्	तन्वन्तु
म० पु०	तनु	तनुतम्	तनुत
उ० पु०	तनवानि	तनवाव	तनवाम

आशी०—	रुध्यात्	रुध्यास्ताम्	रुध्यासुः
लृङ्—	अरोत्स्यत्	अरोत्स्यताम्	अरोत्स्यन्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	रुन्द्धे	रुन्धाते	रुन्धते
म० पु०	रुन्त्से	रुन्धाथे	रुन्द्ध्वे
उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	रुन्द्धाम्	रुन्धाताम्	रुन्धताम्
म० पु०	रुन्त्स्व	रुन्धाथाम्	रुन्द्ध्वम्
उ० पु०	रुणधै	रुणधावहै	रुणधामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	रुन्धीत	रुन्धीयाताम्	रुन्धीरन्
म० पु०	रुन्धीथाः	रुन्धीयाथाम्	रुन्धीध्वम्
उ० पु०	रुन्धीय	रुन्धीवहि	रुन्धीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अरुन्द्ध	अरुन्धाताम्	अरुन्धत
म० पु०	अरुन्द्धाः	अरुन्धाथाम्	अरुन्द्ध्वम्
उ० पु०	अरुन्धि	अरुन्ध्वहि	अरुन्ध्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	रुरुधे	रुरुधाते	रुरुधिरे
म० पु०	रुरुधिषे	रुरुधाथे	रुरुधिढ्वे, ध्वे

विधिलिङ्

प्र० पु०	तनुयात्	तनुयाताम्	तनुयु
म० पु०	तनुया	तनुयातम्	तनुयात
उ० पु०	तनुयाम्	तनुयाव	तनुयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतनोत्	अतनुताम्	अतन्वन्
म० पु०	अतनो	अतनुतम्	अतनुत
उ० पु०	अतनवम्	{ अतनुव { अतन्व	{ अतनुम { अतन्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ततान	तेनतु	तेनु
म० पु०	तेनिथ	तेनथु	तेन
उ० पु०	ततान,ततन	तेनिव	तेनिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतनीत्	अतनिष्टाम्	अतनिषु
म० पु०	अतनी	अतनिष्टम्	अतनिष्ट
उ० पु०	अतनिषम्	अतनिष्व	अतनिष्म

अथवा

प्र० पु०	अतानीत्	अतानिष्टाम्	अतानिषु
म० पु०	अतानी	अतानिष्टम्	अतानिष्ट
उ० पु०	अतानिषम्	अतानिष्व	अतानिष्म

उ० पु०	रुन्धे	रुन्ध्वहे	रुन्ध्महे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अरुद्ध	अरुत्साताम्	अरुत्सत
म० पु०	अरुद्धाः	अरुत्साथाम्	अरुद्ध्वम्
उ० पु०	अरुत्सि	अरुत्स्वहि	अरुत्स्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	रोद्धा	रोद्धारौ	रोद्धारः
म० पु०	रोद्धासे	रोद्धासाथे	रोद्धाध्वे
उ० पु०	रोद्धाहे	रोद्धास्वहे	रोद्धास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	रोत्स्यते	रोत्स्येते	रोत्स्यन्ते
म० पु०	रोत्स्यसे	रोत्स्येथे	रोत्स्यध्वे
उ० पु०	रोत्स्ये	रोत्स्यावहे	रोत्स्यामहे
आशी०—	रुत्सीष्ट	रुत्सीयास्ताम्	रुत्सीरन्
लृङ्—	अरोत्स्यत	अरोत्स्येताम्	अरोत्स्यन्त ।

उभयपदी

(ख) छिद्—काटना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	छिनत्ति	छिन्त्तः	छिन्दन्ति
म० पु०	छिनत्सि	छिन्त्थः	छिन्त्थ
उ० पु०	छिनद्मि	छिन्द्वः	छिन्द्मः

लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितार
लृट्—	तनिष्यति	तनिष्यत	तनिष्यन्ति
आशी०—	तन्यात्	तन्यास्ताम्	तन्यासु
लृङ्—	अतनिष्यत्	अतनिष्यताम्	अतनिष्य

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	तनुते	तन्वाते	तन्वते
म० पु०	तनुषे	तन्वाथे	तनुध्वे
उ० पु०	तन्वे	तनुवहे, तन्वहे	तनुमहे, तन्

आज्ञा—लोट

प्र० पु०	तनुताम्	तन्वाताम्	तन्वताम्
म० पु०	तनुष्व	तन्वाथाम्	तनुध्वम्
उ० पु०	तन्वै	तन्वावहै	तन्वामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	तन्वीत	तन्वीयाताम्	तन्वीरन्
म० पु०	तन्वीथा	तन्वीयाथाम्	तन्वीध्वम्
उ० पु०	तन्वीय	तन्वीवहि	तन्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अतनुत	अतन्वाताम्	अतन्वत
म० पु०	अतनुथा	अतन्वाथाम्	अतनुध्वम्

उ० पु०	अतन्वि	अतनुवहि / अतन्वहि	अतनुमहि / अतन्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	तेने	तेनाते	तेनिरे
म० पु०	तेनिषे	तेनाथे	तेनिध्वे
उ० पु०	तेने	तेनिवहे	तेनिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अतत, अतनिष्ट	अतनिषाताम्	अतनिषत
म० पु०	अतथा, अतनिष्ठा	अतनिषाथाम्	अतनिध्वम्
उ० पु०	अतनिषि	अतनिष्वहि	अतनिष्महि
लुट्—	तनिता	तनितारौ	तनितार
लृट्—	तनिष्यते	तनिष्येते	तनिष्यन्ते
आशी०—	तनिषीष्ट	तनिषीयास्ताम्	तनिषीरन्
लृङ्—	अतनिष्यत	अतनिष्येताम्	अतनिष्यन्त

उभयपदी

(ख) कृ—करना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	करोति	कुरुत	कुर्वन्ति
म० पु०	करोषि	कुरुथ	कुरुथ
उ० पु०	करोमि	कुर्व	कुम

म० पु०	जानासि	जानीथ	जानीथ
उ० पु०	जानामि	जानीव	जानीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानातु	जानीताम्	जानन्तु
म० पु०	जानीहि	जानीतम्	जानीत
उ० पु०	जानानि	जानाव	जानाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीयात्	जानीयाताम्	जानीयुः
म० पु०	जानीयाः	जानीयातम्	जानीयात
उ० पु०	जानीयाम्	जानीयाव	जानीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानात्	अजानीताम्	अजानन्
म० पु०	अजानाः	अजानीतम्	अजानीत
उ० पु०	अजानाम्	अजानीव	अजानीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञौ	जज्ञतुः	जज्ञुः
म० पु०	जज्ञिथ, जज्ञाथ	जज्ञथुः	जज्ञ
उ० पु०	जज्ञौ	जज्ञिव	जज्ञिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञासीत्	अज्ञासिष्टाम्	अज्ञासिषुः
म० पु०	अज्ञासीः	अज्ञासिष्टम्	अज्ञासिष्ट

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	करोतु	कुरुताम्	कुर्वन्तु
म० पु०	कुरु	कुरुतम्	कुरुत
उ० पु०	करवाणि	करवाव	करवाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्यात्	कुर्याताम्	कुर्युः
म० पु०	कुर्याः	कुर्यातम्	कुर्यात
उ० पु०	कुर्याम्	कुर्याव	कुर्याम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकरोत्	अकुरुताम्	अकुर्वन्
म० पु०	अकरोः	अकुरुतम्	अकुरुत
उ० पु०	अकरवम्	अकुर्व	अकुर्म

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चकार	चक्रतुः	चक्रुः
म० पु०	चकर्थ	चक्रथुः	चक्र
उ० पु०	चकार,चकर	चकृव	चकृम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकार्षीत्	अकार्ष्टाम्	अकार्षुः
म० पु०	अकार्षीः	अकार्ष्टम्	अकार्ष्ट
उ० पु०	अकार्षम्	अकार्ष्व	अकार्ष्म
लुट्—	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः
लृट्—	करिष्यति	करिष्यतः	करिष्यन्ति

उ० पु०	अज्ञासिषम्	अज्ञासिष्व	अज्ञासिष्म
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्—	,, ,,	,,	ज्ञास्यति
आशी०—	,	,,	ज्ञेयात् ज्ञायात्
लङ्—	,, ,,	,,	अज्ञास्यत्

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानीते	जानाते	जानते
म० पु०	जानीषे	जानाथे	जानीध्वे
उ० पु०	जाने	जानीवहे	जानीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	जानीताम्	जानाताम्	जानताम्
म० पु०	जानीष्व	जानाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानै	जानावहै	जानामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	जानीत	जानीयाताम्	जानीरन्
म० पु०	जानीथा	जानीयाथाम्	जानीध्वम्
उ० पु०	जानीय	जानीवहि	जानीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अजानीत	अजानाताम्	अजानत
म० पु०	अजानीथा	अजानाथाम्	अजानीध्वम्

आशी०—	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासु
लृङ्—	अकरिष्यत्	अकरिष्यताम्	अकरिष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	कुरुते	कुर्वाते	कुर्वते
म० पु०	कुरुषे	कुर्वाथे	कुरुध्वे
उ० पु०	कुर्वे	कुर्वहे	कुर्महे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	कुरुताम्	कुर्वाताम्	कुर्वताम्
म० पु०	कुरुष्व	कुर्वाथाम्	कुरुध्वम्
उ० पु०	कुर्वै	कुर्वावहै	कुर्वामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	कुर्वीत	कुर्वीयाताम्	कुर्वीरन्
म० पु०	कुर्वीथाः	कुर्वीयाथाम्	कुर्वीध्वम्
उ० पु०	कुर्वीय	कुर्वीवहि	कुर्वीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अकुरुत	अकुर्वाताम्	अकुर्वत
म० पु०	अकुरुथा	अकुर्वाथाम्	अकुरुध्वम्
उ० पु०	अकुर्वि	अकुर्वहि	अकुर्महि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे

उ० पु०	अजानि	अजानावहि	अजानीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञास्त	अज्ञासाताम्	अज्ञासत
म० पु०	अज्ञास्थाः	अज्ञासाथाम्	अज्ञाध्वम्
उ० पु०	अज्ञासि	अज्ञास्वहि	अज्ञास्महि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ज्ञाता
लृट्—	,, ,,	,,	ज्ञास्यते
आशी०—	,, ,,	,,	ज्ञासीष्ट
लृङ्—	,, ,,	,,	अज्ञास्यत

परस्मैपद

बन्ध्—बाँधना

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	बध्नाति	बध्नीतः	बध्नन्ति
म० पु०	बध्नासि	बध्नीथः	बध्नीथ
उ० पु०	बध्नामि	बध्नीवः	बध्नीमः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	बध्नातु	बध्नीताम्	बध्नन्तु

म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे
उ० पु०	चक्रे	चकृवहे	चकृमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अकृत	अकृषाताम्	अकृषत
म०पु०	अकृथा	अकृषाथाम्	अकृढ्वम्
उ० पु०	अकृषि	अकृष्वहि	अकृष्महि
लुट्—	कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तार
लृट्—	करिष्यते	करिष्येते	करिष्यन्ते
आशी०—	कृषीष्ट	कृषीयास्ताम्	कृषीरन्
लृङ्—	अकरिष्यत्	अकरिष्येताम्	अकरिष्यन्त

(९) क्र्यादिगण

१५८——इस गण की प्रथम धातु क्री (मोल लेना) है, इस कारण इसका नाम क्र्यादिगण पड़ा । इसमें ६१ धातुएँ हैं। धातु और प्रत्यय के बीच मे, इस गण मे श्ना (ना) जोड़ा जाता है, किन्हीं प्रत्ययों के पूर्व यह ना न् हो जाता है, और किन्ही के पूर्व नी । धातु की उपधा मे यदि वर्गों का पञ्चम अक्षर अथवा अनु स्वार हो तो उसका लोप हो जाता है ।

व्यञ्जनान्त धातुओ के उपरान्त आज्ञा के म० पु० एकवचन में हि प्रत्यय के स्थान मे आन होता है , जैसे—मुष्+हि=मुष्+आन=मुषाण ।

म० पु०	बधान	बध्नीतम्	बध्नीत
उ० पु०	बध्नानि	बध्नाव	बध्नाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	बध्नीयात्	बध्नीयाताम्	बध्नीयुः
म० पु०	बध्नीयाः	बध्नीयातम्	बध्नीयात
उ० पु०	बध्नीयाम्	बध्नीयाव	बध्नीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अबध्नात्	अबध्नीताम्	अबध्नन्
म० पु०	अबध्नाः	अबध्नीतम्	अबध्नीत
उ० पु०	अबध्नाम्	अबध्नीव	अबध्नीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	बबन्ध	बबन्धतुः	बबन्धुः
म० पु०	बबन्धिथ, बबन्द्ध	बबन्धथुः	बबन्ध
उ० पु०	बबन्ध	बबन्धिव	बबन्धिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अभान्त्सीत्	अभान्ताम्	अभान्त्सुः
म० पु०	अभान्त्सीः	अभान्तम्	अभान्त
उ० पु०	अभान्त्सम्	अभान्त्स्व	अभान्त्स्म
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	बन्द्धा
लृट्—	,, ,,	,,	भन्त्स्यति
आशी०—	,, ,,	,,	बध्यात्
लृङ्—	,, ,,	,,	अभन्त्स्यत्

नीचे मुख्य धातुओं के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी

क्री—खरीदना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
क्रीणाति	क्रीणीतः	क्रीणन्ति
क्रीणासि	क्रीणीथः	क्रीणीथ
क्रीणामि	क्रीणीवः	क्रीणीमः

आज्ञा—लोट्

क्रीणातु, क्रीणीतात्	क्रीणीताम्	क्रीणन्तु
क्रीणीहि	क्रीणीतम्	क्रीणीत
क्रीणानि	क्रीणाव	क्रीणाम

विधिलिङ्

क्रीणीयात्	क्रीणीयाताम्	क्रीणीयुः
क्रीणीयाः	क्रीणीयातम्	क्रीणीयात
क्रीणीयाम्	क्रीणीयाव	क्रीणीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

अक्रीणात्	अक्रीणीताम्	अक्रीणन्
अक्रीणाः	अक्रीणीतम्	अक्रीणीत
अक्रीणाम्	अक्रीणीव	अक्रीणीम

(१०) चुरादिगण

१५९—इस गण की प्रथम धातु चुर् (चुराना) है, इस कारण इसका नाम चुरादिगण पड़ा। धातुपाठ में इस गण की ४१० धातुएँ पठित हैं। इसमें धातु और प्रत्यय के बीच में अय जोड़ दिया जाता है तथा उपधा के ह्रस्व स्वर (अ के अतिरिक्त) का गुण हो जाता है और यदि उपधा में ऐसा अ हो जिसके अनन्तर संयुक्ताक्षर न हो तो उसकी और अन्तिम स्वर की वृद्धि हो जाती है। उदाहरणार्थ— चुर्+अय+ति = चोर्+अय+ति= चोरयति। तड्+अय+ति=ताड्+अय+ति=ताडयति। नी+अय+ति=नै+अय+ति=नाय्+अय+ति=नाययति

नीचे चुर्, धातु के रूप दिए जाते हैं।

उभयपदी

चुर्—चुराना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयति	चोरयतः	चोरयन्ति
म० पु०	चोरयसि	चोरयथः	चोरयथ
उ० पु०	चोरयामि	चोरयावः	चोरयामः

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयतु	चोरयताम्	चोरयन्तु

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्राय	चिक्रियतु	चिक्रियु
म० पु०	चिक्रयिथ, चिक्रेथ	चिक्रियथु	चिक्रिय
उ० पु०	चिक्राय, चिक्रय	चिक्रियिव	चिक्रियिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अक्रैषीत्	अक्रैष्टाम्	अक्रषु
म० पु०	अक्रैषी	अक्रैष्टम्	अक्रैष्ट
उ० पु०	अक्रैषम्	अक्रैष्व	अक्रैष्म
लुट्—	क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार
लृट्—	क्रेष्यति	क्रेष्यत	क्रेष्यति
आशी०—	क्रियात्	क्रियास्ताम्	क्रियासु
लृङ्—	अक्रेष्यत्	अक्रेष्यताम्	अक्रेष्यन्

क्री

आत्मनेपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	क्रीणीते	क्रीणाते	क्रीणते
म० पु०	क्रीणीषे	क्रीणाथे	क्रीणीध्वे
उ० पु०	क्रीणे	क्रीणीवहे	क्रीणीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रीणीताम्	क्रीणाताम्	क्रीणताम्
म० पु०	क्रीणीष्व	क्रीणाथाम्	क्रीणीध्वम्

म० पु०	चोरय	चारयतम्	चोरयत
उ० पु०	चोरयाणि	चारयाव	चोरयाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	चोरयेत्	चोरयेताम्	चोरयेयु
म० पु०	चोरये	चोरयेतम्	चोरयेत
उ० पु०	चोरयेयम्	चोरयेव	चोरयेम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत्	अचोरयताम्	अचोरयन्
म० पु०	अचोरय	अचोरयतम्	अचोरयत
उ० पु०	अचोरयम्	अचोरयाव	अचोरयाम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयामास	चोरयामासतु	चोरयामासु
म० पु०	चोरयामासिथ	चोरयामासथु	चोरयामास
उ० पु०	चोरयामास	चोरयामासिव	चोरयामासिम

अथवा

प्र० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूवतु	चोरयाम्बभूवु
म० पु०	चोरयाम्बभूविथ	चोरयाम्बभूवथु	चोरयाम्बभूव
उ० पु०	चोरयाम्बभूव	चोरयाम्बभूविव	चोरयाम्बभूविम

अथवा

प्र० पु०	चोरयाञ्चकार	चोरयाञ्चक्रतु	चोरयाञ्चक्रु
म० पु०	चोरयाञ्चकर्थ	चोरयाञ्चक्रथु	चोरयाञ्चक्र
उ० पु०	चोरयाञ्चकार / चोरयाञ्चकर		चोरयाञ्चकृम

उ० पु०	क्रीणे	क्रीणावहे	क्रीणामहे

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रीणीत	क्रीणीयाताम्	क्रीणारन्
म० पु०	क्रीणीथा	क्रीणीयाथाम्	क्रीणीध्वम्
उ० पु०	क्रीणीय	क्रीणीवहि	क्रीणीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रीणीत	अक्रीणाताम्	अक्रीणत
म० पु०	अक्रीणीया	अक्रीणाथाम्	अक्रीणीध्वम्
उ० पु०	अक्रीणि	अक्रीणीवहि	अक्रीणीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्रिये	चिक्रियाते	चिक्रियिरे
म० पु०	चिक्रियिषे	चिक्रियाथे	चिक्रियिध्वे
उ० पु०	चिक्रिये	चिक्रियिवहे	चिक्रियिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

अक्रेष्ट	अक्रेषाताम्	अक्रेषत
अक्रेष्ठा	अक्रेषाथाम्	अक्रेध्वम्
अक्रेषि	अक्रेष्वहि	अक्रेष्महि
क्रेता	क्रेतारौ	क्रेतार
क्रेष्यते	क्रेष्येते	क्रेष्यन्ते
क्रेषीष्ट	क्रेषीयास्ताम्	क्रेषीरन्
अक्रेष्यत	अक्रेष्येताम्	अक्रेष्यन्त

सामान्यभूत लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत्	अचूचुरताम्	अचूचुरन्
म० पु०	अचूचुर	अचूचुरतम्	अचूचुरत
उ० पु०	अचूचुरम्	अचूचुराव	अचूचुराम
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	" "	"	चोरयिष्यति
आशी०—	" "	"	चोर्यात्
लृङ्—	" "	"	अचोरयिष्यत्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	चोरयते	चोरयेते	चोरयन्ते
म० पु०	चोरयसे	चोरयेथे	चोरयध्वे
उ० पु०	चोरये	चोरयावहे	चोरयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चोरयताम्	चोरयेताम्	चोरयन्ताम्
म० पु०	चोरयस्व	चोरयेथाम्	चोरयध्वम्
उ० पु०	चोरयै	चोरयावहै	चोरयामहै

विधि लिङ्

प्र० पु०	चोरयेत	चोरयेयाताम्	चोरयेरन्
म० पु०	चोरयेथा	चोरयेयाथाम्	चोरयेध्वम्
उ० पु०	चोरयेय	चोरयेवहि	चोरयेमहि

उभयपदी

ग्रह्—लेना

परस्मैपद

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	गृह्णाति	गृह्णीत	गृह्णन्ति
म० पु०	गृह्णासि	गृह्णीथ	गृह्णीथ
उ० पु०	गृह्णामि	गृह्णीव	गृह्णीम

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णातु	गृह्णीताम्	गृह्णन्तु
म० पु०	गृहाण	गृह्णीतम्	गृह्णीत
उ० पु०	गृह्णानि	गृह्णाव	गृह्णाम

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीयात्	गृह्णीयाताम्	गृह्णीयु
म० पु०	गृह्णीया	गृह्णीयातम्	गृह्णीयात
उ० पु०	गृह्णीयाम्	गृह्णीयाव	गृह्णीयाम

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृह्णात्	अगृह्णीताम्	अगृह्णन्
म० पु०	अगृह्णा	अगृह्णीतम्	अगृह्णीत
उ० पु०	अगृह्णाम्	अगृह्णीव	अगृह्णीम

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जग्राह	जगृहतु	जगृहु
म० पु०	जग्रहिथ	जगृहथु	जगृह

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचोरयत	अचोरयेताम्	अचोरयन्त
म० पु०	अचोरयथा	अचोरयेथाम्	अचोरयध्वम्
उ० पु०	अचोरये	अचोरयावहि	अचोरयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चक्राते	चोरयाञ्चक्रिरे
म० पु०	चोरयाञ्चकृषे	चोरयाञ्चक्राथे	चोरयाञ्चकृढ्वे,-ध्वे
उ० पु०	चोरयाञ्चक्रे	चोरयाञ्चकृवहे	चोरयाञ्चकृमहे
	चोरयामास	इत्यादि ।	
	चोरयाम्बभूव	इत्यादि ।	

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचूचुरत	अचूचुरेताम्	अचूचुरन्त
म० पु०	अचूचुरथा	अचूचुरेथाम्	अचूचुरध्वम्
उ० पु०	अचूचुरे	अचूचुरावहि	अचूचुरामहि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	चोरयिता
लृट्—	,, ,,	,,	चोरयिष्यते
आशी०—	,, ,,	,,	चोरयिषीष्ट
लृङ्—	,, ,,	,,	अचोरयिष्यत

१६०—चुरादिगण की मुख्य २ धातुओं की सूची ।

उभयपदी—अर्च् (पूजा करना)

लट्—अर्चयति, अर्चयते । लोट्—अर्चयतु, अर्चयताम् । विधि

उ० पु०	जग्राह, जग्रह	जगृहिव	जगृहिम

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीत्	अग्रहीष्टाम्	अग्रहीषु
म० पु०	अग्रही	अग्रहीष्टम्	अग्रहीष्ट
उ० पु०	अग्रहीषम्	अग्रहीष्व	अग्रहीष्म
लुट्—	ग्रहीता	ग्रहीतारौ	ग्रहीतार
लृट्—	ग्रहीष्यति	ग्रहीष्यत	ग्रहीष्यन्ति
आशी०—	गृह्यात्	गृह्यास्ताम्	गृह्यासु
लृङ्—	अग्रहीष्यत्	अग्रहीष्यताम्	अग्रहीष्यन्

आत्मनेपद

वर्त्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	गृह्णाते	गृह्णाते	गृह्णते
म० पु०	गृह्णीपे	गृह्णाथे	गृह्णीध्वे
उ० पु०	गृह्णे	गृह्णीवहे	गृह्णीमहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	गृह्णीताम्	गृह्णाताम्	गृह्णताम्
म० पु०	गृह्णीष्व	गृह्णाथाम्	गृह्णीध्वम्
उ० पु०	गृह्णै	गृह्णावहे	गृह्णामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	गृह्णीत	गृह्णीयाताम्	गृह्णीरन्
म० पु०	गृह्णीथा	गृह्णीयाथाम्	गृह्णीध्वम्

अर्चयेत्, अर्चयेत । लङ्—आर्चयत्, आर्चयत । लिट्—अर्चयामास, अर्चयाम्बभूव, अर्चयाञ्चकार, अर्चयाञ्चक्रे ।

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	आर्चिचत्	आर्चिचताम्	आर्चिचन्
म० पु०	आर्चिचः	आर्चिचतम्	आर्चिचत
उ० पु०	आर्चिचम्	आर्चिचाव	आर्चिचाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	आर्चिचत	आर्चिचेताम्	आर्चिचन्त
म० पु०	आर्चिचथाः	आर्चिचेथाम्	आर्चिचध्वम्
उ० पु०	आर्चिचे	आर्चिचावहि	आर्चिचामहि

लुट्—अर्चयिता । लृट्—अर्चयिष्यति, अर्चयिष्यते । आशी०—अर्च्यात् अर्चयिषीष्ट । लृङ्—आर्चयिष्यत्, आर्चयिष्यत ।

अर्ज् (उभयपदी—कमाना, पैदा करना) के रूप अर्च् के समान होते हैं ।

अर्थ (आत्मनेपदी—प्रार्थना करना) के रूप अर्च् के समान होते हैं । केवल सामान्यभूत (लुङ्) में भेद होता है, जो कि नीचे दिखाया जाता है ।

लट्—अर्थयते । लोट्—अर्थयताम् । विधि—अर्थयेत । लङ्—आर्थयत । लिट्—अर्थयामास, अर्थयाम्बभूव, अर्थयाञ्चक्रे । लुट्—अर्थयिता । लृट्—अर्थयिष्यते । आशी०—अर्थयिषीष्ट । लृङ्—आर्थयिष्यत ।

लुङ्

प्र० पु०	आर्तथत	आर्तथेताम्	आर्तथन्त

उ० पु०	गृह्णीय	गृह्णीवहि	गृह्णीमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अगृह्णीत	अगृह्णाताम्	अगृह्णत
म० पु०	अगृह्णीथा	अगृह्णाथाम्	अगृह्णीध्वम्
उ० पु०	अगृह्णि	अगृह्णीवहि	अगृह्णीमहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जगृहे	जगृहाते	जगृहिरे
म० पु०	जगृहिषे	जगृहाथे	जगृहिध्वे,-ढ्वे
उ० पु०	जगृहे	जगृहिवहे	जगृहिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अग्रहीष्ट	अग्रहीषाताम्	अग्रहीषत
म० पु०	अग्रहीष्ठा	अग्रहीषाथाम्	अग्रहीध्वम्,-ढ्वम्
उ० पु०	अग्रहीषि	अग्रहीष्वहि	अग्रहीष्महि
लुट्—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीता
लृट्—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीष्यते
आशी०—	प्र० पु०	एकवचन	ग्रहीषीष्ट
लृङ्—	प्र० पु०	एकवचन	अग्रहीष्यत

उभयपदी

ज्ञा—जानना

परस्मैपद

वर्तमान—लट्

	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्र० पु०	जानाति	जानीत	जानन्ति

म० पु०	आर्तयथा	आर्तयेथाम्	आर्तयध्वम्
उ० पु०	आर्तये	आर्तयावहि	आर्तयामहि

उभयपदी—कथ् (कहना)

लट्—कथयति, कथयते । लोट्—कथयतु, कथयताम् । विधि-कथयेत्, कथयेत । लङ्—अकथयत्, अकथयत । लिट्—कथयामास कथयाम्बभूव, कथयाञ्चकार कथयाञ्चक्रे। लुट्—कथयिता।लृट्—कथयिष्यति कथयिष्यते । आशी०—कथ्यात्, कथयिषीष्ट । लृङ्—अकथयिष्यत् अकथयिष्यत ।

लुङ्—परस्मैपद

प्र० पु०	अचकथत्	अचकथताम्	अचकथन्
म० पु०	अचकथः	अचकथतम्	अचकथत
उ० पु०	अचकथम्	अचकथाव	अचकथाम

आत्मनेपद

प्र० पु०	अचकथत	अचकथेताम्	अचकथन्त
म० पु०	अचकथथाः	अचकथेथाम्	अचकथध्वम्
उ० पु०	अचकथे	अचकथावहि	अचकथामहि

उभयपदी—क्षल् (धोना, साफ करना)

क्षल् के रूप क्षालयति, क्षालयते इत्यादि चलते हैं। लिट्—क्षालयामास क्षालयाम्बभूव, क्षालयाञ्चकार, क्षालयाञ्चक्रे । लुट्—क्षालयिता । लृट्—क्षालयिष्यति, क्षालयिष्यते । आशी०—क्षाल्यात्, क्षालयिषीष्ट। लृङ्—अक्षालयिष्यत्, अक्षालयिष्यत । लुङ्—अचिक्षलत् अचिक्षलताम् अचि

ण्लन्। अचिष्लल अचिष्ललतम् अचिष्ललत । अचिष्ललम् अचिष्ललाव अचिष्ललाम । आत्मनेपद में—अचिष्ललत अचिष्ललेताम् इत्यादि।

उभयपदी—गण् (गिनना)

गणयति, गणयते । लिट्—गणयाम्बभूव, गणयामास, गणयाञ्चकार, गणयाञ्चक्रे । लुङ्—अजीगणत् अजीगणताम् अजीगणन् तथा अजगणत् अजगणताम् अजगणन् । अजीगणत अजीगणेताम् अजीगणन्त तथा अजगणत अजगणेताम् अजगणन्त । लुट्—गणयिता । लृट्—गणयिष्यति, गणयिष्यते । आशी०—गण्यात्, गणयिषीष्ट । लृङ्—अगणयिष्यत्, अगणयिष्यत ।

उभयपदी—चिन्त् (विचारना)

लट्—चिन्तयति, चिन्तयते । लिट्—चिन्तयामास, चिन्तयाम्बभूव, चिन्तयाम्चकार, चिन्तयाञ्चक्रे । लुङ्—अचिचिन्तत् अचिचिन्तताम् अचिचिन्तन् । अचिचिन्तत अचिचिन्तेताम् अचिचिन्तन्त । लुट्—चिन्तयिता । लृट्—चिन्तयिष्यति, चिन्तयिष्यते । आशी०—चिन्त्यात्, चिन्तयिषीष्ट । लृङ्—अचिन्तयिष्यत्, अचिन्तयिष्यत ।

उभयपदी—तड् (मारना)

लट्—ताडयति, ताडयते । लिट्—ताडयामास, ताडयाम्बभूव, ताडयाञ्चकार, ताडयाञ्चक्रे । लुङ्—अतीतडत् अतीतडताम् अतीतडन् । अतीतडत अतीतडेताम् अतीतडन्त । लुट्—ताडयिता । लृट्—ताडयिष्यति, ताडयिष्यते । आशी०—ताड्यात्, ताडयिषीष्ट ।

उभयपदी—तप् (गरम करना)

तप् के रूप सर्वथा तड् के समान होते हैं । तापयति-तापयते, इत्यादि ।

अपीयेथाम् अपीयध्वम् । अपीये अपीयावहि अपीयामहि । लिट्—पपे पपाते पपिरे । पपिषे पपाथे पपिध्वे । पपे पपिवहे पपिमहे । लुङ्—अपायि अपायिषाताम् अपायिषत । अपायिष्ठा अपायिषाथाम् अपायिध्वम् । अपायिषि अपायिष्वहि अपायिष्महि। लुट्—पाता पातारौ पातार । लृट्—पास्यते पास्यते पास्यन्ते । आशी०—पासीष्ट । लृङ्—अपास्यत ।

स्था अकर्मक भाववाच्य | स्थीयते स्थीयेते स्थीयन्ते इत्यादि । लोट्—स्थीयताम् । विधि—स्थीयेत । लङ्—अस्थीयत अस्थीयेताम् अस्थीयन्त । लिट्—तस्थे तस्थाते तस्थिरे । तस्थिषे तस्थाथे तस्थिध्वे । तस्थे तस्थिवहे तस्थिमहे । लुङ्—अस्थायि अस्थायिषाताम् अस्थायिषत । अस्थायिष्ठा अस्थायिषाथाम् अस्थायिध्वम् । अस्थायिषि अस्थायिष्वहि अस्थायिष्महि । लुट्—स्थाता । लृट्—स्थास्यते । आशी०—स्थासीष्ट ।

हा—हीयते इत्यादि । लिट्—जहे जहाते जहिरे । लुङ्—अहायि अहायिषाताम् अहायिषत इत्यादि ।

ज्ञा-सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	ज्ञायते	ज्ञायेते	ज्ञायन्ते
म० पु०	ज्ञायसे	ज्ञायेथे	ज्ञायध्वे
उ० पु०	ज्ञाये	ज्ञायावहे	ज्ञायामहे

उभयपदी—तुल् (तौलना)

लट्—तोलयति, तोलयते इत्यादि। लिट्—तोलयाञ्चकार, तोलयाञ्चक्रे। लुङ्—अतूतुलत् अतूतुलताम् अतूतुलन्। अतूतुलत अतूतुलेताम् अतूतुलन्त। लुट्—तोलयिता। लृट्—तोलयिष्यति, तोलयिष्यते। आशी०—तोल्यात्, तोलयिषीष्ट।

उभयपदी—दण्ड् (दण्ड देना)

दण्डयति, दण्डयते। लिट्—दण्डयाञ्चकार, दण्डयाञ्चक्रे, दण्डयामास, दण्डयाम्बभूव। लुङ्—अददण्डत् अददण्डताम् अददण्डन्। अददण्डत अददण्डेताम् अददण्डन्त। लुट्—दण्डयिता। लृट्—दण्डयिष्यति, दण्डयिष्यते।। आशी०—दण्ड्यात्, दण्डयिषीष्ट।

उभयपदी

पाल्—(पालना, रक्षा करना) लुङ् — अपीपलत्, अपीपलत।
पीड्—(दुःख देना) ,, — अपिपीडत् अपीपिडत।
अपिपीडत, अपीपिडत।
पूज्—(पूजा करना) ,, — अपूपुजत्, अपूपुजत।

उभयपदी—प्री (खुश करना)

प्रीणयति, प्रीणयते इत्यादि। लुङ्— अपिप्रीणत्, अपिप्रीणत।

आत्मनेपदी—भर्त्स् (धमकाना, डाटना)

भर्त्संयते। लिट्—भर्त्सयाञ्चक्रे। लुङ्—अबभर्त्सत अबभर्त्सेताम् अबभर्त्सन्त। अबभर्त्सथा अबभर्त्सेथाम् अबभर्त्सध्वम्। अबभर्त्से अबभर्त्सावहि अबभर्त्सामहि। लुट्—भर्त्सयिता। लृट्—भर्त्सयिष्यते। आशी०—भर्त्सयिषीष्ट।

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	ज्ञायताम्	ज्ञायेताम्	ज्ञायन्ताम्
म० पु०	ज्ञायस्व	ज्ञायेथाम्	ज्ञायध्वम्
उ० पु०	ज्ञायै	ज्ञायावहै	ज्ञायामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	ज्ञायेत	ज्ञायेयाताम्	ज्ञायेरन्
म० पु०	ज्ञायेथा	ज्ञायेयाथाम्	ज्ञायेध्वम्
उ० पु०	ज्ञायेय	ज्ञायेवहि	ज्ञायेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अज्ञायत	अज्ञायेताम्	अज्ञायन्त
म० पु०	अज्ञायथा	अज्ञायेथाम्	अज्ञायध्वम्
उ० पु०	अज्ञाये	अज्ञायावहि	अज्ञायामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	जज्ञे	जज्ञाते	जज्ञिरे
म० पु०	जज्ञिषे	जज्ञाथे	जज्ञिध्वे
उ० पु०	जज्ञे	जज्ञिवहे	जज्ञिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अज्ञायि	{ अज्ञायिषाताम् / अज्ञासाताम्	{ अज्ञायिषत / अज्ञासत
म० पु०	{ अज्ञायिष्ठा / अज्ञास्था	{ अज्ञायिषाथाम् / अज्ञासाथाम्	{ अज्ञायिढ्वम् / अज्ञाध्वम्
उ० पु०	{ अज्ञायिषि / अज्ञासि	{ अज्ञायिष्वहि / अज्ञास्वहि	{ अज्ञायिष्महि / अज्ञास्महि

उभयपदी—भक्ष् (खाना)

भक्षयति, भक्षयते । लिट्—भक्षयामास, भक्षयाम्बभूव, भक्षयाञ्चकार, भक्षयाञ्चक्रे । लुङ्—अबभक्षत् अबभक्षत । लुट्—भक्षयिता । लृट्—भक्षयिष्यति, भक्षयिष्यते । आशी०—भक्ष्यात् भक्षयिषीष्ट ।

उभयपदी—भूष् (सजाना)

भूषयति, भूषयते । लिट्—भूषयामास, भूषयाम्बभूव, भूषयाञ्चकार भूषयाञ्चक्रे । लुङ्—अबुभूषत, अबुभूषत । लुट्—भूषयिता । लृट्—भूषयिष्यति, भूषयिष्यते । आशी०—भूष्यात्, भूषयिषीष्ट ।

आत्मनेपदी—मन्त्र्—(सलाह करना या सलाह देना)

मन्त्रयते । लिट्—मन्त्रयाञ्चक्रे । लुङ्—अममन्त्रत अममन्त्रेताम् अममन्त्रन्त । अममन्त्रथाः अममन्त्रेथाम् अममन्त्रध्वम् । अममन्त्रे अममन्त्रावहि अममन्त्रामहि । लुट्—मन्त्रयिता । लृट्—मन्त्रयिष्यते । आशी०—मन्त्रयिषीष्ट ।

उभयपदी—मार्ग् (खोजना)

मार्गयति मार्गयते । लिट्—मार्गयामास, मार्गयाम्बभूव, मार्गयाञ्चकार, मार्गयाञ्चक्रे । अममार्गत्, अममार्गत । लुट्-मार्गयिता । लृट्—मार्गयिष्यति, मार्गयिष्यते । आशी०—मार्ग्यात्, मार्गयिषीष्ट ।

मार्ज् (शुद्ध करना, पोंछना)

मार्जयति, मार्जयते । लिट्—मार्जयामास, मार्जयाम्बभूव, मार्जयाञ्चकार मार्जयाञ्चक्रे । लुङ्—अममार्जत्, अममार्जत । लुट्—मार्जयिता । लृट्—मार्जयिष्यति, मार्जयिष्यते । आशी०—मार्ज्यात्, मार्जयिषीष्ट ।

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	ज्ञाता ज्ञायिता	ज्ञातारौ ज्ञायितारौ	ज्ञातारः ज्ञायितारः
म० पु०	ज्ञातासे ज्ञायितासे	ज्ञातासाथे ज्ञायितासाथे	ज्ञाताध्वे ज्ञायिताध्वे
उ० पु०	ज्ञाताहे ज्ञायिताहे	ज्ञातास्वहे ज्ञायितास्वहे	ज्ञातास्महे ज्ञायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	ज्ञास्यते ज्ञायिष्यते	ज्ञास्येते ज्ञायिष्येते	ज्ञास्यन्ते ज्ञायिष्यन्ते
म० पु०	ज्ञास्यसे ज्ञायिष्यसे	ज्ञास्येथे ज्ञायिष्येथे	ज्ञास्यध्वे ज्ञायिष्यध्वे
उ० पु०	ज्ञास्ये ज्ञायिष्ये	ज्ञास्यावहे ज्ञायिष्यावहे	ज्ञास्यामहे ज्ञायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	ज्ञासीष्ट ज्ञायिषीष्ट	ज्ञासीयास्ताम् ज्ञायिषीयास्ताम्	ज्ञासीरन् ज्ञायिषीरन्
म० पु०	ज्ञासीष्ठा ज्ञायिषीष्ठा	ज्ञासीयास्थाम् ज्ञायिषीयास्थाम्	ज्ञासीध्वम् ज्ञायिषीध्वम्
उ० पु०	ज्ञासीय ज्ञायिषीय	ज्ञासीवहि ज्ञायिषीवहि	ज्ञासीमहि ज्ञायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अज्ञास्यत अज्ञायिष्यत	अज्ञास्येताम् अज्ञायिष्येताम्	अज्ञास्यन्त अज्ञायिष्यन्त

परस्मैपदी—मान् (आदर करना)

मानयति। मानयाञ्चकार। अमीमनत् अमीमनताम् अमीमनन्।

उभयपदी —रच् (बनाना)

रचयति, रचयते। लुङ्—अररचत्, अररचत। लुट्—रचयिता। लृट्—रचयिष्यति, रचयिष्यते। आशी०—रच्यात्, रचयिषीष्ट।

उभयपदी—वर्ण् (वर्णन करना या रंगना)

वर्णयति, वर्णयते। लुङ् अववर्णत्, अववर्णत। लुट्—वर्णयिता। लृट्—वर्णयिष्यति, वर्णयिष्यते। आशी०—वर्ण्यात्, वर्णयिषीष्ट।

आत्मनेपदी—वञ्च् (धोखा देना)

वञ्चयते। लिट्—वञ्चयामास, वञ्चयाम्बभूव, वञ्चयाञ्चक्रे। लुङ्—अववञ्चत अववञ्चेताम् अववञ्चन्त। लुट्—वञ्चयिता। लृट्—वञ्चयिष्यते। आशी०—वञ्चयिषीष्ट।

उभयपदी—वृज् (छोड़ना, निकालना)

वर्जयति, वर्जयते। लुङ्—अवीवृजत् अवीवृजताम् अवीवृजन्। अववर्जत् अववर्जताम् अववर्जन्। अवीवृजत अवीवृजेताम् अवीवृजन्त। अववर्जत अववर्जेताम् अववर्जन्त।

उभयपदी—स्पृह (चाहना)

स्पृहयति, स्पृहयते। लिट्—स्पृहयामास, स्पृहयाम्बभूव, स्पृहयाञ्चकार, स्पृहयाञ्चक्रे। लुङ्—अपिस्पृहत् अपिस्पृहताम् अपिस्पृहन्। अपिस्पृहत अपिस्पृहेताम् अपिस्पृहन्त। लुट्—स्पृहयिता। लृट्—स्पृहयिष्यति स्पृहयिष्यते। आशी०—स्पृह्यात्, स्पृहयिषीष्ट।

म० पु०	{ अज्ञास्यथा { अज्ञायिष्यथा	{ अज्ञास्येथाम् { अज्ञायिष्येथाम्	{ अज्ञास्यध्वम् { अज्ञायिष्यध्व
उ० पु०	{ अज्ञास्ये { अज्ञायिष्ये	{ अज्ञास्यावहि { अज्ञायिष्यावहि	{ अज्ञास्यामहि { अज्ञायिष्याम

ध्यै—लट्—ध्यायते ध्यायेते ध्यायन्ते। लोट्—ध्यायताम् ध्यायेता ध्यायन्ताम्। विधि—ध्यायेत ध्यायेयाताम् ध्यायेरन्। लङ्—अध्यायत अध्यायेताम् अध्यायन्त। लिट्—दध्ये दध्या दध्यिरे। लुङ्—अध्यायि अध्यायिषाताम् अध्यासाता अध्यायिषत अध्यासत। लुट्—ध्याता। लृट्—ध्यास्यते।

चि—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	चीयते	चीयेते	चीयन्ते
म० पु०	चीयसे	चीयेथे	चीयध्वे
उ० पु०	चीये	चीयावहे	चीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	चीयताम्	चीयेताम्	चीयन्ताम्
म० पु०	चीयस्व	चीयेथाम्	चीयध्वम्
उ० पु०	चीयै	चीयावहै	चीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	चीयेत	चीयेयाताम्	चीयेरन्
म० पु०	चीयेथा	चीयेयाथाम्	चीयेध्वम्
उ० पु०	चीयेय	चीयेवहि	चीयेमहि

दशम सोपान

क्रिया विचार (उत्तरार्ध)

१६१—ऊपर (१४१ में) कह चुके है कि संस्कृत में तीन वाच्य होते हैं—कर्तृवाच्य, कर्मवाच्य और भाववाच्य। धातुओं के कर्तृवाच्य के रूप दसो गणो के सभी लकारो मे पिछले परिच्छेद में दिखाये जा चुके हैं। यह भी बताया जा चुका है कि कर्मवाच्य केवल सकर्मक धातुओं मे और भाववाच्य केवल अकर्मक धातुओं में हो सकता है। इन दो वाच्यो के रूप केवल आत्मनेपद मे होते हैं, धातु चाहे जिस पद की हो। आत्मनेपद के जो प्रत्यय दसों लकारों के हैं वेही प्रत्यय जोड़े जाते हैं। कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप बनाते समय नीचे लिखे नियमो का पालन किया जाता है—

(१) धातु और प्रत्ययों के बीच में सार्वधातुक लकारो में यक् (य) जोड़ा जाता है, जैसे—भिद् और ते के बीच में य जोड़ कर भिद्यते रूप बनता है।

(२) धातु में यक् के पूर्व, कोई विकार नहीं होता। जैसे—गम्+य+ते=गम्यते। कर्तृवाच्य में सार्वधातुक लकारो में धातुओं के स्थान मे धात्वादेश (जैसे गम् का गच्छ्) नहीं होता। इसी प्रकार गुण और वृद्धि भी नहीं होती।

(३) दा, दे, दो, धा, धे, मा, गै, पा, सो और हा धातुओं का अन्तिम स्वर ई में बदल जाता है, जैसे—दीयते, धीयते, मीयते,

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अचीयत	अचीयेताम्	अचीयन्त
म० पु०	अचीयथा	अचीयेथाम्	अचीयध्वम्
उ० पु०	अचीये	अचीयावहि	अचीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चिक्ये	चिक्याते	चिक्यिरे
म० पु०	चिक्यिषे	चिक्याथे	चिक्यिध्वे
उ० पु०	चिक्ये	चिक्यिवहे	चिक्यिमहे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अचायि	अचायिषाताम् / अचेषाताम्	अचायिषत / अचेषत
म० पु०	अचायिष्ठा / अचेष्ठा	अचायिषाथाम् / अचेषाथाम्	अचायिध्वम् / अचेध्वम्
उ० पु०	अचायिषि / अचेषि	अचायिष्वहि / अचेष्वहि	अचायिष्महि / अचेष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	चेता / चायिता	चेतारौ / चायितारौ	चेतारः / चायितारः
म० पु०	चेतासे / चायितासे	चेतासाथे / चायितासाथे	चेताध्वे / चायिताध्वे
उ० पु०	चेताहे / चायिताहे	चेतास्वहे / चायितास्वहे	चेतास्महे / चायितास्महे

गीयते, पीयते, सीयते, हीयते। और धातुओं का वैसे ही रहता है, जैसे—ज्ञायते, स्नायते, भूयते, ध्यायते। बहुत सी धातुओं के बीच का अनुस्वार कर्मवाच्य के रूपों में निकाल दिया जाता है, जैसे—बन्ध् से बध्यते, शस् से शस्यते, इन्ध् से इध्यते।

(४) अन्य कुछ लकारों में कर्मवाच्य तथा भाववाच्य में कर्तृवाच्य के ही रूप होते हैं जैसे, परोक्षभूत में—निन्ये, बभूव, जज्ञे आदि, अथवा कृ धातु के रूप जोड़ कर, जैसे ईक्षाञ्चक्रे अथवा अस् धातुके रुप लगाकर, कथयामासे आदि।

(५) स्वरान्त धातुओं के तथा हन्, ग्रह, दृश् धातुओं के दोनों भविष्य, क्रियातिपत्ति तथा आशीर्लिङ् में वैकल्पिक रूप धातु के स्वर की वृद्धि करके तथा प्रत्ययों के पूर्व इ जोड़ कर बनते हैं, जैसे—दा से दायिता अथवा दाता। दायिष्यते अथवा दास्यते। अदायिष्यत अथवा अदास्यत। दायिषीष्ट अथवा दासीष्ट।

(क) नीचे कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप दिये जाते हैं। जैसा ऊपर नवें सोपान में बता चुके हैं। कर्मवाच्य की क्रिया के रूप पुरुष और वचन में कर्म के अनुसार होते हैं। भाववाच्य का अर्थ है केवल किसी क्रिया का होना दिखाना। यह सदा प्रथमपुरुष एक वचन में होता है, कर्ता के अनुसार इसके रूप नहीं बदलते, जैसे—तेन भूयते, ताभ्याम् भूयते, तैः भूयते, त्वया भूयते युवाभ्यां भूयते, युष्माभिः भूयते, मया भूयते, आवाभ्यां भूयते अस्माभिः भूयते। इसी प्रकार भूयताम्, भूयात, अभूयत।

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	चेष्यते / चायिष्यते	चेष्येते / चायिष्येते	चेष्यन्ते / चायिष्यन्ते
म० पु०	चेष्यसे / चायिष्यसे	चेष्येथे / चायिष्येथे	चेष्यध्वे / चायिष्यध्वे
उ० पु०	चेष्ये / चायिष्ये	चेष्यावहे / चायिष्यावहे	चेष्यामहे / चायिष्यामहे

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	चेषीष्ट / चायिषीष्ट	चेषीयास्ताम् / चायिषीयास्ताम्	चेषीरन् / चायिषीरन्
म० पु०	चेषीष्ठा / चायिषीष्ठा	चेषीयास्थाम् / चायिषीयास्थाम्	चेषीध्वम् / चायिषीध्वम्
उ० पु०	चेषीय / चायिषीय	चेषीवहि / चायिषीवहि	चेषीमहि / चायिषीमहि

लृङ्

प्र० पु०	अचेष्यत / अचायिष्यत	अचेष्येताम् / अचायिष्येताम्	अचेष्यन्त / अचायिष्यन्त
म० पु०	अचेष्यथा / अचायिष्यथा	अचेष्येथाम् / अचायिष्येथाम्	अचेष्यध्वम् / अचायिष्यध्वम्
उ० पु०	अचेष्ये / अचायिष्ये	अचेष्यावहि / अचायिष्यावहि	अचेष्यामहि / अचायिष्यामहि

जि—लट्—जीयते जीयेते जीयन्ते । लोट्—जीयताम् जीयेताम् जीयन्ताम्। विधि—जीयेत जीयेयाताम् जीयेरन् । लङ्—अजीयत अजीयेताम् अजीयन्त । लिट्—जिग्ये जिग्याते जिग्यिरे । जिग्यिषे जिग्याथे जिग्यिध्वे। जिग्ये जिग्यिवहे जिग्यिमहे । लुङ्—अजायि अजायिषाताम् अजेषाताम्

१६२—मुख्य धातुओं के कर्मवाच्य तथा भाववाच्य के रूप।

पठ्—लट्—पठ्यते पठ्येते पठ्यन्ते। लोट्—पठ्यताम् पठ्येताम् पठ्यन्ताम्। विधि—पठ्येत पठ्येयाताम् पठ्येरन्। लङ्—अपठ्यत अपठ्येताम् अपठ्यन्त। लिट्—पेठे पेठाते पेठिरे। लुङ्—अपाठि अपाठिषाताम् अपाठिषत। लुट्—पठिता पठितारौ। पठितासे। लृट्—पठिष्यते। आशी०—पठिषीष्ट।

मुच्—लट्—मुच्यते मुच्येते मुच्यन्ते। लोट्—मुच्यताम् मुच्येताम् मुच्यन्ताम्। विधि—मुच्येत मुच्येयाताम् मुच्येरन्। लङ्—अमुच्यत। अमुच्येताम् अमुच्यन्त।

लिट्—मुमुचे	मुमुचाते	मुमुचिरे
मुमुचिषे	मुमुचाथे	मुमुचिध्वे
मुमुचे	मुमुचिवहे	मुमुचिमहे
लुङ्—अमोचि	अमुक्षाताम्	अमुक्षत
अमुक्थाः	अमुक्षाथाम्	अमुग्ध्वम्
अमुक्षि	अमुक्ष्वहि	अमुक्ष्महि
लुट्—मोक्ता	मोक्तारौ	मोक्तारः
लृट्—मोक्ष्यते	मोक्ष्येते	मोक्ष्यन्ते
आशी०—मुक्षीष्ट	मुक्षीयास्ताम्	मुक्षीरन्
लृङ्—अमोक्ष्यत	अमोक्ष्येताम्	अमोक्ष्यन्त

म० पु०	अनायिष्यथा	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यध्व
उ० पु०	अनायिष्ये	अनायिष्यावहि	अनायिष्याम

कृ—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथा	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथा	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे ध्वे

दा—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्तमान—लट्

प्र० पु०	दीयते	दीयेते	दीयन्ते
म० पु०	दीयसे	दीयेथे	दीयध्वे
उ० पु०	दीये	दीयावहे	दीयामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	दीयताम्	दीयेताम्	दीयन्ताम्
म० पु०	दीयस्व	दीयेथाम्	दीयध्वम्
उ० पु०	दीयै	दीयावहै	दीयामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	दीयेत	दीयेयाताम्	दीयेरन्
म० पु०	दीयेथाः	दीयेयाथाम्	दीयेध्वम्
उ० पु०	दीयेय	दीयेवहि	दीयेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अदीयत	अदीयेताम्	अदीयन्त
म० पु०	अदीयथाः	अदीयेथाम्	अदीयध्वम्
उ० पु०	अदीये	अदीयावहि	अदीयामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	ददे	ददाते	ददिरे
म० पु०	ददिषे	ददाथे	ददिध्वे
उ० पु०	ददे	ददिवहे	ददिमहे

म० पु०	अनायिष्यथा	अनायिष्येथाम्	अनायिष्यध्वम्
उ० पु०	अनायिष्ये	अनायिष्यावहि	अनायिष्यामहि

कृ—सकर्मक—कर्मवाच्य

वर्त्तमान—लट्

प्र० पु०	क्रियते	क्रियेते	क्रियन्ते
म० पु०	क्रियसे	क्रियेथे	क्रियध्वे
उ० पु०	क्रिये	क्रियावहे	क्रियामहे

आज्ञा—लोट्

प्र० पु०	क्रियताम्	क्रियेताम्	क्रियन्ताम्
म० पु०	क्रियस्व	क्रियेथाम्	क्रियध्वम्
उ० पु०	क्रियै	क्रियावहै	क्रियामहै

विधिलिङ्

प्र० पु०	क्रियेत	क्रियेयाताम्	क्रियेरन्
म० पु०	क्रियेथाः	क्रियेयाथाम्	क्रियेध्वम्
उ० पु०	क्रियेय	क्रियेवहि	क्रियेमहि

अनद्यतनभूत—लङ्

प्र० पु०	अक्रियत	अक्रियेताम्	अक्रियन्त
म० पु०	अक्रियथाः	अक्रियेथाम्	अक्रियध्वम्
उ० पु०	अक्रिये	अक्रियावहि	अक्रियामहि

परोक्षभूत—लिट्

प्र० पु०	चक्रे	चक्राते	चक्रिरे
म० पु०	चकृषे	चक्राथे	चकृढ्वे ध्वे

सामान्यभूत—लुङ्

प्र० पु०	अदायि	अदायिषाताम् / अदिषाताम्	अदायिषत / अदिषत
म० पु०	अदायिष्ठा / अदिथा	अदायिषाथाम् / अदिषाथाम्	अदायिध्वम् / अदिध्वम्
उ० पु०	अदायिषि / अदिषि	अदायिष्वहि / अदिष्वहि	अदायिष्महि / अदिष्महि

अनद्यतनभविष्य—लुट्

प्र० पु०	दाता	दातारौ	दातार
म० पु०	दातासे	दातासाथे	दाताध्वे
उ० पु०	दाताहे	दातास्वहे	दातास्महे

अथवा

प्र० पु०	दायिता	दायितारौ	दायितार
म० पु०	दायितासे	दायितासाथे	दायिताध्वे
उ० पु०	दायिताहे	दायितास्वहे	दायितास्महे

सामान्यभविष्य—लृट्

प्र० पु०	दास्यते	दास्येते	दास्यन्ते
म० पु०	दास्यसे	दास्येथे	दास्यध्वे
उ० पु०	दास्ये	दास्यावहे	दास्यामहे

अथवा

प्र० पु०	दायिष्यते	दायिष्येते	दायिष्यन्ते
म० पु०	दायिष्यसे	दायिष्येथे	दायिष्यध्वे
उ० पु०	दायिष्ये	दायिष्यावहे	दायिष्यामहे

है' इस वाक्य मे राम स्वय नहीं पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। णिच् प्रत्यय लग कर अकर्मक धातु कभी कभी सकर्मक भी हो जाती है, और कभी कभी उसके अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओ के समान चलते हैं, धातु और तिङ् प्रत्ययो के बीच में अय जोड़ दिया जाता है।

तथा नियम १५६ मे उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है, जैसे—

(१) बुध्	(बोधति)	से	प्रेरणार्थक	बोधयति
(२) अद्	(अत्ति)	मे	,,	आदयति
(३) हु	(जुहोति)	मे	,,	हावयति
(४) दिव्	(दीव्यति)	मे	,,	देवयति
(५) सु	(सुनोति)	से	,,	सावयति
(६) तुद्	(तुदति)	से	,,	तोदयति
(७) रुध्	(रुणद्धि)	से	,,	रोधयति
(८) तन	(तनोति)	मे	,,	तानयति
(९) अश्	(अश्नाति)	से	,,	आशयति
(१०) चुर्	(चोरयति)	मे	,,	चोरयति

चुरादिगण की धातुओ के रूप प्रेरणार्थक मे भी वैसे ही होते है जैसे सादे में।

आशीर्लिङ्

प्र० पु०	दासीष्ट	दासीयास्ताम्	दासीरन्
म० पु०	दासीष्ठा	दासीयास्थाम्	दासीध्वम्
उ० पु०	दासीय	दासीवहि	दासीमहि

अथवा

प्र० पु०	दायिषीष्ट	दायिषीयास्ताम्	दायिषीरन्
म० पु०	दायिषीष्ठा	दायिषीयास्थाम्	दायिषीध्वम्
उ० पु०	दायिषीय	दायिषीवहि	दायिषीमहि

क्रियातिपत्ति—लृङ्

प्र० पु०	अदास्यत	अदास्येताम्	अदास्यन्त
म० पु०	अदास्यथा	अदास्येथाम्	अदास्यध्वम्
उ० पु०	अदास्ये	अदास्यावहि	अदास्यामहि

अथवा

प्र० पु०	अदायिष्यत	अदायिष्येताम्	अदायिष्यन्त
म० पु०	अदायिष्यथा	अदायिष्येथाम्	अदायिष्यध्वम्
उ० पु०	अदायिष्ये	अदायिष्यावहि	अदायिष्यामहि

पा—लट्—पीयते पीयेते पीयन्ते। पीयसे पीयेथे पीयध्वे। पीये पीयावहे पीयामहे। लोट्—पीयताम् पीयेताम् पीयन्ताम्। पीयस्व पीयेथाम् पीयध्वम्। पीयै पीयावहै पीयामहै। विधि—पीयेत पीयेयाताम् पीयेरन्। पीयेथा पीयेयाथाम् पीयेध्वम्। पीयेय पीयेवहि पीयेमहि। लङ्—अपीयत अपीयेताम् अपीयन्त। अपीयथा

साथ साथ और अर्थ का भी बोध हो जाता है। जैसे हिन्दी में 'मै जाता हूँ' के साथ यदि चाहने का अर्थ लगाना हो तो 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य का प्रयोग करेंगे। इस मे दो धातुओ (जाना—और चाहना—) का प्रयोग हुआ, किन्तु संस्कृत मे गम् धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय जोड कर चाहने का अर्थ निकाल लिया जाता है, जसे गम्—जाना, जिगमिष्—जाने की इच्छा करना (अहं गच्छामि—अहं जिगमिषामि)। जिगमिष्—को सन् प्रत्ययान्त धातु कहेंगे। सन् आदि प्रत्यय धातु और तिङ् प्रत्ययो के बीच मे जोडे जाते हैं तब क्रिया की सिद्धि होती है।

प्रत्ययान्त धातुएं चार प्रकार की होती हैं —

(१) णिजन्त—णिच् प्रत्यय में अन्त होने वाली।

(२) सन्नन्त—सन् प्रत्यय मे अन्त होने वाली।

(३) यङन्त—यङ् प्रत्यय मे अन्त होने वाली तथा

(४) नामधातु—किसी संज्ञा को धातु रूप देकर बनाई हुई धातु।

णिजन्त धातु

१६४—किसी धातु मे जब प्रेरणा का अर्थ लाना हो तो णिच् प्रत्यय जोड़ देते हैं। करना से कराना, पढ़ना से पढ़ाना, पकाना से पकवाना, बनाना से बनवाना आदि प्रेरणा के अर्थ हैं। सादी धातु में जो कर्ता रहता है वह प्रेरणार्थक धातु में स्वयं कार्य न करके किसी दूसरे से कार्य कराता है, जैसे 'राम पकाता है' इस वाक्य मे राम स्वयं पकाने का कार्य करता है 'किन्तु राम पकवाता

है' इस वाक्य में राम स्वयं नहीं पकाता, पकाने का काम किसी और से कराता है। णिच् प्रत्यय लग कर अकर्मक धातु कभी कभी सकर्मक भी हो जाती हैं, और कभी कभी उनके अर्थ में परिवर्तन भी हो जाता है।

(क) णिजन्त धातु के रूप चुरादिगण की धातुओं के समान चलते हैं धातु और तिङ् प्रत्ययों के बीच में अय जोड़ दिया जाता है।

तथा नियम १५६ में उल्लिखित स्वर का परिवर्तन होता है जैसे—

(१) बुध्	(बोधति)	से	प्रेरणार्थक	बोधयति
(२) अद्	(अत्ति)	से	"	आदयति
(३) हु	(जुहोति)	से	"	हावयति
(४) दिव्	(दीव्यति)	से	"	देवयति
(५) सु	(सुनोति)	से	"	सावयति
(६) तुद्	(तुदति)	से	"	तोदयति
(७) रुध्	(रुणद्धि)	से	"	रोधयति
(८) तन	(तनोति)	से	"	तानयति
(९) अश्	(अश्नाति)	से	"	आशयति
(१०) चुर्	(चोरयति)	से	"	चोरयति

चुरादिगण की धातुओं के रूप प्रेरणार्थक में भी वैसे ही होते हैं जैसे सादे में।

नेपद। कुछ एक पद की ही होती हैं, कुछ दूसरे की ही और कोई कोई दोनों पदों की। किन दशाओं में धातु एक पद को छोड़कर दूसरे की हो जाती है, यह यहां दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

भाववाच्य तथा कर्मवाच्य में धातु केवल आत्मनेपद में रहती है—कर्तृवाच्य में चाहे वह परस्मैपद में हो, चाहे आत्मनेपद में।

इस बार थोड़े से नियम यहाँ दिए जाते हैं।

(क) अधिपूर्वक इङ् धातु का, जन धातु का, द्रु धातु का, बुध तथा युध् का णिजन्त प्रयोग हो तो ये परस्मैपदी होती हैं, जैसे—छात्र अधीते, गुरु छात्रमध्यापयति जनयति द्रावयति बोधयति और योधयति।

(ख) कृ[1] धातु उभयपदी है। परन्तु यदि 'अनु' अथवा 'परा' उपसर्ग लगा हो तो केवल परस्मैपद में होती है (अनुकरोति पराकरोति)। नीचे लिखी दशाओं में वह केवल आत्मनेपद में होती है —

'अधि' उपसर्ग लगाकर क्षमा करने या अधिकार कर लेने के अर्थ में (शत्रुमधिकुरुते—वैरी को क्षमा कर देता है अथवा उस पर कब्ज़ा कर लेता है), 'वि' उपसर्ग लगाकर अकर्मक बनाने के अर्थ में (छात्रा विकुर्वते—विकार लभन्ते) अथवा जब गन्धन (हिंसा, हानि पहुँचाना) अवक्षेपण (निन्दा, भर्त्सना) सेवन, साहसिक कर्म प्रतियत्न (किसी गुण का स्थापन), प्रकथन अथवा धर्मार्थ में लग जाने का बोध कोई उपसर्ग जोड़ कर कराया जाय, जैसे —

1. अनुपराभ्यां कृञः । १ । ३।७९ ॥ अधेः प्रसहने। वेः शब्दकर्मणः । अकर्मकाच्च । १ । ३ । ३३–३५ ॥ गन्धनावक्षेपणसेवनसाहसिक्यप्रतियत्नप्रकथनोपयोगेषु कृञः । १ । ३ । ३२ ॥

(ख) कुछ धातुओं के साथ ऊपर लिखे हुए सभी परिवर्तन नहीं होते मुख्य मुख्य धातुओं का भेद यह है —

अम् में अन्त होने वाली धातुओं में (अम्, कम्, चम्, शम् और यम् को छोड़ कर) उपधा के अकार को वृद्धि नहीं होती, जैसे—गम् से गमयति, किन्तु कम् से कामयते होता है।

बहुधा आकारान्त (और ऐसी ए, ऐ, ओ में अन्त होने वाली धातुएँ जो आकारान्त हो जाती हैं) धातुओं के अनन्तर अय् के पूर्व प् जोड़ दिया जाता है, जैसे—दा से दापयति, स्ना से स्नापयति गै से गापयति। मि, मा, दी, जि, क्री में भी प् जोड़ दिया जाता है और इकार का आकार हो जाता है, जैसे—मापयति, दापयति, जापयति, क्रापयति।

(ग) नीचे लिखी धातुओं के प्रेरणार्थक रूप इस प्रकार चलते हैं —

इण् (जाना) से गमयति।

अधि+इङ् से अध्यापयति,—प्रत्यापयति।

चि (इकट्ठा करना) से चाययति ते, चापयति ते।

जागृ (जागना) से जागरयति।

दुष् (दोषी होना) से दूषयति ते, दोषयति ते।

प्री (प्रसन्न होना) से प्रीणयति।

रुह् (उगना) से रोहयति ते, रोपयति ते।

वा (डोलना) से वापयति, वाजयति।

हन् (मारना) से घातयति।

(घ) प्रेरणार्थक धातुओं के रूप चुरादिगणी धातुओं के समान दसों लकारों, तीनों वाच्यों और दोनों पदों में चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् धातु के रूप प्रथम पुरुष एक वचनमें दिखाए

उत्कुरुते (सूचना देता है—सूचना देकर हानि पहुँचाता है)। श्येनो वर्तिकामुदाकुरुते (बाज़ बटेर को डराता है)। हरिमुपकुरुते (विष्णु की सेवा करता है)। परदारान् प्रकुर्वते (वे पराई स्त्रियों पर साहस से अत्याचार करते हैं)। एध उदकस्य उपस्कुरुते (ईंधन पानी में गरमी पहुँचाता है। गाथा प्रकुरुते (गाथाएँ कहता है)। शतं प्रकुरुते (सौ रुपए धर्मार्थ लगाता है)।

(ग) क्रम[1] धातु उभयपदी है, किन्तु उप और परा के साथ बिना रोक टोक के चलने, बढ़ने और उत्साह के अर्थ में (उपक्रमते, पराक्रमते) आङ् के साथ सूर्य आदि के निकलने के अर्थ में (सूर्य आक्रमते), प्र और उप के साथ आरंभ करने के अर्थ में (वक्तुं प्रक्रमते उपक्रमते)—आत्मनेपद में ही होती है।

(घ) क्री[2] के पूर्व यदि अव, परि अथवा वि हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—अवक्रीणीते, परिक्रीणीते, विक्रीणीते।

(ङ) क्रीड्[3] धातु के पूर्व यदि अनु, आ परि अथवा सम् में से कोई उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, अनु परि आ-स क्रीडते।

---

१ वृत्तिसर्गतायनेषु। उपपराभ्याम्। आङ् उद्गमने (ज्योतिरुद्गमन इति वाच्यम्)। १। ३। ३८–४०। प्रोपाभ्यां समर्थाभ्याम्। १। ३। ४२।

२ परि यवेभ्य क्रियः। १। ३। १८।

३ क्रीडोऽनुसम्परिभ्यश्च। १। ३। २१॥

जाते हैं। कर्तृवाच्य में—लट्—बोधयति, बोधयते । लोट्—बोधयतु बोधयताम्। विधि—बोधयेत्, बोधयेत । लङ्—अबोधयत् अबोधयत । लिट्—बोधयाञ्चकार, बोधयाम्बभूव, बोधयामास बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूव, बोधयामास । लुङ्—अबूबुधत्, अबूबुधत । लुट्—बोधयिता बोधयिता । लृट्—बोधयिष्यति, बोधयिष्यते । आशी० बोध्यात् बोधयिषीष्ट। लृङ्—अबोधयिष्यत्, अबोधयिष्यत ।

कर्मवाच्य में—लट्—बोध्यते । लोट्—बोध्यताम् । विधि—बोध्येत । लङ्—अबोध्येत । लिट्—बोधयाञ्चक्रे, बोधयाम्बभूवे, बोधयामासे। लुङ्—अबोधि। लुट्—बोधिता । लृट्—बोधिष्यते । आशी०—बोधिषीष्ट । लृङ्—अबोधिष्यत ।

सन्नन्त धातु

१६५-किसी कार्य के करने की इच्छा करने का अर्थ बतलाने के लिए उस कार्य का अर्थ बतलाने वाली धातु के अनन्तर सन् प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—मैं जाना चाहता हूँ। यहाँ मैं जाने की इच्छा करता हूँ इस लिए जाने का बोध कराने वाली धातु के अनन्तर संस्कृत में सन् प्रत्यय जोड़ कर 'जाना चाहता हूँ' यह अर्थ निकल आएगा (गम्—से जिगमिष)। जो कर्ता जाने की क्रिया का होगा वही इच्छा करने वाला होना चाहिए, यदि दूसरा

[1] धातोः कर्मणः समानकर्तृकादिच्छायां वा। ३। १। ७॥

(च) क्षिप्[1] के पूर्व यदि अभि प्रति अति में से कोइ उपसर्ग हो तो वह परस्मैपदी होती है, अभि अति प्रति क्षिपति।

(छ) गम्[2] के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और मिलने, तथा उपयुक्त होने का अर्थ दिखाना हो तो आत्मनेपदी हो जाती है। सखीभि सङ्गच्छते—सखियों से मिलती है। इय वार्ता सङ्गच्छते—यह बात ठीक है।

(ज) चर्[3] के पूर्व यदि उत् उपसर्ग हो और धातु सकर्मक हो जाय अथवा सम् पूर्वक हो और तृतीयान्त शब्द के साथ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाता है, जैसे—धर्ममुच्चरते—धर्म के विपरीत करता है, किन्तु वाष्पमुच्चरति—आंसू निकलता है, रथेन सञ्चरते (रथ पर चलता है)।

(झ) जि[4] के पूर्व यदि 'वि' अथवा 'परा' हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, शत्रून् विजयते, पराजयते वा, अध्ययनात् पराजयते—पढ़ने से हार जाता है।

(ञ) ज्ञा[5] धातु सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी हो जाती है (जिज्ञासते)। नीचे लिखी दशाओं में भी वह आत्मनेपदी होती है —

---

१ अभिप्रत्यतिभ्य क्षिप । १ । ३ । ८० ॥
२ समो गम्यृच्छिभ्याम् । १ । ३ । २९ ।
३ उदश्चर सकर्मकात् । समस्तृतीयायुक्तात् । १। ३ । ५३—५४ ॥
४ विपराभ्या जे । १ । ३ । १९ ॥
५ अपह्नवे ज्ञ । अकर्मकाच्च । सम्प्रतिभ्यामनाध्याने १।३ ४४—४६॥

कर्त्ता होगा तो सन् प्रत्यय नहीं लग सकता, जैसे 'मैं इच्छा करता हूँ कि वह जावे', इस वाक्य में इच्छा करने वाला मैं हूँ और जाने वाला वह, यहाँ सन् लगाना असम्भव होगा किन्तु मैं उसे पढ़ाना चाहता हूँ, इस वाक्य में सन् लग सकता है, क्योंकि यहाँ 'पढ़ाना' तथा 'चाहना' दोनों क्रियाओं का कर्ता एक ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि प्रेरणार्थक धातु के अनन्तर भी सन् लग सकता है किन्तु तभी जब प्रेरणा करने वाला और इच्छा करने वाला एक ही व्यक्ति हो।

सन् प्रत्यय लगाना न लगाना अपनी इच्छा पर है। यदि न लगाना चाहें तो यही अर्थ इष्, अभिलष् आदि चाहने का अर्थ बतलाने वाली क्रियाओं के प्रयोग से भी लाया जा सकता है, जैसे—'मैं जाना चाहता हूँ' का अनुवाद चाहे अहं जिगमिषामि' करें चाहे 'अहं गन्तुमिच्छामि' या 'अहं गन्तुमभिलषामि' आदि से करें, दोनों ढंग ठीक होंगे।

इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि इच्छा करने की क्रिया कर्म स्वरूप होना चाहिए, और कोई कारक नहीं। ऊपर 'मैं जाना चाहता हूँ' इस वाक्य में 'चाहता हूँ' क्रिया का 'जाना' कर्म है तभी सन् प्रत्यय लगाया जा सका है। यदि 'मैं चाहता हूँ कि मेरे खाने से बल बढ़े' इस प्रकार का वाक्य हो जहाँ 'खाने से' करण कारक है तो ऐसी दशा में 'खाने' की धातु के अनन्तर सन् लगा कर इच्छा का बोध नहीं कराया जा सकता।

(क) सन् प्रत्यय का स् धातु में जोड़ा जाता है, यह स् सन्धि के (२६वें) नियम के अनुसार कहीं कहीं ष हो जाता है। स् जोड़ने के पूर्व

यदि अकर्मक हो (सर्पिषो जानाते), यदि 'अप' पूर्वक अपह्नव (इनकारी) का अर्थ बताती हो (शतमपजानीते —सौ (रुपया) से इनकार करता है), यदि 'प्रति' पूर्वक प्रतिज्ञा का अर्थ बताती हो (शत प्रतिजानीते—सौ रुपए की प्रतिज्ञा करता है), 'सम्' पूर्वक आशा करने के अर्थ में (शत सञ्जानीते—सौ रुपए की आशा करता है)।

(ट) दा के पूर्व यदि आङ् उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी होती है[1] (आदत्ते , नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवता स्नेहेन या पल्लवम्)।

(ठ) दृश् सन्नन्त होने पर आत्मनेपदी होती है[2] (दिदृक्षते) तथा 'सम्' पूर्वक यदि अकर्मक हो तब भी आत्मनेपदी होती है (सम्पश्यते— भली प्रकार सोचता है)।

(ड) नी धातु से जब सम्मान करने उठाने, उपनयन करने, ज्ञान,[3] वेतन देकर काम में लगाने, कर (टैक्स) आदि अदा करने (चुकाने) अथवा भले कार्य में खर्च करने का अर्थ निकलता हो तो वह आत्मनेपदी होती है, जैसे -(क्रम से) शास्त्रे शिष्यं नयते (शिष्य को शास्त्र पढ़ाता है— इससे उसका सम्मान होगा)। दण्डमुन्नयते (डंडा ऊपर उठाता है) माणवकमुपनयते (लड़के का उपनयन करता है) तत्त्वं नयते (तत्व का

१—आङो दोऽनास्यविहरणे । १ । ३ २० ॥

२—अर्ति श्रु दृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । वा ।

३—सम्माननोत्सञ्जनाचार्यकरणज्ञान भृतिविगणनव्ययेषुनियः । १ ३ । ३६ ।

धातु को पृष्ठ ३१५ में उल्लेख किये हुए नियमों के अनुसार अभ्यस्त कर देना आवश्यक है। अभ्यास में यदि अकार हो तो उसका इकार हो जाता है, जैसे—पठ्+सन्=पठ्+पठ्+सन्=प+पठ्+स=पिपठ्+प् धातु यदि सेट् हो तो स् के पूर्व बहुधा इकार आ जाता है परन्तु कभी कभी किसी किसी धातु में नहीं भी आता, यदि वेट् हो तो बहुधा इच्छानुसार इकार आता है, और यदि अनिट् हो तो बहुधा नहीं आता, जैसे—सट् पठ् धातु का सन्नन्त रूप पिपठ्+इ+ष्=पिपठिष् हुआ, किन्तु सेट् भू धातु का बुभूष्—हुआ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई सन्नन्त धातु के रूप धातु के पद के अनुसार दसों लकारों में चलते हैं। परोक्षभूत में आम् जोड़ कर कृ, भू और अस् धातुओं के रूप जोड़ दिए जाते हैं।

उदाहरणार्थ बुध् धातु के प्रथम पुरुष एक वचन के रूप दिए जाते हैं।

	कर्तृवाच्य		कर्मवाच्य
लट्	बुबोधिषति	बुबोधिषते	बुबोधिष्यते
लोट्	बुबोधिषतु	बुबोधिषताम्	बुबोधिष्यताम्
विधि	बुबोधिषेत्	बुबोधिषेत	बुबोधिष्येत
लङ्	अबुबोधिषत्	अबुबोधिषत	अबुबोधिष्यत
लिट्	बुबोधिषाञ्चकार	बुबोधिषाञ्चक्रे	बुबोधिषाञ्चक्रे
	बुबोधिषाम्बभूव	बुबोधिषाम्बभूवे	बुबोधिषाम्बभूवे
	बुबोधिषामास	बुबोधिषामासे	बुबोधिषामासे
लुङ्	अबुबोधिषीत्	अबुबोधिषिष्ट	अबुबोधिषि

निश्चय करता है अर्थात् ज्ञान प्राप्त करता है), कर्मकरानुपनयते (मजदूर लगाता है) कर विनयते (टैक्स चुकाता है), तथा शतं विनयते (सौ पए अच्छी तरह खर्च करता है) ।

(ड) प्रच्छ् धातु के पूर्व 'आ' लगाकर जब अनुमति लेने का अर्थ बतलाना हो तो यह धातु आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे—आपृच्छस्व प्रियसखममुम् (इस प्रियमित्र से जाने की अनुमति ले लो) । 'सम्' लगा कर जब यह धातु अकर्मक होती है तब भी आत्मनेपदी हो जाता है सम्पृच्छते) ।[1]

(ढ) भुज् धातु रक्षा करने के अर्थ में परस्मैपदी होता है और सब र्थों में आत्मनेपदी । महीं भुनक्ति (पृथ्वी की रक्षा करता है) महीं बुभुजे पृथ्वी का भोग किया)[2]

(त) रम् आत्मनेपदी धातु है किन्तु वि, आङ्, परि और उप उपसर्गों के अनन्तर आत्मनेपदी हो जाती है, जैसे – वत्सैतस्माद्विरम, आरमति, परिरमति, यज्ञदत्त उपरमति (रमयति) ।[3]

(थ) वद् नीचे लिखे अर्थों में आत्मनेपदी होती है —[4]

१—आङि नुप्रच्छ्योः । वा० ॥

२—भुजोऽनवने । १ । ३ । ६६ ॥

३—व्याङ्परिभ्योरमः । उपाच्च । १ ३ । ८३—८४ ॥

४—भासनोपसंभाषाज्ञानयत्नविमत्युपमन्त्रणेषु वदः । १ । ३ । ४७ ॥ ...वादे । १ । ३ । ७३ ॥

लुट्	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता	बुबोधिषिता
लृट्	बुबोधिषिष्यति	बुबोधिषिष्यते	बुबोधिषिष्यते
आशी०	बुबोधिष्यात्	बुबोधिषिषीष्ट	बुबोधिषिषीष्ट
लृङ्	अबुबोधिषिष्यत्	अबुबोधिषिष्यत	अबुबोधिषिष्यत

यङन्त धातु

१६६—व्यञ्जन से आरम्भ होने वाली किसी भी एकाच् धातु[1] के अनन्तर क्रिया को बार बार करने अथवा क्रिया को खूब करने का बोध कराने के लिए यङ् प्रत्यय लगाया जाता है। यह प्रत्यय दसवें गण की (सूच्, सूत्र, मूत्र्, अट्, ऋ, अश् और ऊर्ण को छोड़कर) किसी धातु के अनन्तर नहीं लगता, केवल प्रथम नौ गणों की धातुओं के उपरान्त लग सकता है; जैसे—नेनीयते—बार बार ले जाता है। देदीयते—खूब देता है।

यङ् प्रत्यय धातु में दो प्रकार से जोड़ा जाता है, एक को जोड़ने से परस्मैपद में रूप चलते हैं, और दूसरे के जोड़ने से आत्मनेपद में। परस्मैपद वाले रूप बहुधा वैदिक संस्कृत में मिलते हैं इस लिए उस का उल्लेख यहाँ अनावश्यक है। आत्मनेपद के यङन्त रूपों का दिग्दर्शन कराया जाता है।

(क) धातु में पहले यङ् का य् जोड़ा जाता है, जैसे—नी+यङ्= नीय, भूय, नन्द्य। नियम १६१ (३) में उल्लिखित किसी किसी धातु का

१ धातोरेकाचो हलादेः क्रियासमभिहारे यङ्। ३। १।२२। पौनःपुन्यं भृशार्थश्च क्रियासमभिहारः। तस्मिन्द्योत्ये यङ् स्यात्।

भासन (चमकना)—शास्त्रे वदते (शास्त्र में चमकता है, अर्थात् इतना विद्वान् है कि चमकता है), उपसम्भाषा (मेल मिलाप करना, शान्त करना)—भृत्यानुपवदते (नौकरों को समझा कर शान्त करता है), ज्ञान—शास्त्रे वदते (शास्त्र जानता है), यत्न—क्षेत्रे वदते (खेत में उद्योग करता है), विमति (झगड़ा)—परस्पर विवदन्ते स्मृतय (स्मृतियाँ परस्पर झगड़ा करती हैं), उपमन्त्रण (खुशामद करना)—दातार उपवदते (दाता की प्रशंसा करता है), अपपूर्वक निन्दा करने के अर्थ में—अपवदते—निन्दा करता है ।

(द) विश[1] धातु के पूर्व यदि 'नि' अथवा 'अभिनि' उपसर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है , जैसे—निविशते, अभिनिविशते ।

(ध) श्रु[2] धातु के पूर्व यदि 'सम्' उपसर्ग हो और अच्छी तरह सुनने का अर्थ हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, सम्शृणुते (अच्छी तरह सुनता है), सम्शृणोति (सुनता है) । सन्नन्त श्रु आत्मनेपदी होती है (शुश्रूषते) किन्तु 'आ' अथवा 'प्रति' के अनन्तर परस्मैपदी ही रहती है (आशुश्रूषति प्रतिशुश्रूषति) ।

(न) स्था[3] धातु के पूर्व यदि सम्, अव, प्र और वि में से कोई

१ नेर्विशः । १ । ३ ।१७।।

२ अर्तिश्रुदृशिभ्यश्चेति वक्तव्यम् । वा० ।

३ समवप्रविभ्यः स्थः ।१।३।२२॥ आङः प्रतिज्ञायामुपसंख्यानम् । वा० । उदोऽनूर्ध्वकर्मणि । १ । ३ । २४ ॥ उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरणपथिष्विति वाच्यम् । वा० । वा लिप्सायाम् । वा० ।

विहित रूप यहाँ भी हो जाता है, जैसे—दा + यङ = दीय बन्ध् + यङ् = बध्य ।

इस प्रकार से प्राप्त हुए यङन्त रूप का अभ्यास पृ० ३१६ पर लिखे हुए नियमों के अनुसार किया जाता है, केवल अभ्यस्त अक्षर के अ का आ, इ अथवा ई का ए तथा उ अथवा ऊ का ओ हो जाता है जैसे —व्रज्+यङ् =वव्रज्य = वाव्रज्य, दीय = देदीय, नेनीय, बोभूय ।

(ख) इस प्रकार बनी हुई धातु के आत्मनेपद में दसों लकारों में रूप चलते हैं। उदाहरणार्थ बुध् धातु के यङन्त रूप प्रथम पुरुष एकवचन में दिए जाते हैं —

लकार	कर्तृवाच्य	कर्मवाच्य
लट्	बोबुध्यते	बोबुध्यते
लोट्	बोबुध्यताम्	बोबुध्यताम्
विधि	बोबुध्येत	बोबुध्येत
लङ्	अबोबुध्यत	अबोबुध्यत
लिट्	बोबुधाञ्चक्रे	बोबुधाञ्चक्रे
लुङ्	अबोबुधिष्ट	अबोबुधि
लुट्	बोबुधिता	बोबुधिता
लृट्	बोबुधिष्यते	बोबुधिष्यते
आशी०	बोबुधिषीष्ट	बोबुधिषीष्ट
लृङ्	अबोबुधिष्यत	अबोबुधिष्यत

सर्ग हो तो वह आत्मनेपदी हो जाती है, सतिष्ठते, अवतिष्ठते, प्रतिष्ठते र वितिष्ठते। प्रतिज्ञा करनेके अर्थ में 'आङ्' पूर्वक स्था धातु आत्म दी होती है, शब्द नित्यम् आतिष्ठते (शब्द नित्य है यह प्रतिज्ञा करता)। 'उद्' पूर्वक स्था धातु का यदि ऊपर उठना अर्थ न हो तो, तथा 'उप क देवपूजा, मिलने, मित्र बनाने, सड़क के जाने तथा लिप्सा के अर्थों आत्मनेपदी होती है।

मुक्तावुत्तिष्ठते, किन्तु पीठादुत्तिष्ठति, आदित्यमुपतिष्ठते (सूर्य ना ता है), गङ्गा यमुनामुपतिष्ठते (गङ्गा यमुना से मिलती है), रथिकानु तिष्ठते (रथवालों से मित्रता करता है), पन्था काशीमुपतिष्ठते, न्था काशी को जाता है), भिक्षुक प्रभुमुपतिष्ठते उपतिष्ठति वा (भिखारी लिक के पास—लालच से—आता है)।

एकादश सोपान

कृदन्त विचार

१७१-धातु में जिस प्रत्यय को जोड़ कर संज्ञा, विशेषण यवा अव्यय बनता है, उसको कृत् प्रत्यय कहते हैं और इसके रा जो शब्द सिद्ध होता है उसको कृदन्त (जिसके अन्त में कृत्) कहते हैं, जैसे—कृधातु से तृच प्रत्यय जोड़कर 'कर्तृ' शब्द बना।[1]

1 धातो। ३। १। ९१।

नामधातु

१६७–जब किसी सुबन्त (संज्ञा आदि) के अनन्तर कोई प्रत्यय जोड कर उसे धातु बना लेते हैं तो उसे नामधातु कहते हैं। नाम संज्ञा को ही कहते हैं इसीलिए यह नाम पड़ा। नामधातुओं के विशेष २ अर्थ होते हैं, जैसे—पुत्रायति (पुत्र+क्यच्)—पुत्र की इच्छा करता है। कृष्णाति (कृष्ण+क्विप्)—कृष्ण के समान आचरण करता है। लोहितायते (लोहित+क्यष्)—लाल हो जाता है। मुण्डयति (मुण्ड+णिच्)—मूडता है, इत्यादि।

नामधातुओं के रूप सभी लकारों में चल सकते हैं, परन्तु बहुधा इनका प्रयोग वर्तमान काल में ही होता है।

नीचे नाम धातुओं के केवल दो मुख्य प्रत्यय दिए जाते हैं।

१६८–क्यच् प्रत्यय।

(क) जिस वस्तु की इच्छा[1] करे उस वस्तु के सूचक शब्द के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगाया जाता है।

(ख) क्यच् (य) जुड़ने के पूर्व शब्द के अन्तिम स्वर में परिवर्तन हो जाता है, अ, आ का ई, इ का ई, उ का ऊ, ऋ का री, ओ का अव् और औ का आव्। अन्तिम ट्, ज्, ण्, न् का लोप कर दिया जाता है और पूर्ववर्ती स्वर का ऊपर लिखे नियम के अनुसार परिवर्तन हो जाता है। मकारान्त शब्द के अनन्तर तथा अव्यय के अनन्तर क्यच् जुड़ता ही नहीं। उदाहरणार्थ—

१—सुप आत्मनः क्यच्। ३। १। ८॥

यहाँ तृच् कृत् प्रत्यय है और 'कर्तृ' कृदन्त है, यह संज्ञा है और इसके रूप अन्य संज्ञाओं की तरह विभक्तियों में चलेंगे।

कृत्[1] और तिङ् प्रत्ययों में यह अन्तर है कि कृदन्त संज्ञा, विशेषण अथवा अव्यय होते हैं—क्रिया नहीं, किन्तु तिङन्त सदा क्रिया ही होते हैं। कृत् और तद्धित में यह अन्तर है कि तद्धित सदा किसी सिद्ध संज्ञा, विशेषण, अव्यय अथवा क्रिया के अनन्तर जोड़कर अन्य संज्ञा, विशेषण, अव्यय, क्रिया आदि बनाने के लिये होता है किन्तु कृत् धातु में ही जोड़ा जाता है।

जो कृदन्त संज्ञा अथवा विशेषण होते हैं उनके रूप चलते हैं, जो अव्यय होते हैं वे एकरूप रहते हैं, जैसे—गम् धातु से तृच् लगाकर गन्तृ बना, इसके रूप चलेंगे, किन्तु क्त्वा लगाकर गत्वा बनने पर यह सर्वदा एकरूप रहेगा।

कोई कोई कृदन्त भी कभी कभी क्रिया का काम देता है, जैसे—स गत (वह गया) में 'गत' शब्द। वस्तुत यह विशेषण है और इस वाक्य में क्रिया छिपी हुई है स गत (अस्ति)।

कृत् प्रत्ययों के मुख्य तीन भेद हैं — कृत्य, कृत् और उणादि।

कृत्य प्रत्यय

१७२—कृत्य[2] प्रत्यय सात हैं—तव्यत्, तव्य अनीयर्, केलिमर्,

१ कृदतिङ् । ३ । १ । ९३ ।

२ कृत्याः । ३ । १ । ९५ ।

पुत्रम् आत्मन इच्छति=पुत्रीयति (पुत्र+क्यच्)—अपने लिये त्र की इच्छा करता है। गङ्गाम् आत्मन इच्छति=गङ्गीयति (गङ्गा+क्यच) —अपने लिए गङ्गा की इच्छा करता है। इसी प्रकार कवीयति (कवि+ यच्) नदीयति (नदी+क्यच्), विष्णूयति (विष्णु+क्यच्), वधूयति धू+क्यच्), कर्त्रीयति (कर्तृ+क्यच्), गव्यति (गो+क्यच्), नाव्यति नौ+क्यच्), राजीयति (राजन्+क्यच्) इत्यादि।

(ग) क्यच् प्रत्यय किसी चीज़ को कुछ समझने के अर्थ में भी प्रयुक्त ता है। इस दशा में जो समझा जाय अर्थात् जो उपमान हो उस के अनन्तर क्यच् प्रत्यय लगता है जैसे वह विद्यार्थी को पुत्र समझता है अर्थात उसके साथ पुत्र का सा व्यवहार करता है। यहाँ पुत्र के अनन्तर क्यच प्रत्यय लगेगा। (गुरु छात्रं पुत्रीयति), विष्णूयति द्विजम्—ब्राह्मण को विष्णु के समान समझता है। प्रासादीयति कुट्यां भिक्षु—भिखारी कुटी को महल समझता है, कुटीयति प्रासादे राजा—राजा महल को कुटी समझता है।

(घ) क्यच् में अन्त होने वाली धातु के रूप परस्मैपद में सब लकारों में चलते हैं, यदि प्रत्यय के य के पूर्व में व्यञ्जन हो तो लिट्, लोट्, विधि और लङ् को छोड़कर शेष लकारों में यकार का लोप कर दिया जाता है, जैसे=समिध्यति, समिधिष्यति आदि।

१—उपमानादाचारे। ३।१।१०। अधिकरणाच्चेति वक्तव्यम्।

यत्, क्यप्, ण्यत्। ये प्रत्यय सदा भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयुक्त होते हैं, कर्तृवाच्य में नहीं। अंग्रेजी में जो काम पोटेंशल् पार्टिसिप्ल् (Potential Participle) से लिया जाता है वही काम संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द करते हैं। इनको संज्ञाओं के विशेषण स्वरूप भी प्रयोग में लाते हैं, जैसे—पक्तव्या माषा —जो उरद पकाने चाहिए वे ; कर्तव्य कर्म—वह काम जो करना चाहिए प्राप्तव्या सम्पत्ति —वह संपत्ति जिसे प्राप्त करना चाहिए, गन्तव्या नगरी—वह नगरी जहाँ जाना चाहिए, स्नानीय चूर्णम् दानीयो विप्र इत्यादि इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि हिन्दी में जो अर्थ 'चाहिए' 'योग्य' द्वारा प्रकट किया जाता है वह संस्कृत में कृत्य प्रत्ययान्त शब्द द्वारा होता है। चाहिये वाला भाव कर्तृवाच्य में बहुधा विधि लिङ् से भी सूचित होता है, जैसे—रामः सीतां पुनः गृह्णीयात्—राम को चाहिए कि सीता को फिर ग्रहण करें अथवा राम को योग्य है कि सीता को फिर ग्रहण करें। भृत्यः स्वामिनं सेवेत—नौकर मालिक की सेवा करे, नौकर को मालिक की सेवा करनी चाहिए अथवा करनी योग्य है, इत्यादि। यदि इस प्रकार की विधिलिङ् की क्रिया को कर्तृवाच्य से भाववाच्य में पलटना हो तो कृत्यान्त शब्द प्रयोग में लाना चाहिए, जैसे रामेण सीता पुनर्ग्रहीतव्या, भृत्येन स्वामी सेवनीयः आदि। ऊपर कह आये हैं कि कृदन्त क्रिया

१. कर्तरि कृत्। ३। ४। ६७। तयोरेवकृत्यक्तखलर्थाः।३।४। ७०।

२ कृत्यल्युटोबहुलम्। ३। ३। ११३।।

१६९—क्यङ्

(क) किसी सुबन्त के अनन्तर 'जैसा वह करता है वैसा ही यह करता है' इस अर्थ का बोध कराने के लिए क्यङ् (य) प्रत्यय लगाकर नामधातु बनाते हैं।[1]

(ख) इसके रूप आत्मनेपद में चलते हैं। इस प्रत्यय के य के पूर्व सुबन्त का अ दीर्घ कर दिया जाता है, दीर्घ आ वैसा ही रहता है और शेष स्वर जैसे क्यच् के पूर्व (१६८ ख) बदलते हैं वैसे ही बदलते हैं। शब्द के अन्तिम स् का विकल्प से (किन्तु ओजस् और अप्सरस् का नित्य) लोप हो जाता है। उदाहरणार्थ—

कृष्ण इवाचरति = कृष्णायते—कृष्ण के समान आचरण करता है। इसी प्रकार ओजायते—ओजस्वी के समान आचरण करता है, गदभी अप्सरायते —गदही अप्सरा के समान आचरण करती है। यशायते अथवा यशस्यते —यशस्वी के समान आचरण करता है। विद्वायते अथवा विद्वस्यते—विद्वान् के समान आचरण करता है।

(ग) स्त्री प्रत्ययान्त शब्द का (यदि वह का में अन्त न होता हो) स्त्री प्रत्यय गिरा दिया जाता है और शेष में क्यङ् जुड़ता है, जैसे—कुमारीव आचरति—कुमारायते, युवतीव आचरति—युवायते।

पदव्यवस्था

१७०—ऊपर नियम १४० (घ) में बता चुके हैं कि संस्कृत भाषा में धातुएँ दो पदों में रक्खी जाती हैं—परस्मैपद और आत्म

[1] कर्तुः क्यङ् सलोपश्च। ३। १। ११। ओजसोऽप्सरसो नित्यमितरेषां विभाषया। वा०।

नहीं होते, इन प्रयोगों मे भी ग्रहीतव्या और सेवनीय क्रिया नहीं हैं, किन्तु विशेषण। अंगरेजी में इनको प्रेडिकेटिव् ऐड्जेक्टिव् (Predicative adjective कहते हैं। कृत्यान्त शब्दों के रूप संज्ञाओं की तरह तीनों लिङ्गों मे चलते हैं—पुलिङ्ग और नपुंसक मे अकारान्त, और स्त्री लिङ्ग में आकारान्त।

१७३–तव्यत्[1] (तव्य), तव्य, अनीयर् (अनीय)और केलिमर् (एलिम) ये प्राय सब धातुओं मे लगाए जा सकते हैं। तव्यत् और तव्य मे कोई विशेष अन्तर नहीं है, तव्यत् के त् से केवल इतना सूचित होता है कि इस प्रत्यय मे अन्त होने वाले शब्द 'स्वरित' होते हैं, इसी प्रकार 'अनीयर्' के र् से सूचित होता है कि अनीयर् मे अन्त होने वाले शब्द मध्योदात्त होते हैं। किन्तु स्वर की बारीकियाँ केवल वैदिक संस्कृत मे काम आती हैं भाषा की संस्कृत में नहीं, इस लिये तव्यत् और तव्य को बराबर ही समझना चाहिए और अनीयर् को 'अनीय'। केलिमर् के क और र् का लोप हो जाता है और केवल 'एलिम' धातुओंमे जोड़ा जाता है। यह प्रत्यय प्राय कुछ सकर्मक धातुओं मे ही जुड़ा हुआ प्रयोग में मिलता है।

इन प्रत्ययों के पूर्व धातु के अन्तिम स्वर अथवा यदि अन्तिम स्वर न हो तो उपधा वाले ह्रस्व स्वर का गुण हो जाता है और साधारण सन्धि के नियम लगते हैं। जो धातुएं सेट् होती हैं उनमें प्रत्यय और धातु के बीच मे इ आ जाती है, जो अनिट् होती हैं उनमे

१ तव्यत्तव्यानीयरः। ३। १। ९६। केलिमर उपसंख्यानम्। वा०।

लभ्+यत् = लभ्+य = लभ्य
लम्भ्+यत् = लम्भ+य = लम्भ्य

(यदि लभ् धातु के पूर्व आ उपसर्ग हो अथवा उप उपसर्ग हो (प्रशंसा वाचक) तो बीच में नुम् (न्=म्) आ जाता है)।[1]

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जनान्त धातुओं में लगता है जिनमें मुख्य ये हैं —[2]

शस्—शस्य। यत्—यत्य। जन्—जन्य।
हन्—वध्य (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है)
शक्—शक्य। सह्—सह्य। चर्—चर्य। यम्—यम्य।

१७५—क्यप् (य) कुछ धातुओं में ही लगता है, इसके पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त, अर्थात् धातु और प्रत्यय के बीच में त् आ जाती है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य। और इसके साथ गुण नहीं होता।

जिन धातुओं में क्यप् लगता है उनमें ये मुख्य हैं —[3]

इ (जाना)+क्यप् = इत्य

---

1 आङोयि। उपात्प्रशंसायाम्। ७। १। ६५—६६।

2 तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्य। वा०। हनो वा यद्वधश्चवक्त-[व्य]। वा०। शकिसहोश्च। ३। १। ९९। गदमदचरयमश्चानुप[सर्गे]। ३। १। १००।

3 एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्। ३। १। १०९। मृजेर्विभाषा

की प्रजा। बाल रामनवमीमुपोषित —लड़के ने रामनवमी को उपवास किया।

नपुंसक लिङ्ग में क्तान्त शब्द कभी [1] उस क्रिया में बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्बल् नाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग मे आता है। तस्य गत वर (उसका चला जाना अच्छा है)। यहाँ गत—गमन के अर्थ में आया है। इसी प्रकार पठित=पठन, सुप्त=स्वाप, इत्यादि।

लिट् (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय क्वसु (वस) और कानच् (आन) हैं, क्वसु परस्मैपद की धातु के अनन्तर जोड़ा जाता है, और कानच् आत्मनेपदी धातु के अनन्तर। इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्राय वैदिक संस्कृत म ही मिलते हैं, किन्तु कभी कभी भाषा संस्कृत में भी प्रयोग में आते दिखाई पड़ते हैं।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व धातु का जो रूप होता है (जैसे गम् का लिट् अन्यपुरुष के बहुवचन में रूप हुआ जग्मु इस में जग्म्—धातु का रूप हुआ—इसी प्रकार ' ददु से दद्— इत्यादि) उसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हो जाती है, उदाहरणार्थ —

---

1 नपुंसके भावे क्त । ३ । ३ । ११४ ।

२ लिट कानज्वा । क्वसुश्च । ३ । २ । १०६—७ ।

जिगमिष् जिगमिष्टव्य जिगमिषणीय
बुबोधिष् बुबोधिष्टव्य बुबोधिषणीय इत्यादि।

१७४—कृत्य प्रत्यय यत् (य) केवल ऐसी धातुओं में—जिनके[1] अन्त में कोई स्वर हो अथवा ऐसी धातुओं में जिनके अन्त में पवर्ग का कोई वर्ण हो और उपधा में अकार हो—जोड़ा जाता है।

यत् के पूर्व स्वर को[2] गुण होता है यदि आ हो तो उसके स्थान पर पहले ई हो जाती है और फिर गुण (ए) होता है। यत् के पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ए, ऐ, ओ, अथवा औ, हो तो वह इ हो जाता है और फिर गुण होता है, जैसे—

दा+यत्	=	द्+ई+य	=	द्+ए+य	=	देय
धे+यत्	=	धी+य	=	धे+य	=	धेय
गै+यत्	=	गी+य	=	गे+य	=	गेय
छो+यत्	=	छी+य	=	छे+य	=	छेय
चि+यत्	=	चे+य			=	चेय
नी+यत्	=	ने+य			=	नेय
शप्+यत्	=	शप्+य			=	शप्य
जप्+यत्	=	जप्+य			=	जप्य
लप्+यत्	=	लप्+य			=	लप्य

१ अचो यत्। ३।१।९७। पोरदुपधात्। ३।१।९८।
२ ईद्यति। ६।४।६५।

	क्वसु	कानच्
गम्—	जग्मिवस्	
नी—	निनीवस्	निन्यान
दा—	ददिवस्	ददान
वच्—	ऊचिवस्	ऊचान
कृ—	चकृवस्	चक्राण
दृश्—	ददृश्वस्	

इनके रूप तीनों लिङ्गों में अलग २ सञ्ज्ञाओं के समान चलते हैं। स जग्मिवान्—वह गया। त तस्थिवांस नगरोपकण्ठे—नगर के निकट खड़े हुए उस को, श्रेयांसि सर्वाण्यधिजग्मिवांस्त्वम्—तुम को सब अच्छी बातें प्राप्त हुई थीं।

वर्तमानकाल के कृत् प्रत्यय

५८१—इनको अँगरेजी मे प्रेजेंट पार्टिस्प्ल (Present Participle) कहते हैं।[1] इस अर्थ का बोध कराने के लिए शतृ और शानच् (आन) मुख्य हैं। इन दोनो को संस्कृत वैयाकरण 'सत्' कहते हैं। सत् का अर्थ है 'विद्यमान' 'वर्तमान'। ये दोनों प्रत्यय किसी धातु मे जुड़कर उस धातु द्वारा सूचित वर्तमान काल की क्रिया का बोध विशेषण रूप से कराते हैं, जैसे स गच्छन्—वह जाता हुआ

१ लटः शतृशानचावप्रथमासमानाधिकरणे । ३ । २ । १२४ । तौ सत् । ३ । २ । १२७ ।

लभ्+यत् = लभ+य = लभ्य

लम्भ्+यत् = लम्भ+य = लम्भ्य

(यदि लभ् धातु के पूर्व आ उपसर्ग हो अथवा उप उपसर्ग हो (प्रशंसा वाचक) तो बीच में नुम् (न्=म्) आ जाता है)।[1]

इसके अतिरिक्त यत् प्रत्यय कुछ और व्यञ्जनान्त धातुओं में लगता है[2] जिनमें मुख्य ये हैं —

शस्—शस्य। यत्—यत्य। जन्—जन्य।

हन्—वध्य (यत् के पूर्व हन् का रूप वध् हो जाता है)

शक्—शक्य। सह्—सह्य। चर्—चर्य। यम्—यम्य।

१७५–क्यप् (य) कुछ धातुओं में ही लगता है, इसके पूर्व यदि धातु का अन्तिम स्वर ह्रस्व हो तो उसके उपरान्त, अर्थात् धातु और प्रत्यय के बीच में त् आ जाती है, जैसे—स्तु+क्यप्=स्तु+त्+य=स्तुत्य। और इसके साथ गुण नहीं होता।

जिन धातुओं में क्यप् लगता है उनमें ये मुख्य हैं[3] —

इ (जाना)+क्यप् = इत्य

---

१ आङो यि। उपात्प्रशंसायाम्। ७।१।६५—६।

२ तकिशसिचतियतिजनिभ्यो यद्वाच्य। वा०। हनो वा यद्वधश्चवक्तव्य। वा०। शकिसहोश्च। ३।१।९९। गदमदचरयमश्चानुपसर्गे।३।१।१००।

३ एतिस्तुशास्वृदृजुषः क्यप्। ३।१।१०९। मृजेर्विभाषा

(है) अर्थात् वह जारहा है, स पठन् (अस्ति)—वह पढ़ रहा है। इन प्रयोगों से सूचित होता है कि क्रिया अभी जारी है। क्रिया के जारी रहने का ही अर्थ सत् प्रत्ययों से सूचित किया जाता है।

१८२—शतृ परस्मैपदी धातुओं के अनन्तर तथा शानच् आत्मनेपदी धातुओं के अनन्तर जोड़ा जाता है। धातुओं का वर्तमान कालके अन्यपुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व जो रूप होता है (जैसे गच्छन्ति—गच्छ्। ददति—दद् आदि) उसी में सत् प्रत्यय जोड़े जाते हैं। यदि धातु के रूप के अन्त में अ हो तो शतृ (अत्) के पूर्व उसका लोप हो जाता है। यदि शानच् के पूर्व अकारान्त धातुरूप आवे तो शानच् (आन) के स्थान पर 'मान' जुड़ता है, अन्यथा 'आन'। नीचे कुछ रूप उदाहरणार्थ दिए जाते हैं —

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठत्	पठमान	पठ्यमान
कृ	कुर्वत्	कुर्वाण	क्रियमाण
गम्	गच्छत्		गम्यमान
नी	नयत्	नयमान	नीयमान
दा	ददत्	ददमान	दीयमान
चुर	चोरयत्	चोरयमाण	चोर्यमाण

१ आने मुक्, ७। २। ८२।

स्तु	,,	=	स्तुत्य	
शास्	,	=	शिष्य	
वृ	,	=	वृत्य	
दृ	,	=	दृत्य	
जुष्	,	=	जुष्य	
मृज्	,,	=	मृज्य	विकल्प से
भृ	,,	=	भृत्य (नौकर)	,,
कृ	,	=	कृत्य	,,
वृष्	,,	=	वृष्य	,,

१७६–ऐसी धातुएँ जिनका अन्तिम वर्ण ऋकार अथवा[1] व्यञ्जन हो उनके उपरान्त कृत्य प्रत्यय ण्यत् (य) लगता है। इसके पूर्व धातु के स्वर की वृद्धि हो जाती है। यदि उपधा में अकार हो तो उसकी (आ) वृद्धि हो जाती है और यदि कोई और स्वर हो तो बहुधा गुण को प्राप्त होता है। इसके पूर्व के[2] च् और ज् के स्थान मे क् और ग् यथाक्रम हो जाते हैं, किन्तु यदि धातु कवर्ग से आरम्भ होती हो (जैसे गर्ज्) तो यह परिवर्तन न होगा।

। ३ । १ । ११३ । भृञोऽसंज्ञायाम् । ३ । १ । ११२ । विभाषा कृवृषोः । ३ । १ । १२० ।

१ ऋहलोर्ण्यत् । ३ । १ । १२४ ।

२ चजोः कु घिण्ण्यतोः । ७ । ३ । ५२ । न क्वादेः । ७ । ३ । ५९ ।

पिपठिष् पिपठिषत् पिपठिषमाण पिपठिष्यमाण
(सन्नन्त)

आस् धातु के उपरान्त शानच् आने से शानच् के 'आन' को 'ईन' हो जाता है, आस+शानच् =आसीन।[1]

सत् में अन्त होने वाले शब्दों के रूप तीनों लिङ्गों में अलग२ चलते हैं।

(क) चानश् (आन) प्रत्यय परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी दोनों प्रकार की धातुओं में किसी की आदत, उम्र अथवा सामर्थ्य का बोध कराने के लिए जोड़ा जाता है,[2] जैसे—भोग भुञ्जान भोग भोगने की आदत वाला। कवच बिभ्राण—कवच धारण करने की अवस्था वाला (अर्थात् तरुण)। शत्रु निघ्नान—शत्रु को मारने वाला (अर्थात् मारने की शक्ति रखने वाला)।

भविष्यकाल के कृत् प्रत्यय

१८३—भविष्यकाल के प्रत्यय[3] जिनको अंगरेजी में फ्यूचर् पार्टिसिपल (Future Participle) कहते हैं संस्कृत में दो हैं—वही सत् प्रत्यय जो वर्तमान के हैं। अन्तर केवल इतना है कि यह

---

१ ईदासः । ७ । २ । ८३ ।

२ ताच्छील्यवयोवचनशक्तिषु चानश् । ३ । २ । १२९ ।

३ लृटः सद्वा । ३ । ३ । १४ ।

यत् का विचार करते समय कह आए हैं कि स्वरान्त धातुओं के अनन्तर यत् लगता है, किन्तु यहाँ ऋकारान्त धातुओं के उपरान्त ण्यत् लगता है ऐसा नियम रक्खा गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि ऋकारान्त धातुओं को छोड़ कर अन्य स्वरान्त धातुओं में यत् लगता है ऋकारान्त में ण्यत्। उसी प्रकार उन व्यञ्जनान्त धातुओं को छोड़ कर जिनमें यत और क्यप् लगता है, शेष में ण्यत् लगता है। उदाहरणार्थ —

कृ+ण्यत्=क्+आर् (वृद्धि)+य=कार्य

पठ्+ण्यत्=प्+आ+ठ्+य=पाठ्य (उपधा के अ की वृद्धि)

वृष्+ण्यत्=व्+अर्+ष्+य=वर्ष्य (उपधा के ऋ का गुण)

पच्+ण्यत्=प्+आ+क्+य=पाक्य (उपधा के अ की वृद्धि और च् से क्)

मृज्+ण्यत्=म्+आर्+ग्+य=मार्ग्य (उपधा के ऋ की वृद्धि, और ज् को ग्)

च्, ज्, का क्, ग् हो जाने वाला नियम[1] यज्, याच्, रुच्, प्रवच्, त्यज् धातुओं में नहीं लगता—याज्य, याच्य, रोच्य, प्रवाच्य, त्याज्य। भुज् के दोनों रूप आते हैं—भोग्य (भोग करने योग्य) और भोज्य (खाने योग्य), पच् के दोनों—पाच्य (अवश्य पकाने योग्य) और पाक्य, वच् के भी वाच्य—(कहने योग्य) और वाक्य, दो रूप होते हैं।

---

1 यजयाचरुचप्रवचर्चश्च । ७ । ३ । ६६ । त्यजेश्च ।

भविष्य (लृट्) के अन्यपुरुष के बहुवचन में जो धातुरूप होता है उसके अनन्तर जोड़े जाते हैं, जैसे—भविष्यन्ति के भविष्—में अत् और मान जोड़कर भविष्यत् और भविष्यमाण रूप बनते हैं। इसी कारण भविष्यकाल के इन प्रत्ययों को कभी कभी ष्यत् और ष्यमाण भी कहते हैं। उदाहरणार्थ कुछ रूप देते हैं —

	परस्मै०	आत्मने०	कर्मवाच्य
पठ्	पठिष्यत्	पठिष्यमाण	पठिष्यमाण
कृ	करिष्यत्	करिष्यमाण	करिष्यमाण
गम्	गमिष्यत्	गमिष्यमाण	गमिष्यमाण
नी	नेष्यत्	नेष्यमाण	नेष्यमाण
दा	दास्यत्	दास्यमान	दास्यमान
चुर्	चोरयिष्यत्	चोरयिष्यमाण	चोरयिष्यमाण
पिपठिष्	पिपठिष्यत्	पिपठिष्यमाण	पिपठिष्यमाण

इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्दों के रूप भी तीनों लिङ्गों में अलग २ संज्ञाओं के समान चलते हैं।

तुमुन् प्रत्यय

१८४—जब कोई दूसरी क्रिया करने के लिए कोई क्रिया करता[1] है तब जिस क्रिया के लिए क्रिया की जाती है उस की धातु में तुमुन् (तुम्) प्रत्यय लगता है, जैसे—कृष्णं द्रष्टुं याति—कृष्ण को

[1] तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायाम् । ३ । ३ । १० ।

उकारान्त अथवा ऊकारान्त धातुओं के अनन्तर भी ण्यत् प्रत्यय लगता है यदि आवश्यकता का बोध कराना हो तो, जैसे[1]—

श्रु + ण्यत् = श्राव्य (अवश्य सुनने योग्य)
पू + ण्यत् = पाव्य (अवश्य पवित्र करने योग्य)
यु + ण्यत् = याव्य (अवश्य मिलाने योग्य)
लू + ण्यत् = लाव्य (अवश्य काटने योग्य)

१७७—ऊपर कह आए हैं कि कृत्य प्रत्ययान्त शब्द भाववाच्य और कर्मवाच्य में ही प्रयोग में आते हैं किन्तु थोड़े से ऐसे शब्द हैं जो कृत्यान्त होते हुए भी कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं। वे ये हैं[2] —

वस् + तव्य = वास्तव्य (बसने वाला)—इस अर्थ में णिच् भी हो जाता है जिसके कारण वृद्धि रूप वास् हो गया।
भू + यत् = भव्य (होने वाला)
गै + यत् = गेय (गाने वाला)
प्रवच् + अनीयर् = प्रवचनीय (व्याख्यान करने वाला)
उपस्था + अनीयर् = उपस्थानीय (निकट खड़ा होने वाला)
जन् + यत् = जन्य (पैदा करने वाला)
प्लु + ण्यत् = प्लाव्य (पैरने वाला)
आपत् + ण्यत् = आपात्य (गिरने वाला)

---

१ ओरावश्यके । ३ । १ । १२५ ।

२ वसेस्तव्यत्कर्तरि णिच्च । वा० । भव्यगेयप्रवचनीयोपस्थानीयजन्याप्लाव्यापात्या वा । ३ । ४ । ६८ ।

देखने के लिए जाता है। इस वाक्य में दो क्रियायें हैं—देखना और जाना। जाने की क्रिया देखने की क्रिया के निमित्त होती है। जाने का प्रयोजन देखना है, इसलिए दृश में तुमुन् (तुम्) जोड़ कर द्रष्टुं बनाया गया। तुमुनन्त क्रिया जिस क्रिया के साथ आती है उसकी अपेक्षा तुमुनन्त क्रिया सदा बाद को होती है, जैसे ऊपर के उदाहरण मे देखने की क्रिया जाने की क्रिया के बाद ही सम्भव है। इसी प्रकार 'कृष्णं द्रष्टुमगमत्' इस वाक्य मे जाने की क्रिया की समाप्ति के उपरान्त ही देखने की क्रिया हो सकती है, इसीलिए तुमुनन्त क्रिया दूसरी क्रिया की अपेक्षा भविष्य मे होती है।

तुमुनन्त क्रिया के अर्थ का बोध अंगरेजी मे जेरण्डियल् इन् फिनिटिव् (Gerundial Infinitive) से होता है, जैसे—He goes to see Krishna वाक्य में to see का अर्थ है 'देखने के लिए'। किन्तु अंगरेजी में इन्फिनिटिव् संज्ञा की तरह भी प्रयोग मे आता है और तब उसको नाउन् इन्फिनिटिव् या सिम्पल इन् फिनिटिव् कहते हैं। संस्कृत की तुमुनन्त क्रिया नाउनइन्फिनिटिव की तरह कभी भी प्रयोग मे नहीं आती इतना ध्यान रखना आवश्यक है, जैसे To go to see Krishna is bad—कृष्ण को देखने के लिए जाना बुरा है। इस वाक्य मे तीन क्रियाएं हैं—देखना, जाना, है। इन मे से दो के लिए अगरेजी मे इन् फिनिटिव् प्रयोग मे आया है, एक का अर्थ है 'जाना' दूसरे का 'देखने के लिए'। इनमें से 'देखने के लिए' इस अर्थ के लिए संस्कृत में तुमुनन्त क्रिया आवेगी 'जाना' के वास्ते कोई संज्ञा। संस्कृत अनुवाद यह होगा—कृष्णं

कृत् प्रत्यय

१७८—यद्यपि कृत् से कृत्य, कृत् और उणादि तीनो प्रकार के प्रत्ययों का बोध होता है तथापि कृत्य और उणादि के अलग होने के कारण, शेष कृत् प्रत्ययो के ही भेद प्रकट करने के लिए कभी २ कृत् कहते हैं। इन कृत् प्रत्ययों मे कुछ ऐसे हैं जिनके रूप चलते हैं, कुछ के नहीं। जिनके रूप नहीं चलते उनके विषय मे ऐसा स्पष्ट उल्लेख कर दिया जायगा, शेष के रूप चलते हैं ऐसा समझना चाहिए।

भूतकाल के कृत् प्रत्यय

१७९—भूतकाल के कृत् प्रत्ययों को अँगरेज़ी मे पास्ट पार्टिस्पल (Past Participle) कहते हैं। इस[1] अर्थ मे प्रधान दो प्रत्यय है—क्त (त) और क्तवतु (तवत्), इन दोनों प्रत्ययो को "निष्ठा" कहते हैं। निष्ठा शब्द का यौगिक अर्थ है 'समाप्ति', क्त और क्तवतु किसी कार्य की समाप्ति का बोध कराते हैं इसीलिए इनको निष्ठा (समाप्ति) कहते हैं, जैसे—'तेन भुक्तम्'—यहाँ भुज् धातु मे क्त प्रत्यय लगाने मे यह तात्पर्य निकला कि भोजन का कार्य समाप्त हो गया। सोऽपराधं कृतवान्—यहाँ क्तवतु प्रत्यय से यह निश्चय हुआ कि उसने अपराध कर डाला—करने का कार्य समाप्त हो गया। साराश यह कि क्त और क्तवतु समाप्तिबोधक

१ भूते। ३। २। ८४। क्तक्तवतू निष्ठा। १। १। २६।

ष्टु गमन वरमास्ति। इस वाक्य में 'द्रष्टुं' तुमुन्त क्रिया है और गमन' संज्ञा। इस प्रकार, नाउन इन्फिनिटिव् की तरह, संस्कृत के तुमुनन्त शब्द को प्रयोग में नहीं ला सकते। ला सकते हैं तो केवल जेरण्डियल इन्फिनिटिव् की तरह।

(क) जिस[1] क्रिया के साथ तुमुन्त शब्द आता है उस क्रिया का तथा तुमुनन्त क्रिया का कर्ता एक ही होना चाहिए, भिन्न कर्ता होने से तुमुनन्त शब्द प्रयोग में नहीं लाया जा सकता, जैसे राम पठितुं विद्यालयं गच्छति। यहाँ 'पठितुं' और 'गच्छति' दोनों का कर्ता राम ही है, यदि दोनों का कर्ता अलग अलग होता तो तुमुनन्त शब्द प्रयोग में न आता।

(ख) कालवाची[2] शब्दों (काल समय, वेला) के साथ एक कर्ता न होने पर भी तुमुनन्त शब्द प्रयोग में आता है, जैसे—गन्तुम् कालोऽयमस्ति यह जाने के लिए समय है। यहाँ दो शब्द क्रियावाचक हैं 'है' और 'जाने के लिए'। 'है' का कर्ता है 'काल' और 'जाने के लिए' का कर्ता कोई और, किन्तु यहाँ तब भी तुमुनन्त शब्द का प्रयोग हुआ है। इसी प्रकार, भोक्तुं वेला, अध्येतुं समयः, द्रष्टुं कालः इत्यादि प्रयोग होते हैं।

तुमुन्त[3] शब्द अव्यय होता है इसके रूप नहीं चलते।

---

१ समानकर्तृकेषु तुमुन्। ३। ३। १२८।

२ कालसमयवेलासु तुमुन्। ३। ३। १६७।

३ मान्तत्वादव्ययत्वम्। सि० कौ०।

प्रत्यय हैं। ये दोनों प्रत्यय प्राय सभी धातुओं के अनन्तर भूत काल अथवा समाप्ति का अर्थ बताने के लिए लगाए जाते हैं। इन मे के क् और उ का लोप हो जाता है और त तथा तवत् शेष रह जाते हैं। इनके रूप तीनों लिङ्गों मे और सातो विभक्तियो में विशेष्य के अनुसार होते हैं। यदि विशेष्य पुलिङ्ग हुआ तो पुलिङ्ग, स्त्री० तो स्त्री० और नपुसक० तो नपुसक०। क्त प्रत्ययान्त शब्द पुलिङ्ग और नपुसकलिङ्ग मे अकारान्त, और स्त्रीलिङ्ग में आकारान्त होते हैं। क्तवतु में अन्त होने वाले शब्द पुलिङ्ग और नपुसकलिङ्ग में नकारान्त (श्रीमत् के समान) और स्त्रीलिङ्ग में ईकारान्त (नदी के समान) होते हैं। उदाहरणार्थ नीचे कुछ धातुओं के क्तान्त और क्तवत्वन्त रूप तीनो लिङ्गो मे प्रथमा के एक वचन मे दिए जाते हैं।

क्तप्रत्ययान्त

पु०	न०	स्त्री०
पठ्—पठित	पठित	पठिता
स्ना—स्नात	स्नात	स्नाता
पा—पात	पात	पाता
भू—भूत	भूत	भूता
कृ—कृत	कृत	कृता
त्यज्—त्यक्त	त्यक्त	त्यक्ता
तृप्—तृप्त	तृप्त	तृप्ता
शक्—शक्त	शक्त	शक्ता
सिच्—सिक्त	सिक्त	सिक्ता

पूर्वकालिक क्रिया

१८५—जब किसी क्रिया के हो जाने पर दूसरी क्रिया आरम्भ[1] होती है तब होगई हुई क्रिया को पूर्वकालिक क्रिया कहते हैं। हिन्दी में इसका बोध 'कर' अथवा 'करके' लगा कर होता है, जैसे राम ने रावण को मारकर विभीषण को राज्य दिया—(राम रावण हत्वा विभीषणाय राज्यं ददौ) इस वाक्य में राज्य देने की क्रिया रावण के मारे जाने पर होती है, इसलिए 'मारा जाना' पूर्व कालिक क्रिया होगी। पूर्वकालिक क्रिया का और उसके साथ वाली क्रिया का कर्ता एक होना चाहिए। ऊपर के वाक्य में 'ददौ' और 'हत्वा' दोनों का कर्ता 'राम' है। भिन्न कर्ता होने से पूर्वकालिक क्रिया का प्रयोग नहीं हो सकता, जैसे—'लक्ष्मण मेघनादं हत्वा, राम विभीषणाय राज्यं ददौ'—'लक्ष्मण ने मेघनाद को मार कर, राम ने विभीषण को राज्य दिया' यह वाक्य अशुद्ध है क्योंकि मारने की क्रिया का कर्ता लक्ष्मण, देने की क्रिया के कर्ता राम से भिन्न है।

पूर्वकालिक क्रिया का बोध कराने के लिए संस्कृत में दो प्रत्यय हैं—क्त्वा (त्वा) और ल्यप् (य)। ल्यप्[2] प्रत्यय केवल ऐसी धातुओं के उपरान्त जोड़ा जाता है जिनके पूर्व में कोई उपसर्ग

---

१ समानकर्तृकयोः पूर्वकाले। ३। ४। २१।

२ समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्। ७। १। ३७।

की पूजा। बाल रामनवमीमुपोषित —लड़के ने रामनवमी को उपवास किया।

नपुंसक लिङ्ग में क्तान्त शब्द[1] कभी २ उस क्रिया में बताए हुए कार्य की भी सूचना देता है, अर्थात् वर्बल् नाउन (Verbal noun) की तरह प्रयोग मे आता है। तस्य गत वर (उसका चला जाना अच्छा है)। यहाँ गत—गमन के अर्थ में आया है। इसी प्रकार पठित=पठन, सुप्त=स्वाप, इत्यादि।

लिट्[2] (परोक्षभूत) के अर्थ का बोध कराने के लिए दो कृत प्रत्यय क्वसु (वस) और कानच् (आन) हैं, क्वसु परस्मैपद की धातु के अनन्तर जोड़ा जाता है, और कानच् आत्मनेपदी धातु के अनन्तर। इन प्रत्ययों से अन्त होने वाले शब्द प्राय वैदिक संस्कृत म ही मिलते ह, किन्तु कभी कभी भाषा संस्कृत में भी प्रयोग में आते दिखाइ पड़ते हैं।

लिट् के अन्य पुरुष के बहुवचन में प्रत्यय लगने के पूर्व धातु का जो रूप होता है (जैसे गम् का लिट् अन्यपुरुष के बहुवचन में रूप हुआ जग्मु इस में जग्म्—धातु का रूप हुआ—इसी प्रकार ' ददु से दद्— इत्यादि) उसमें ये प्रत्यय जोड़े जाते हैं यदि ऐसा धातु का रूप एकाक्षर हो अथवा अन्त में आ हो तो धातु और प्रत्यय के बीच में इ हो जाती है, उदाहरणार्थ —

---

१ नपुंसके भावे क्त। ३। ३। ११४।

२ लिट कानज्वा। क्वसुश्च। ३। २। १०६—७।

हो अथवा उपसर्ग स्थानीय हो । शेष धातुओं के उपरान्त क्त्वा लगता है । उदाहरणार्थ —

गम्	+	क्त्वा	=	गत्वा, किन्तु
अवगम्	+	ल्यप्	=	अवगत्य अवगत्वा नहीं ।
पठ्	+	क्त्वा	=	पठित्वा, किन्तु
प्रपठ्	+	ल्यप्	=	प्रपठ्य प्रपठित्वा नहीं ।

पूर्वकालिक क्रिया के रूप नहीं चलते । यह अव्यय है ।

(क) क्त्वा का त्वा प्राय धातु में वैसा का वैसा जोड़ा जाता है, जैसे—स्ना—स्नात्वा, ज्ञा—ज्ञात्वा नी—नीत्वा भू—भूत्वा कृ—कृत्वा, धृ—धृत्वा, ऐसी नकारान्त धातुएँ जिनमें सेट् वेट् की इ नहीं जुड़ती न् का लोप करके जोड़ी जाती हैं हन्—हत्वा, मन्—मत्वा, किन्तु जन्—जनित्वा, खन्—खनित्वा । धातु का प्रथम अक्षर यदि य, र, ल, व हो तो बहुधा क्रम से इ, ऋ, लृ, उ, हो जाता है, यज्—क्त्वा=इष्ट्वा, प्रच्छ्—पृष्ट्वा, वप्—उप्त्वा । यदि धातु और प्रत्यय के बीच में इ आजावे तो पूर्व का स्वर गुण रूप धारण करता है, जैसे—शी+ क्त्वा=श+ए+इ+त्वा=शे+इ+त्वा=शयित्वा, जागरित्वा आदि ।

ल्यप् के पूर्व यदि स्वर ह्रस्व हो तो बहुधा 'य' न जुड़कर 'त्य' जुड़ता है, जैसे—आदाय, विनीय, अनुभूय, किन्तु निश्चित्य, प्रपकृत्य, विजित्य । बहुधा नकारान्त धातुओं के न् का लोप करके य जोड़ा जाता है, अवमत्य, प्रहत्य, वितत्य, किन्तु प्रणम्य । गम,

जाता है जैसे—शॄ से शीर्ण, शीर्णवत् जॄ से जीर्ण जीर्णवत्, छिद् से छिन्न, छिन्नवत्, भिद् से भिन्न, भिन्नवत्।

संयुक्ताक्षर से आरम्भ होने वाली और आकार में अन्त होने वाली तथा कहीं न कहीं य्, र्, ल्, व् में से कोई अक्षर रखने वाली धातु की निष्ठा के त को भी न हो जाता है, जैसे—ग्लान ग्लान, स्यान, गान, ध्यान। किन्तु कुछ में नहीं भी होता—ख्यात, ध्यात आदि।[1]

१८०—क्तवतु प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द सदा कर्तृवाच्य में प्रयोग में आते हैं, अर्थात् कर्ता (Agent) के विशेषण होते हैं। स भुक्तवान्, भुक्तवत्सु तेषु इत्यादि। क्त प्रत्यय कर्मवाच्य और भाववाच्य में प्रयुक्त होता है, अर्थात् कर्म (Object) का विशेषण होता है, तेन भुक्तम्, रामेण सीता त्यक्ता, तेन गतम् दत्तधन—दिया हुआ धन। परन्तु गत्यर्थक धातुओं में तथा अकर्मक धातुओं में का क्त कर्तृवाच्य के अर्थ में भी प्रयोग में आता है, जैसे स गतः, चलितः। श्लिष्, शी, स्था, आस्, वस् धातुओं के क्तान्त शब्द भी कर्तृवाच्य का बोध कराते हैं—लक्ष्मीमाश्लिष्टो हरिः=हरि ने लक्ष्मी का आलिङ्गन किया, हरिः शेषमधिशयितः—हरि शेष (नाग) पर सोये। हरिः वैकुण्ठमधिष्ठितः। शिवमुपासितः। (हरि ने) शिव[2]

१ संयोगादेरातोधातोर्यण्वतः। ८।२।४३।

२ कर्तरि कृत्। ३।४।६७। तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः। ३।४।७०। गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च। ३।४।७२।

नम्, यम्, रम्, के म् रहने पर अवगम्य आदि और लोप होने पर अवगत्य आदि दो दो रूप होते हैं।

णिजन्त[1] और चुरादिगण की धातुओं की उपधा में यदि ह्रस्वस्वर जैसे प्रणम्-(णिजन्त) हो तो उनमें ल्यप् के पूर्व अय् जोड़ा जाता है अन्यथा नहीं, यथा—प्रणम्+अय्+ल्यप् (य) =प्रणमय्य, किन्तु चोर्+य=चोर्य (चोरय्य नहीं होता)।

(ख) पूर्वकालिक[2] क्रिया (क्त्वान्त तथा ल्यबन्त) जब अलम् शब्द और खलु शब्द के साथ आती है तब पूर्वकाल का बोध न कराकर प्रतिषेध (मना करने) का भाव सूचित करती है जैसे—अलं कृत्वा—बस, मत करो; पीत्वा खलु—मत पियो, विजित्य खलु—बस न जीतो, अवमत्यालम्—बस अपमान न करो।

णमुल् प्रत्यय

१८६—जब[3] किसी क्रिया को बार बार करने का भाव सूचित करना हो तो क्त्वाप्रत्ययान्त शब्द अथवा णमुल्प्रत्ययान्त[4] शब्द का प्रयोग होता है, और यह शब्द दो बार रक्खा जाता है, जैसे-यह बार

---

१ ल्यपि लघुपूर्वात्। ६। ४। ५६।

२ अलङ्खल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा। ३। ४। १८।

३ आभीक्ष्ण्ये णमुल् च। ३। ४। २२।

४ नित्यवीप्सयोः। ८। १। ४।

बार याद करके शिव को प्रणाम करता है यहाँ याद करने की क्रिया बार बार होती है, इस लिए संस्कृत में कहेंगे स स्मार स्मार प्रणमति शिवम्, अथवा स स्मृत्वा स्मृत्वा प्रणमति शिवम्। याद करने की क्रिया प्रणाम करने की क्रिया से पूर्व होती है। इसी प्रकार —

पी पीकर	अर्थात्	बार बार-	पाय पाय	अथवा पीत्वा पीत्वा	—पा
खा खाकर	,,	,,	भोज भोज	भुक्त्वा भुक्त्वा	—भुज्
जा जाकर	,,	,,	गाम गाम	गत्वा गत्वा	—गम्
जग जगकर	,,	,,	जागर जागर	जागरित्वा जागरित्वा	—जागृ
पा पाकर	,,	,,	लाभ लाभ	लब्ध्वा लब्ध्वा	—लभ्
सुन सुनकर	,,	,,	श्राव श्राव	श्रुत्वा श्रुत्वा	—श्रु

णमुल् प्रत्यय का 'अम्' धातु में जोड़ा जाता है, यदि इसके पूर्व धातु का—आ आवे तो बीच में य् और आजाता है, जैसे—दा+अम्=दाय दाय, पाय पाय, स्नाय स्नाय, प्रत्यय में ण् होने के कारण पूर्व स्वर की वृद्धि भी होती है—जैसे स्मृ अम्=स्मारम्, श्रु+अम्=श्रौ+अम्=श्राव्+अम्=श्रावम् इत्यादि। णमुलन्त शब्द के रूप नहीं चलते। यह अव्यय है।

बहुत से स्थलों में णमुल् से बार बार क्रिया होने का बोध नहीं भी होता है, ऐसे स्थलों में णमुलन्त शब्द दो बार नहीं रक्खा जाता, जैसे—कन्यादर्शं वरयति—जिस कन्या को देखता है उसी से ब्याह कर लेता है।[1]

---

१ कर्मणि दृशिविदोः साकल्ये। ३।४।२९।

(घ) चलना, शब्द करना, अर्थवाली अकर्मक धातुओं के अनन्तर तथा क्रोध करना, आभूषित करना इन अर्थों वाली धातुओं के अनन्तर शील आदि अर्थ में युच् (अन) प्रत्यय लगता है। चलितु शीलमस्य स चलन (चल्+युच्), कम्पन, शब्द कर्तुं शीलमस्य स शब्दन। खग पठिता विद्याम् यहाँ सकर्मक धातु होने के कारण युच् न लगकर साधारण तृन् लगा) क्रोधन, रोषण, मण्डन, भूषण। ये सब मनुष्यवाचक शब्द हैं।[1]

(ङ) जल्प्, भिक्ष्, कुट्ट् (अलग करना काटना,) लुण्ट् (लूटना) और वृ (चाहना) इनके अनन्तर शील, धर्म और साधुकारिताद्योतक षाकन् (आक) प्रत्यय लगता है। जल्पाक (बहुत बोलने वाला) भिक्षाक (भिखारी), कुट्टाक (काटने वाला), लुण्टाक (लूटने वाला), वराक (बेचारा)।[2]

(च) स्पृह्, गृह्, पत्, दय्, शी धातुओं के अनन्तर तथा निद्रा, तन्द्रा, श्रद्धा के अनन्तर आलुच् (आलु) जोड़ा जाता है—स्पृहयालु, गृहयालु, पतयालु, दयालु, शयालु, निद्रालु, तन्द्रालु, श्रद्धालु।[3]

---

१ चलनशब्दार्थादकर्मकाद्युच्। ३। २। १४८। क्रुधमण्डनार्थेभ्यश्च ३। २। १५१।

२ जल्पभिक्षकुट्टलुण्टवृङः षाकन्। ३। २। १५५।

३ स्पृहिगृहिपतिदयिनिद्रातन्द्राश्रद्धाभ्य आलुच्। ३। २। १५८।
...हो वाच्य। वा०।

यहाँ सभी कन्याओं से व्याह कर लेता है यह अर्थ है। अन्यथा, एव, कथ, इत्थ शब्द जब कृ धातु के पूर्व आवें और कृ धातु का अर्थ वाक्य में आवे तो भी णमुल् का प्रयोग होता है, जैसे अन्यथाकारं ब्रूते—वह दूसरी ही तरह बोलता है, यहाँ कृ का कुछ अर्थ न निकला, वह बेकार है। इसी प्रकार एवङ्कार—इस तरह, कथङ्कार—किसी तरह, इत्थङ्कार – इस तरह।[1]

णमुलन्त शब्द प्राय समास के अन्त में आने पर बार बार के भाव को नहीं सूचित करता, जैसे—सा बन्दिग्राहं गृहीता—वह क़ैदी करके पकड़ ली गई, अर्थात् क़ैद कर ली गई, समूलघातमघ्नन्त परान्नोद्यन्ति मानिन —मानी पुरुष शत्रुओं को जड़ से उखाड़े बिना उन्नति नहीं करते।

१८७–कर्तृवाचक कृत् प्रत्यय

(क) किसी भी धातु के अनन्तर ण्वुल्[2] (वु=अक) और तृच् (तृ) प्रत्यय धातु से सूचित कार्य्य के करने वाले (Agent) के अर्थ में लगाए जाते हैं। जैसे—कृ धातु से सूचित अर्थ हुआ 'करना' अब 'करने वाला' यह भाव प्रकट करने के लिए कृ+ण्वुल्=कृ+अक='कारक' शब्द हुआ और कृ+तृच्=कृ+तृ=कर्तृ शब्द हुआ। कारक, कर्तृ=करनेवाला, इसी प्रकार पठ् से पाठक, पठितृ, दा से दायक, दातृ, पच से पाचक, पक्तृ, हृ से

१ अन्यथैवङ्कथमित्थसु सिद्धाप्रयोगश्चेत्। ३। ४। २७।

२ ण्वुल्तृचौ। ३। १। १३३। तुमुन्ण्वुलौ क्रियायां क्रियार्थायां। ३। ३। १०।

(छ) [1]सन्नन्त (इच्छावाची) धातुओं तथा आशस् और भिच् के अनन्तर उ प्रत्यय लगता है, जैसे—कर्तुमिच्छति चिकीर्षुः, आशसु, भिक्षु।

(ज) [2]भ्राज्, भास्, धुर्, विद्युत्, ऊर्ज्, पृ जु, ग्रावस्तु—इन धातुओं के अनन्तर तथा औरों के भी अनन्तर क्विप् प्रत्यय होता है, जैसे—विभ्राट्, भा, धू, विद्युत् ऊर्क्, पू, जू, ग्रावस्तुत्, छित्, भित्, श्री, धी, प्रतिभू इत्यादि।

भावार्थ कृत् प्रत्यय

(क) [3]भाव का अर्थ जतलाने के लिए धातु के अनन्तर घञ् (अ) प्रत्यय जोड़ा जाता है। जब कोई बात सिद्ध हो जाय, पूरी हो जाय तब भाव कहलाता है, जैसे—पाक—पकजाना (पच् + घञ्)। लाभ, काम।

[[4]यदि कोई ञ अथवा ण वाला प्रत्यय लगाना हो तो धातु की उपधा का अ वृद्ध हो जाता है। [5]घ वाले तथा ण्य वाले प्रत्यय के पूर्व च् ज् का क् ग् हो जाता है]

---

१ सनाशसभिक्ष उ । ३ । २ । १६८ ।

२ भ्राजभासधुर्विद्युतोर्जिपॄजुग्रावस्तुव क्विप् । ३।२।१७७।अन्येभ्योऽपि दृश्यते । ३ । २ । १७८ ।

३ भावे । ३ । ३ । १८ ।

४ अत उपधायाः । ७ । २ । ११६ ।

५ चजोः कुघिण्ण्यतोः । ७ । ३ । ५२ ।

हारक, हर्ता, इत्यादि। ण्वुल के पूर्व धातु में वृद्धि तथा तृच् के पूर्व धातु में गुण भाव होता है, यह ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है।

नोट—ण्वुल् प्रत्यय तुमुन् (१८४) की तरह क्रियार्थ भी प्रयोग में आता है, जैसे—कृष्ण दर्शको याति—कृष्ण को देखने के लिए जाता है।

(ख[1]) नन्दि आदि (नन्दि, वाशि, मदि, दूषि, साधि वर्धि, शोभि, रुचि इनके णिजन्त रूप से) धातुओं के अनन्तर ल्यु (अन), ग्रहि आदि (ग्राही, उत्साही, स्थायी, मन्त्री अयाची, अवादी, विषयी अपराधी—ये इस प्रकार बने मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर णिनि (इन्) तथा पच् आदि (पच, वच वद, चल, पत, जर मर, चम मेव, ग्रण, दर्श, सप आदि मुख्य शब्द इस गण के हैं) धातुओं के अनन्तर अच् (अ) लगाकर कर्तृबोधक शब्द बनाए जाते हैं, जैसे—नन्द्+ल्यु = नन्दन (नन्दयतीति नन्दनः) इसी प्रकार वाशन, मदन, दूषण, साधन, वर्धन, शोभन, रोचन। गृह्णातीति ग्राही (ग्रह+इन् = ग्राहिन्) पच्+अच्(अ) = पच (पचतीति पच)।

(ग[2]) ऐसी धातुएँ जिनकी उपधा में इ, उ, ऋ, लृ में से कोई स्वर हो उनके अनन्तर तथा ज्ञा (जानना), प्री (प्रसन्न करना) और कृ (बखेरना) के अनन्तर कर्तृवाचक क (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—

क्षिप्+क = क्षिप (क्षिपतीति क्षिप—फेंकनेवाला), इसी प्रकार

---

१ नन्दिग्रहिपचादिभ्यो ल्युणिन्यचः। ३। १। १३४।

२ इगुपधज्ञाप्रीकिरः कः। ३। १। १३५।

(ख) इकारान्त धातुओं में[1] अच (अ) जोड़ा जाता है जैसे—
जे+अच्=जय, चय, नय, भि+अच्=भयम्।

(ग) ऋकारान्त[2] और उकारान्त धातुओं में अप् लगता है, जैसे
ऽ+अच्=कर,—बखेरना। गर—विष। शर। यु+अप्=यव—
ोड़ना। लव—काटना। स्तव। पव—पवित्र करना। इसके अति-
रेक ग्रह[3], वृ, दृ, निश्चि, गम्, वश, रण् में भी अप् लगता है, ग्रह,
र, दर, निश्चय, गम, वश, रण।

(घ) यज्[4], याच्, यत्, विच्छ् (चमकना) प्रच्छ्, रक्ष् इनमें
ावार्थक नङ् (न) प्रत्यय लगता है, यज्ञ याच्ञा, यत्न, विश्न,
श्न, रक्ष्ण।

उपसर्गसहित[5] घुसंज्ञक धातुओं (दा, दो—खंडन करना, दे—
रक्षा करना, रक्षा करना, धा—धारण करना, धे—पीना) के अनन्तर
ावार्थ कि (इ) होता है। प्रधि (प्रधा+कि—आतो लोप इटि च। ६।
। ६४। से आकार का लोप हुआ), अन्तर्धि। अधिकरणवाचक

1 एरच्। ३। ३। ५६।
2 ऋदोरप्। ३। ३। ५७।
3 ग्रहवृदृनिश्चिगमश्च। ३। ३। ५८। वशिरण्योरुपसंख्यानम्। वा०।
4 यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षोनङ्। ३। ३। ९०।
5 उपसर्गे घोः किः। कर्मण्यधिकरणे च। ३। ३। ९२-९३।

लिख (लिखनेवाले), बुध (समझनेवाला), कृश (दुबला), ज्ञ (जाननेवाला), प्रिय (प्रसन्न करनेवाला), किर (बखेरनेवाला)।

[१] आकारान्त धातु के (तथा ए, ऐ, ओ, औ में अन्त होनेवाली जो धातु आकारान्त हो जाती है उसके) पूर्व यदि उपसर्ग हो तब भी 'क' प्रत्यय लगता है, जैसे—प्रजानातीति प्रज्ञ (प्रज्ञा+क), आह्वयतीति आह्व (आह्वे+क)

[२] (घ) यदि कर्म के योग में धातु आवे तो कर्तृवाचक अण् (अ) प्रत्यय होता है , जैसे कुम्भ करोतीति—कुम्भकार (कुम्भ+कृ+अण्), भार हरतीति भारहार (भार+हृ+अण्) । अण् के पूर्व वृद्धि हो जाती है।

नोट—कर्म के योग में अण् प्रत्यय क्रियार्थ तुमुन् की तरह प्रयोग में आता है, जैसे—कम्बलदायो याति—कम्बल देने के लिए जाता है।

[३] परन्तु यदि धातु आकारान्त हो और उसके पूर्व कोई उपसर्ग न हो तो कर्म के योग में उस धातु के अनन्तर क (अ) प्रत्यय लगेगा, अण् नहीं, जैसे—गा ददातीति गोद (गो+दा+क), किन्तु गा सन्ददातीति—गोसन्दाय (गो+सम्+दा+अण्)।

[४] इसके अतिरिक्त मूलविभुज नखमुच, काकग्रह, कुमुद, महीध्र, कुध्र गिरिध्र आदि कुछ शब्दों के अनन्तर भी क प्रत्यय इसी अर्थ में लगता है।

---

१ आतश्चोपसर्गे । ३ । १ । १३६ ।

२ कर्मण्यण् । ३ । २ । १ । अण् कर्मणि च । ३ । ३ । १२ ।

३ आतोऽनुपसर्गे कः । ३ । २ । ३ ।

४ कप्रकरणे मूलविभुजादिभ्य उपसंख्यानम् । वा० ।

शब्द बनाना हो तो भी धु धातुओं से, कर्म के योग में कि प्रत्यय लगा है, जैसे—जलधि', नीरधि (जलानि धीयन्ते अस्मिन्निति)।

(ङ) स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द धातुओं में क्तिन् (ति) जोड़क बनाए जाते हैं। कृति, श्रुति, मति, स्तुति, चिति। ॠकारान्त धातुश तथा लू आदि धातुओं के अनन्तर ति जोड़ने पर जो विकार निष्ठा प्रत्य जोड़ने में होता है वही होता है। कॄ+ति=कीर्ति, गीर्ति, लूनि, धूनि इत्यादि।

(च) सम्पद्, विपद्, आपद् प्रतिपद्, परिषद् इन में क्विप् और क्ति दोनों भावार्थ प्रत्यय लगाए जाते हैं, सम्पत्, विपत् आपत्, प्रतिपत्, परिषत सम्पत्ति, विपत्ति, आपत्ति, प्रतिपत्ति, परिषत्ति।

(छ) ऐसी धातुएँ जिनमें कोई प्रत्यय पहले से ही लगा हो (जैसे सन्नन्त, यङन्त आदि) उनसे स्त्रीलिङ्ग के भाववाचक शब्द बनाने के लि अ प्रत्यय जोड़ा जाता है, जैसे—कृ से सन् लगाकर चिकीर्ष् धातु, उससे भाववाचक अ प्रत्यय जोड़ा तो चिकीर्ष शब्द बना, फिर स्त्रीलिङ्ग का टा (आ) प्रत्यय लगाकर चिकीर्षा (करने की इच्छा) बना, इसी प्रका जिगमिषा, बुभुक्षा, पिपासा, पुत्रकाम्या आदि।

[1] कर्म के योग में अर्ह धातु के अनन्तर अच् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—पूजामर्हतीति पूजार्ह ब्राह्मण (पूजा+अर्ह+अच)।

[2] चर् के पूर्व यदि अधिकरण का योग हो और धातु से कर्तृवाचक शब्द बनाना हो तो ट (अ) प्रत्यय लगाते हैं, जैसे—कुरुषु चरतीति—कुरुचर (कुरु+चर्+ट)।

[3] अथवा यदि चर् के पूर्व भिक्षा, सेना, आदाय इन शब्दों में से किसी का योग हो तब भी ट प्रत्यय लगेगा, भिक्षां चरतीति, भिक्षाचर (भिक्षा+चर्+ट), सेना चरति प्रविशतीति, सेनाचर, आदाय – गृहीत्वा चरति गच्छतीति, आदायचर ।

[4] (ट) कृ धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो किन्तु धातु से हेतु शान्त (ताच्छील्य) अथवा अनुलोम्य (अनुकूलता) का बोध हो, तो अण् (कर्मण्यण्) प्रत्यय न लगकर ट प्रत्यय लगता है, जैसे—यश करोतीति यशस्करी विद्या—यश पैदा करनेवाली विद्या, यहाँ विद्या यश की हेतु है इस लिए ट प्रत्यय हुआ, श्राद्ध करोतीति श्राद्धकर (श्राद्ध करने की आदत वाला), वचन करोतीति वचनकर (वचनानुकूल कार्य करने वाला)।

---

१ अर्हः । ३ । २ । १२ ।
२ चरेष्टः । ३ । २ । १६ ।
३ भिक्षासेनादायेषु च । ३ । २ । १७ ।
४ कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येषु । ३ । २ । २० ।

यदि धातु हलन्त हो किन्तु उसमें कोई गुरु अक्षर (संयुक्त व्यञ्जन अथवा दीर्घ स्वर) हो तब भी क्तिन् न लगाकर अ लगता है, जैसे ईह्—ईहा, ऊहा।

(ञ) चिन्त्, पूज्, कथ्, कुम्ब्, चर्च् धातुओं में तथा उपसर्ग सहित आकारान्त धातुओं में अङ् प्रत्यय लगाकर स्त्रीलिङ्ग भाववाचक शब्द बनते हैं, चिन्ता, पूजा, कथा, कुम्बा, चर्चा, प्रदा, उपदा श्रद्धा, अन्तर्धा।

(झ) णिजन्त (प्रेरणार्थक) धातुओं में तथा आस्, श्रन्थ्, घट्ट्, वन्द्, विद् से भावार्थ स्त्रीलिङ्ग प्रत्यय युच् (अन) लगता है, जैसे—कारणा (कृ+णिच्+युच्+टाप्), इसी प्रकार हारणा, धारणा, आस्+युच्+टाप्=आसना, श्रन्थना, घटना, वन्दना, वेदना।

(ञ) नपुंसकलिङ्ग भाववाचक शब्द बनाने के लिए क्त प्रत्यय (निष्ठा वाला) अथवा ल्युट् (यु) धातुओं में लगाया जाता है, जैसे—हसितम्, हसनम्, गतम्, गमनम्, कृत, करण, हृतम्, हरणम्, इत्यादि।

---

१ गुरोश्च हलः । ३ । ३ । १०३ ।

२ चिन्तिपूजिकथिकुम्बिचर्चश्च । ३ । ३ । १०५ । आतश्चोपसर्गे । ३ । ३ । १०६ ।

३ ण्यासश्रन्थो युच् । ३ । ३ । १०७ । घट्टिवन्दिविदिभ्यश्चेति वाच्यम् । वा०।

४ नपुंसके भावे क्तः । ल्युट् च । ३ । ३ ।११४—११५ ।

[1] यदि कृ धातु के पूर्व दिवा, विभा, निशा, प्रभा, भास्, अन्त, अनन्त, आदि, बहु, नान्दी, किं, लिपि, लिवि, बलि, भक्ति कर्तृ, चित्र, क्षेत्र, सख्या, सख्यावाचक शब्द, जङ्घा, बाहु, अहर् (अहस्), यत्, तत्, धनुर् (धनुष्), अरुष् शब्द कर्म रूप में आवें तो ट प्रत्यय लगता है, अण् नहीं। दिवाकर, विभाकर, निशाकर, इत्यादि।

(च)[2] एज् धातु के पूर्व यदि कर्म का योग हो तो खश् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—जनम् एजयतीति (जन+एज्+खश्)।

[3] अरुष्, द्विषत् तथा अकारान्त (यदि अव्यय न हों) शब्दों के अनन्तर यदि ख में अन्त होने वाला शब्द आवे तो बीच में एक म् आ जाता है जैसे—जन शब्द अकारान्त है इसके अनन्तर एजय शब्द आया जिसमें खश् प्रत्यय लगा है इसलिए खिदन्त है, अतः बीच में म् आवेगा—जन+म्+एजय =जनमेजय ।

(छ)[4] वद् धातु के पूर्व यदि प्रिय और वश शब्द कर्म रूप में आवें तो वद् धातु में खच् (अ) प्रत्यय लगता है—प्रिय वदतीति प्रियवद (प्रिय+म्+वद्+खच्), वशंवद (वश+म्+वद+खच्)।

---

१ दिवाविभानिशाप्रभाभास्करान्तानन्तादिबहुनान्दी किंलिपिलिबिबलि भक्तिकर्तृचित्रक्षेत्रसंख्याजङ्घाबाह्वहर्यत्तद्धनुररुष्षु ३ । २ । २१ ।

२ एजेः खश् । ३ । २ । २८ ।

३ अरुर्द्विषदजन्तस्य मुम् । ६ । ३ । ६७ ।

४ प्रियवशे वदः खच् । ३ । २ । ३८ ।

(ट) पुलिङ्ग[1] नाम शब्द बनाने के लिए प्राय धातुओं में घ प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—आकृ+घ=आकर (खान), आखन (फावड़ा), आपणः (बाज़ार), निकष (कसौटी), गोचर (चरागाह), सञ्चर, वह, निगम आदि। परन्तु[2] हलन्त धातुओं में प्राय घञ् लगता है, घ नहीं, जैसे—राम , अपामार्ग (एक ओषधि का नाम)।

खलर्थ कृत् प्रत्यय

१९०—(क) कठिन[1] (इसलिए दु खात्मक) और सरल (अत एव सुखात्मक) के भाव का बोध कराने के लिए धातुओं के अनन्तर खल् (अ) प्रत्यय लगाया जाता है। यह भाव दिखाने के लिए सु और ईषत् शब्द (सुखार्थ) तथा दुर् (दु खार्थ) धातु के पूर्व जुड़े रहते हैं, जैसे—सुखेन कर्तु योग्य—सुकर (सुकृ+खल्), सुकर कटो भवता—चटाई आप से आसानी से बन सकती है, ईषत्कर, ईषत्कर कटो भवता—चटाई आप से जरा मे ही (अनायास ही) बन सकती है। दु खेन कर्तु योग्य —दुष्कर (दुष्कृ+खल्), दुष्कर कटो भवता—चटाई आप से मुश्किल से (दु ख से) बन सकती है। इसी प्रकार दुःशासन, दुर्योधन,

---

१ पुंसि सञ्ज्ञाया घ प्रायेण। ३। ३। ११८।

२ हलश्च। ३। ३। १२१।

३ ईषद्दु सुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल्। ३। ३। १२६।

(च)[1] भृ, तृ, वृ, जि, धृ, सह् तप्, दम् धातुओं के योग में तथा गम् धातु के योग में यदि कर्मरूप कोई शब्द आवे, और पूरा शब्द किसी का नाम हो तो खच् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—विश्व बिभर्तीति विश्वम्भरा (विश्व+म्+भृ+खच्+टाप्)—पृथ्वी का नाम, रथ तरतीति रथन्तरम् (रथ+म्+तृ+खच्)—साम का नाम, पति वरतीति पतिवरा—कन्या का नाम, शत्रुञ्जयतीति शत्रुञ्जय—एक हाथी का नाम, युगन्धर—पर्वत का नाम, शत्रुसह—राजा का नाम, परन्तप—राजा का नाम, अरिन्दम—राजा का नाम। सुतङ्गम।

(छ)[2] दृश् धातु के पूर्व यदि त्यद् तद् यद् एतद् इदम्, अदस्, एक, द्वि, युष्मद्, अस्मद्, भवत्, किम्, अन्य, समान शब्दों में से कोई रहे और दृश् धातु का अर्थ देखना न हो तो उसके अनन्तर कञ् (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे—तद्+दृश्+कञ्=तादृश (वैसा) त्यादृश, यादृश, एतादृश ...दृश, अन्यादृश।

इसी अर्थ में क्विन् प्रत्यय तथा क्स भी लगते हैं। क्विन् का लोप हो जाता है, धातु में कुछ नहीं जुड़ता क्स का स जुड़ता है, जैसे—तादृश् (तद्+दृश्+क्विन्) तादृक्ष (तद्+दृश्+क्स), अन्यादृश् (अन्य+दृश्+क्विन्), अन्यादृक्ष (अन्य+दृश्+क्स) इत्यादि।

---

[1] संज्ञायांभृतृवृजिधारिसहितपिदमः। ३। २। ४६।

[2] त्यदादिषु दृशोऽनालोचने कञ्च। ३। २। ६०। समानान्ययोश्चेति ...यम्। वा०। क्सोऽपि वाच्य। वा०।

दुर्वह, सुवह, ईषद्वह इत्यादि, तथा स्त्रीलिङ्ग दुष्करा, दुर्वहा, नपुं० दुष्कर, दुर्वह आदि रूप होते हैं।

(ख) आकारान्त धातुओं के अनन्तर खल् के अर्थ में युच् प्रत्यय होता[1] है खल् नहीं, जैसे—सुखेन पातुं योग्य सुपान, ईषत्पान, इसी प्रकार दुष्पान।

(ग) खल् और खलर्थ प्रत्यय कर्म की सूचना देते हैं,[2] कर्ता की नहीं इस लिए कर्म के विशेषण हो सकते हैं, कर्ता के नहीं।

उणादि प्रत्यय

१९१—कृत् प्रत्ययों के दो भेदों (कृत्य और कृत्) का व्याख्यान ऊपर किया जा चुका है। बाक़ी रहे उणादि। उणादि[3] का अर्थ है उण् आदि प्रत्यय। अर्थात् उस वर्ग के प्रत्यय जिनका पहला प्रत्यय उण् है। ये प्रत्यय बड़े टेढ़े हैं और बड़ी जोड़ तोड़ से धातुओं में शब्द बनाने के लिए लगाए जाते हैं, इनका[4] प्रयोग भी बहुल है—कभी किसी अर्थ में, कभी किसी अर्थ में। महर्षि पाणिनि ने इनके द्वारा संस्कृत के शेष ऐसे शब्दों की सिद्धि की है जो और किसी वर्ग के प्रत्ययों से सिद्ध नहीं होते। उदाहरणार्थ—करोतीति कारु—शिल्पी कारकश्च (कृ+उण्),

१ आतो युच्। ३। ३। १२८।

२ तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः। ३। ४। ७०।

३ कृवापाजिमिस्वदिसाध्यशूभ्य उण्।

४ उणादयो बहुलम्। ३। ३। १।

(अ)[1] सत (बैठना), सू (पैदा करना), द्विष् (बैर करना), द्रुह् (द्रोह करना), दुह् (दुहना), युज् (जोड़ना), विद् (जानना, होना), भिद् (भेदना, काटना), छिद् (काटना, टुकड़े करना), जि (जीतना), नी (ले जाना) और राज् (शोभित होना) इन धातुओं के पूर्व कोई उपसर्ग रहे वा न रहे, इनके अनन्तर क्विप् प्रत्यय लगता है, क्विप् का कुछ रहता नहीं सब लोप हो जाता है, जैसे —

द्युसत् (स्वर्ग में बैठनेवाला = देवता), प्रसू (माता), द्विट् (शत्रु), मित्रध्रुक् (मित्र से द्रोह करनेवाला), गोधुक् (गाय दुहनेवाला), अश्व युक् (घोड़ा जोतने वाला), वेदवित् (वेद जानने वाला), गोत्रभित् (पहाड़ों को तोड़नेवाला इन्द्र), पक्षच्छित् (पक्ष काटने वाला), इन्द्रजित् (मेघनाद), सेनानी (सेनापति), सम्राट् (महाराजा)। कुछ और धातुओं (जैसे ची—अग्निचित्, स्तु—देवस्तुत्, कृ—टीकाकृत्, दृश्—सर्वदृश्, स्पृश्—मर्मस्पृश्, सृज्—विश्वसृज् आदि) के अनन्तर भी क्विप् प्रत्यय लगता है।

(ट)[2] जातिवाचक संज्ञा (ब्राह्मण, हस, गो आदि) को छोड़ कर यदि कोई और सुबन्त (संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण) किसी धातु के पूर्व आवे और ताच्छील्य (आदत) का भाव सूचित करना हो तो उस धातु के

१ सत्सूद्विषद्रुहदुहयुजविदभिदछिदजिनीराजामुपसर्गेऽपिक्विप् । ३ । २ । ६१ । सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञ । ३ । २ । ८९ । अग्नौ चेः । ३।२।९१।

२ सुप्यजातौणिनिस्ताच्छील्ये । ३ । २ । ७८ ।

परुषम्[1] (पृ+उपच्), नहुष (नह्+उपच्), कलुषम् (कल्+उपच्) इत्यादि ।

द्वादश सोपान

लिङ्ग विचार

१९२—हिन्दी में दो लिङ्ग होते हैं—स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्ग, और सारे पदार्थवाचक शब्द चाहे चेतन हो अथवा अचेतन इन्हीं दो लिङ्गो में विभक्त होते हैं। जैसे—लड़की जाती है, गाड़ी आती है, आदमी आया, रथ चला आदि। संस्कृत में इन दो लिङ्गों के अतिरिक्त एक और होता है, जिसे नपुंसकलिङ्ग कहते हैं। सारी संज्ञाएं इन्हीं तीन लिङ्गो में विभक्त हैं, कोई पुलिङ्ग, कोई स्त्रीलिङ्ग और कोई नपुंसकलिङ्ग। एक ही वस्तु का बोध कराने वाला कोई शब्द पुलिङ्ग में है तो कोई स्त्रीलिङ्ग में अथवा नपुंसकलिङ्ग में, जैसे—तनु (स्त्री०), देह (पु०) और शरीरम् (नपु०) सभी शरीरवाची हैं। दारा शब्द पुलिङ्ग में होते हुए भी स्त्री का अर्थ बताता है, देवता शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हुए भी देव (पुरुष) का अर्थ बताता है। इस प्रकार यह विदित है कि संस्कृत भाषा में लिङ्ग प्रकृति के अनुसार नहीं है, यदि सारे अचेतन पदार्थवाचक शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते, पुरुषवाची शब्द पुलिङ्ग में और स्त्रीवाची स्त्रीलिङ्ग में तो कहा जा

---

१ पृनहिकलिभ्य उपच् ।

अनन्तर णिनि (इन्) प्रत्यय लगता है, जैसे—उष्ण भोक्तुं शीलमस्य उष्ण भोजी (उष्ण+भुज्+णिनि)— गरम गरम खाने की जिसकी आदत हो शीतभोजी, साधुकारी, ब्रह्मवादी इत्यादि । यदि आदत जतलानी न हो तो यह प्रत्यय नहीं लगेगा ।

मन्[1] के पूर्व यदि कोई सुबन्त रहे तब भी णिनि लगेगा, आदत हो या न हो—पण्डितमात्मानं मन्यते इति पण्डितमानी (पण्डित+मन्+ णिनि); दर्शनीयमानी ।

अपने आप को कुछ मानने[2] के अर्थ में ख प्रत्यय भी होता है, जैसे — पण्डितम्मन्य (खिदन्त शब्द के पूर्व म् आ जाता है)

(ग) जन्[3] धातु के अनन्तर प्रायः ड (अ) प्रत्यय लगता है, जैसे अधिकरण अर्थ में रहने पर—प्रयागे जातः—प्रयागजः, संस्काराज्जातः—संस्कारजः ; प्रजा (जन्+ड+टाप्), अजः ; द्विजः ।

१८८–शील, धर्म, साधुकारिता वाचक कृत्

(क) किसी[4] भी धातु के अनन्तर शील, धर्म तथा भली प्रकार

१ मनः । ३ । २ । ८२ ।

२ आत्ममाने खश्च । ३ । २ । ८३ ।

३ सप्तम्यां जनेर्डः । पञ्चम्यामजातौ । उपसर्गे च संज्ञायाम्। अनौ कर्मणि । अन्यष्वपि दृश्यते । ३ । २ । ९७ १०१ ।

४ आक्वेस्तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिषु । ३ । २ । १३४ । तृन् । ३ । २ । १३५ ।

सकता कि लिङ्ग प्रकृति के क्रम से है। परन्तु बात इससे उलटी है। इसी कारण संस्कृत की संज्ञाओं का लिङ्ग जानना बड़ा कठिन है। उसका ज्ञान कोषों से तथा काव्यग्रन्थों के अध्ययन से जाना जाता है।

व्याकरण के कुछ मोटे मोटे नियम हैं उन से भी कुछ सहायता मिल सकती है।

१९३—स्त्रीलिङ्ग शब्द

(क)[1] अनि, ऊ, मि, नि, क्तिन् (ति) और ई प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द प्राय स्त्रीलिङ्ग में होते हैं। क्रम से उदाहरण— अवनिः, चमू, भूमि, ग्लानि, कृति और लक्ष्मी। परन्तु वह्नि, वृष्णि, अग्नि पुलिङ्ग में होते हैं तथा अशनि, भरणि, अरणि, श्रोणि, योनि और ऊर्मि पुलिङ्ग और स्त्री लिङ्ग दोनों में होते हैं।

(ख)[2] टाप् प्रत्यय में अन्त होने वाले सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे— विद्या, अजा, कन्या आदि।

(ग)[3] एकाक्षर ईकारान्त और ऊकारान्त शब्द स्त्रीलिङ्ग में होते हैं, जैसे श्री, भू आदि। एकाक्षर न होने से पुलिङ्ग भी हो सकते हैं, जैसे—पृथुश्री, प्रतिभू आदि।

१ अन्यूप्रत्ययान्तो धातु । अशनिभरण्यरणय पुंसि च। मिन्यन्त । वह्निवृष्ण्यग्नय पुंसि । श्रोणियोन्यूर्मय पुंसि च। क्तिन्नन्त । ईकारान्तश्च । लिङ्गानुशासनम् ४—च०

२ ऊङाबन्तश्च । लिङ्ग० ११ । ३ य्वन्तमेकाक्षरम् । लिङ्ग० १२ ।

सम्पादन इन तीन में से किसी भी बात का भाव लाने के लि तृन् (तृ) प्रत्यय लगाया जाता है, जैसे—कृ + तृन् = कर्तृ—कत कटम्—जो चटाई बनाया करता है, अथवा जिसका धर्म चटा बनाना है, अथवा जो चटाई भली प्रकार बनाता है ये तीनों अ इससे सूचित हो सकते हैं।

(ख)[1] अलङ्कृ निराकृ, प्रजन्, उत्पच्, उत्पत्, उन्मद्, रुच्, अपत्रप् वृत्, वृध्, सह्, चर् इन धातुओं के अनन्तर इसी अर्थ में इष्णुच् (इष्णु) प्रत्यय लगता है। अलङ्करिष्णु (अलङ्कृत करने वाला), निराकरिष्णु (अपमान करने वाला), प्रजनिष्णु (पैदा करने वाला), उत्पचिष्णु (पकाने वाल), उत्पतिष्णु (ऊपर उठने वाला), उन्मदिष्णु (उन्मत्त होने वाला), रोचिष्णु (अच्छा लगने वाला), अपत्रपिष्णु (लज्जा करन वाला , वर्तिष्णु (विद्यमान रहने वला), वर्धिष्णु (बढ़ने वाला) सहिष्णु (सहनशील), चरिष्णु (भ्रमणशील)।

(ग)[2] शील, धर्म तथा भलीप्रकार सम्पादन का अर्थ सूचित करन के लिए निन्द, हिंस्, क्लिश्, खाद्, विनाश्, परिक्षिप्, परिरट्, परिवद्, ध्ये भाष्, असूय् इन धातुओं के अनन्तर वुञ् (अक) प्रत्यय लगता है। निन्दक हिंसक, क्लेशक, खादक, विनाशक, परिक्षेपक, परिरटक, परिवादक, ध्यायक, भाषकः, असूयक।

१ अलङ्कृञ्निराकृञ्प्रजनोत्पचोत्पतोन्मदरुच्यपत्रप वृतुवृधुसहचर इष्णुच् ।३।२।१३६।

२ निन्दहिंसक्लिशखादविनाशपरिक्षिपपरिरटपरिवादिव्याभाषासूयोवुञ् ।३।२।१४६।

(घ) तल्[1] प्रत्यय में अन्त होने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के हैं, जैसे पवित्रता जनता आदि।

(ङ)[2] १६ (एकोनविंशति) से लेकर ६६ (नवनवति) तक के सख्यावाची सभी शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं।

(च)[3] भूमि, विद्युत्, सरित्, लता और वनिता इन शब्दों का अर्थ रखने वाले शब्द स्त्रीलिङ्ग के होते हैं, जैसे—पृथिवी, तडित्, नदी, वल्ली, स्त्री आदि।

(छ)[4] ऋकारान्त शब्दों में केवल मातृ, दुहितृ, स्वसृ, पोतृ और ननान्दृ ही स्त्रीलिङ्ग के होते हैं।

१९४–पुलिङ्ग शब्द

(क)[5] भावार्थक घञ्, भावार्थक अप्, तथा घ, अच् नङ्, आकारान्त (घुसञ्ज्ञक) धातुओं के उपरान्त कि प्रत्यय, इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द पुलिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—

---

१ तलन्त । लि० १७ ।

२ विंशत्यादिरानवतेः । लि० १३ ।

३ भूमिविद्युत्सरिल्लतावनिताभिधानानि । लि० १८ ।

४ ऋकारान्ता मातृदुहितृस्वसृपोतृननान्दरः । लि० ३ ।

५ घञबन्तः । घाजन्तश्च । भयलिङ्गभगपदानि नपुंसके । नङन्तः । याच्ञा स्त्रियाम् । क्यन्तो घुः । लिङ्ग० ३६—४१ ।

घञन्त—पाक, त्याग ।

अबन्त—कर, गर ।

घान्त - विस्तर, गोचर ।

अजन्त—चय जय [भय, लिङ्ग, भग, पद ये शब्द नपुं०लि० में होते हैं]

नङन्त—यज्ञ, यत्न [याच्ञा स्त्रीलिङ्ग में]

क्यन्त—जलधि, निधि, आधि ।

(ख) न् तथा उ में अन्त होने वाले शब्द प्राय पुलिङ्ग के होते हैं; जैसे—राजन् (राजा), तक्षन् (तक्षा) प्रभु इक्षु । [कुछ नकारान्त शब्द चर्मन् आदि नपुंसक होते हैं । धेनु, रज्जु, कुहु सरयु, तनु, रेणु, प्रियङ्गु ये उकारान्त स्त्रीलिङ्ग में, और श्मश्रु, जानु, वसु (धन), स्वादु, अश्रु, जतु, त्रपु, तालु दारु, कमेरु वस्तु और मस्तु नपुंसक लिङ्ग में होते हैं] ।

(ग) ऐसे शब्द जिनकी उपधा में क ट, ण्, थ्, न्, प्, भ् म्, य्, र्, ष् स् में से कोई अक्षर हो और यदि वे अकारान्त हों तो प्राय पुलिङ्ग होते हैं; जैसे–स्तबक कल्क, घट, पट, गुण, गण, पाषाण, रथ, [किन्तु काष्ठ,

१ नान्त । लि० ४८ उकारान्त । लि० ५१ ।

२ कोपध । ६१ । टोपध । ६४ । णोपध । ६७ । थोपध । ७० । नोपध । ७४ । पोपध । ७७ । भोपध । ८० । मोपध । ८२ । योपध । ८३ । रोपध । ८६ । षोपध । ९३ । सोपध । ९६ ।

विस्तार बताने के लिए) हिम और अरण्य के अनन्तर, खराब यव अर्थ में यव के अनन्तर, यवनों की लिपि का बोध कराने के लिए यवन अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर ङीप् लगने के पूर्व आनुक् आन) जोड़ दिया जाता है—इन्द्राणी, भवानी आदि, यवानी (खराब), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी, उपाध्यायानी।

(ग) अकारान्त[1] ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में न हो ङीप् लगकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे—ब्राह्मण—ब्राह्मणी, रिणी, मृगी।

(घ) उकारान्त गुणवाची शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने लिए विकल्प से ङीप् लगाते हैं, जैसे—मृदु से मृदु अथवा द्वी। किन्तु यदि उपधा में उ हो तो ङीप् नहीं लगेगा— एडु पु० तथा स्त्री० दोनों में।

इ अथवा ई में अन्त होनेवाले गुणवाची शब्दों का पुलिङ्ग तथा ीलिङ्ग दोनों में समान रूप रहता है, जैसे—शुचि, सुधी।

---

१ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। ४। १। ६३।

पृष्ठ, सिक्थ, उक्थ नपुंसक होते हैं ,] इन , फेन [अघन, अजिन, तुहिन, कानन, वन, वृजिन, विपिन, वेतन, शासन, सोपान, मिथुन, श्मशान, रत्न, निम्न, चिह्न नपुंसक में होते हैं], यूप , दीप [पाप, रूप उडुप, तल्प, शिल्प, पुष्प, शष्प, समीप, अन्तरीप नपुंसक में], स्तम्भ , कुम्भ , सोम , भीम , समय , हय [किसलय, हृदय, इन्द्रिय, उत्तरीय नपुंसक में], क्षुर , अङ्कुर [द्वार आदि बहुत से शब्द नपुंसक लिङ्ग के होते हैं], वृष , वृक्ष , वत्स वायस , महानस ।

(घ) देव[1], असुर, आत्म, स्वर्ग, गिरि, समुद्र, नख, केश, दन्त स्तन, भुज, कण्ठ, खड्ग, शर, पङ्क, क्रतु, पुरुष, कपोल गुल्फ मेघ, रश्मि, दिवस— ये शब्द तथा इनका अर्थ बतानेवाले शब्द प्राय पुलिङ्ग के होते हैं, उदाहरणार्थ—देव —सुर , असुर —दैत्य , आत्मा—क्षेत्रज्ञ., स्वर्गो–नाक , गिरि –पर्वत , समुद्रो—अब्धि , नख —कररुह , केशा —शिरोरुहा , दन्त —दशन , स्तन —कुच , भुज —दो , कण्ठ —गल , खड्ग —असि , शर बाण , पङ्क —कर्दम , क्रतु —अध्वर , पुरुष —नर , कपोल —गण्ड गुल्फ —प्रपद , मेघ —नीरद , रश्मि —मयूख , दिवस —घस्र (दिन और अहन् नपुंसक में होते हैं) ।

(ङ) दार[2], अक्षत, लाज, असु ये पुलिङ्ग में तथा सदा बहुवचन में होते हैं—दारा , अक्षता , लाजा , असव ।

---

१ देवासुरात्मस्वर्गगिरिसमुद्रनखकेशदन्तस्तनभुजकण्ठखड्गशरपङ्काभिधानानि ।९३ । क्रतुपुरुषकपोलगुल्फमेघाभिधानानि । ९९ । रश्मिदिवसाभिधानानि ।१०० । २ दाराक्षतलाजासूनां बहुत्वञ्च । १०९ ।

त्रयोदश सोपान

अव्यय विचार

२००—अव्यय[1] ऐसे शब्द को कहते हैं जिसके रूप में कोई विकार न उत्पन्न हो, वह सदा एक सा रहे। जिसका खर्च न हो अर्थात् जो लिङ्ग, विभक्ति, वचन के अनुसार घटैं बढै नहीं वही अव्यय है।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम्॥

उदाहरणार्थ—उच्चैः (ऊँचे), नीचैः (नीचे), अभितः (चारों ओर), ह्यः आदि।

अव्यय चार प्रकार के होंगे—(१) उपसर्ग, (२) क्रिया विशेषण, (३) समुच्चयबोधक शब्द (conjunctions) तथा (४) मनोविकार सूचक शब्द (interjections)। इनके अतिरिक्त प्रकीर्णक।

उपसर्ग

२०१—धातु या धातु से बने-हुए विशेषण, जो संज्ञा आदि शब्दों के पूर्व जोड़े जाते हैं उनको उपसर्ग कहते हैं। इनके द्वारा धातु का अर्थ कुछ परिवर्तित हो जाता है, इनके द्वारा ही धातु के

१ स्वरादिनिपातमव्ययम्। १। १। ३७।

१९५—नपुंसकलिङ्ग शब्द

(क) भावार्थक ल्युट् भावार्थक क्त तथा भावार्थ और कर्मार्थ ष्यञ्, यत्, य, ढक्, यक्, अञ्, अण्, वुञ्, छ इन प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं। उदाहरणार्थ—

ल्युट्—हसनम् (यदि ल्युट् भावार्थ में न होगा तो नपु० नहीं होगा, पचन—पकाने वाला),

क्त—गतम्, यातम्,

त्व—शुक्लत्वम्,

ष्यञ्—चातुर्यम्, ब्राह्मण्यम्, यत्—स्तेयम्, य-सख्यम्, ढक्—कापेयम्, यक्—आधिपत्यम्, अञ्—औष्ट्रम्, अण्—द्वैहायनम्, वुञ्—पैतापुत्रकम्, छ—अच्छावाकीयम्।

(ख) अव्ययीभावसमास तथा एकवचनान्त द्वन्द्व सर्वदा तथा द्विगु विकल्प से नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, जैसे—अधिहरि, पाणिपादम्, त्रिभुवनम्।

(ग)—इस्, उस् में अन्त होने वाले शब्द नपुंसकलिङ्ग में होते हैं, जैसे—हवि, धनु।

---

१ भावे ल्युडन्त। ११९। निष्ठा च।१२०। त्वष्यञौ तद्धितौ।१२१। कर्मणि च ब्राह्मणादिगुणवचनेभ्य। १२२। यद्ढग्यगञण्वुञ्छाश्च भावकर्मणि। १२३।

२ अव्ययीभाव। द्वन्द्वैकत्वम्। १२४। द्विगु स्त्रियां च। १२५।

३ इसुसन्त। १२६।

विविध अर्थों का प्रकाश होता है। उदाहरणार्थ कृ धातु का अर्थ है 'करना', किन्तु इसके पूर्व उपसर्ग लगा कर अपकार, उपकार, अधिकार आदि शब्द बनते हैं। सिद्धान्तकौमुदीकार कहते हैं —

उपसर्गेण धात्वर्थो बलादन्यत्र नीयते।
प्रहाराहारसंहारविहारपरिहारवत्॥

किसी उपसर्ग से कभी धातु का अर्थ उलटा हो जाता है, कभी वही रहते हुए अधिक विशिष्ट हो जाता है और कभी ठीक वही। यही भाव इस श्लोक में दिया है —

धात्वर्थं बाधते कश्चित् कश्चित्तमनुवर्तते।
तमेव विशिनष्ट्यन्य उपसर्गगतिस्त्रिधा॥

उदाहरणार्थ—'जय' का अर्थ है 'जीत' किन्तु 'पराजय' का अर्थ हुआ 'हार' उससे बिल्कुल उलटा, भू-का अर्थ है 'होना' किन्तु 'अभिभू' का अर्थ है 'हराना', 'प्रभु' का अर्थ है 'सामर्थ्यवान् होना', 'रुष्' का अर्थ है 'खींचना' किन्तु 'प्ररुष्' का 'खूब जोर से खींचना' इत्यादि।

नीचे उपसर्ग[1] उन मुख्य अर्थों सहित जो बहुधा उनके साथ चलते हैं दिए जाते हैं।

---

1 प्र परा, अप, सम्, अनु, अव, निस, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, सु, उद, अभि, प्रति, परि, उप। एते प्रादय उपसर्गा क्रियायोगे। गतिश्च। १।४।५८—६०।

(घ)—मन् में[1] अन्त होनेवाला शब्द यदि दो स्वरों वाला हो और कर्तृवाचक न हो तो नपुंसक होगा , जैसे—चर्म, वर्म, किन्तु अणिमा; क्योंकि यह दो स्वरों वाला नहीं, दामा (देने वाला) क्योंकि यह कर्तृवाचक है।

(ङ) असु[2] में अन्त होने वाले दो स्वरों वाले शब्द नपुसकलिङ्ग में होते हैं , मन , यश , तप आदि।

(च)—त्र[3] में अन्त होनेवाले शब्द प्राय नपुसक होते हैं , छत्रम्, पत्रम् आदि, किन्तु यात्रा, मात्रा भस्त्रा, दंष्ट्रा, वरत्रा स्त्रीलिङ्ग के हैं।

(छ) जिन[4] शब्दों की उपधा में ल हो वे प्राय नपुसक होते हैं, कुलम् स्थलम्, कूलम्।

(ज) शत[5] से आरम्भ करके ऊपर की सख्या नपुसक होती हैं, केवल शत, प्रयुत, अयुत पुलिङ्ग में भी होते हैं, लक्षा और कोटि स्त्रीलिङ्ग में तथा शङ्कु पुलिङ्ग में होते हैं।

---

१ मन् द्व्यच्कोऽकर्तरि । १४८ ।

२ असन्तो द्व्यच्क । १५१ ।

३ त्रान्त । १५३ ।

४ लोपध । १४१ ।

५ शतादि सख्या । शतायुतप्रयुता पुंसि च । लक्षाकोटि स्त्रियाम् । शङ्कु पुंसि । १४४-४७ ।

अति—का अर्थ बाहुल्य अथवा उल्लघन होता है , जैसे—अतिक्रम सीमा का उल्लघन, अतिनिद्रा—अधिक नींद । ,

अधि—ऊपर, जैसे अधिकार ऊपरी काम, जिसमें दूसरे वश में हों।

अनु—पीछे, साथ, जैसे अनुगमनम् ।

अप—दूर, जैसे अपहार—दूर ले जाना, अपकार ।

अपि—निकट, जैसे अपिधानम्—ढक्कन (अपि का विकल्प से अ लुप्त होजाता है—अपिधानम् , पिधानम्) ।

अभि—ओर, जैसे अभिगमनम्—किसी की ओर जाना

अव—दूर , नीचे, जैसे अवतार—नीचे आना, अवमान—नीचे मानना ।

आ—तक, कम , जैसे आच्छद्—चारों ओर तक ढकना, आकम्प—कुछ काँपना ।

उद्—ऊपर, जैसे उद्गम्—ऊपर जाना (निकलना), उत्पत्—ऊपर गिरना (उड़ना) ।

उप—निकट, जैसे उपासना—निकट बैठना (प्रार्थना) ।

दुर्—बुरा, जैसे दुराचार—ख़राब काम ।

दुस्—कठिन, जैसे दुष्कर—करने में कठिन, दु सह—सहने में कठिन ।

नि—नीचे आदि, जैसे निपत्—नीचे गिरना, निकाय—समूह ।

निर्—बाहर, जैसे निर्गम्—बाहर निकलना, निर्दोष—दोष से बाहर ।

(क)[1] मुख, नयन, लोह, वन मास, रुधिर, कार्मुक, विवर, जल, हल, धन, अन्न, बल, कुसुम, शुल्व, पत्तन, रण ये शब्द तथा इनका अर्थ बताने वाले शब्द प्राय नपुंसक होते हैं। मुखम्—आननम् नयनम्—नेत्रम्, लोहम्—फालम्, वनम्—गहनम्, मासम्—आमिषम्, रुधिरम्—रक्तम्, कार्मुकम्—शरासनम्, विवरम्—बिलम्, जलम्—वारि, हलम्—लाङ्गलम्, धनम्—द्रविणम्, अन्नम्—अशनम्, बलम्—वीर्यम्, कुसुमम्—पुष्पम्, शुल्वम्—ताम्रम्, पत्तनम्—नगरम्, रणम्—युद्धम्।

(ख)[2] फलों की जाति बताने वाले शब्द नपुंसक होते हैं, आम्रम्, आमलकम्।

स्त्री-प्रत्यय

१९६—कुछ संज्ञाएँ ऐसी होती हैं जिनके जोड़े के शब्द होते हैं—एकपुरुष और एक स्त्री। इस प्रकार की पुंलिङ्ग संज्ञाओं में स्त्रीलिङ्ग की जोड़ीदार संज्ञा बनाने के लिए जो प्रत्यय जोड़े जाते हैं उन्हें स्त्रीप्रत्यय कहते हैं, जैसे—अज से टाप् लगाकर अजा स्त्रीलिङ्ग का शब्द बना। इस प्रकार के स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाने के लिए बहुधा नीचे लिखे प्रत्यय लगाए जाते हैं।

---

१ मुखनयनलोहवनमासरुधिरकार्मुकविवरजलहलधनान्नाभिधानानि । १३७ । बलकुसुमशुल्वपत्तनरणाभिधानानि । १३७ ।

२ फलजाति । १६१ ।

निस्—विना, बाहर, जैसे निःसार —सार रहित निःशङ्क —शङ्का रहित ।

परा—पीछे, उलटा, जैसे पराजय —हार, पराभव —हार, परागत —चला गया ।

परि—चारों ओर, जैसे परिखा—चारों ओर की खाई ।

प्र—अधिक, जैसे प्रणाम —अधिक झुकना ।

प्रति—ओर, उलटा, जैसे प्रतिकार —बदला, प्रतिगम्—किसी की ओर जाना ।

वि—बिना अलग, जैसे विचल — दूर चला हुआ, वियोग ।

सम्—अच्छी तरह, जैसे संस्कार —अच्छी तरह किया हुआ काम

सु—अच्छी तरह; जैसे सुकृतम्—पुण्य (अच्छी तरह किया हुआ)।

इनमें से एक या कई उपसर्ग धातु, क्रिया अथवा धातु से निर्मित अन्य शब्दों के पूर्व जुड़े मिलते हैं और भिन्न २ अर्थों में, ऊपर के अर्थ केवल निर्देशमात्र हैं।

(ख) इनके अतिरिक्त कुछ और शब्द भी हैं उनको भी धातु आदि के पूर्व लगाते हैं, इनका नाम 'गति' है । मुख्य २ गति शब्द ये हैं —

असत्—जैसे असत्कार ।

सत्—जैसे सत्कार , सद्गति ।

नमः —(कृ के पूर्व) नमस्कार ।

साक्षात्— ,, ,, साक्षात्कार ।

अन्तः —अन्तर्हित —छिपा हुआ ।

अस्तम्—(गत्यर्थक धातुओं के पूर्व)—अस्तङ्गत , अस्तलीन , आदि ।

१९७—टाप्

नोट—टाप् प्रत्यय के ट और प् का लोप होकर केवल आ शेष रह जाता है, वह आ पुलिङ्ग श द मे जोड़ा जाता है।

(क) अजा आदि [अजा, एडका, कोकिला, चटका, अश्वा, मूषिका, बाला, होडा, पाकी, वत्सा, मन्दा, विलाता, पूर्वापहाणा, अपरापहाणा, कुञ्चा, उष्णिहा, देवविशा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, मध्यमा, दंष्ट्रा] शब्दों में तथा अकारान्त शब्दो में स्त्रीबोधक टाप् प्रत्यय लगता है, जैसे—अज + आ = अजा, एडक + आ = एडका, अश्व + आ = अश्वा, बाल + आ = बाला, उष्णिह् + आ = उष्णिहा, देव विश् + आ = देवविशा । भुञ्जान + आ = भुञ्जाना, गङ्ग + आ = गङ्गा इत्यादि।

(ख) टाप् के जोड़ने के पूर्व यदि शब्द में क अन्त में आवे और उसके पूर्व अ हो तो अ के स्थान में इ हो जाती है। परन्तु यह नियम तभी लगेगा जब क किसी प्रत्यय का हो और टाप् के पूर्व सुप् प्रत्ययों में से कोई न लगे हों, जैसे—मूषक + टाप् (आ) = मूषिक + आ = मूषिका ; कारक + टाप (आ) = कारिक + आ = कारिका, सर्वक + टाप् = सर्वक + आ = सर्विक + आ = सर्विका, मामक + टाप् = मामक + आ = मामिक + आ = मामिका, दाक्षिणात्यिका, पाश्चात्यिका । यदि क किसी प्रत्यय का न होगा तो यह नियम नहीं लगेगा, जैसे—शङ्क + आ = शङ्का । यहाँ 'क' धातु का है किसी प्रत्यय का नहीं।

---

१ अजाद्यतष्टाप् ।४।१।४।

२ प्रत्ययस्थात्कात्पूर्वस्यात इदाप्यसुप ।७।३।४४।

आवि.—(कृ, अस्, भू के पूर्व) आविष्कार , आविर्भूत ।
प्रादु —(„ „ „) प्रादुष्कार, प्रादुर्भूत ।
तिर—(भू और धा के पूर्व) तिरोभूत , तिरोहित ।
पुर —(कृ, भू, गम् के पूर्व) पुरस्कार , पुरोगत , पुरोभव ।
स्वी—(कृ, के पूर्व) स्वीकारार्थ, स्वीकृत आदि ।

[1] न (नञ्) प्राय सादृश्य (जैसे अब्राह्मण —ब्राह्मण नहीं, किन्तु उसी के सदृश कोई और), अभाव (जेसे ज्ञानस्य भाव —अज्ञानम्), अन्य प्रकार (जैसे अय अपट —यह कपडे से भिन्न है), अल्पता (जेसे अनुदरा कन्या—कम पेटवाली), बुराई (जैसे अकार्य) अथवा विरोध (जैसे अनीति —नीतिविरोध) का बोध उपसर्ग रूप लगकर करता है ।

कुछ अव्यय शब्द के अन्त में भी लगते हैं, जैसे किम् के उपरान्त चित् अथवा चन अनिश्चय का बोध कराने के लिए और वर्तमान काल की क्रिया के अनन्तर स्म—भूतकाल का बोध कराने के लिए लगता है ।

२०२—क्रियाविशेषण

कुछ क्रियाविशेषण स्व आदि अव्ययो मे गिनाए हुए शब्द हैं, जैसे—पृथक् विना, वृथा आदि, कुछ सर्वनामो से बनते हैं, जैसे —इदानीम्, यथा, तथा आदि, कुछ सख्यावाची शब्दों से बनते हैं जैसे—एकधा, द्विधा, द्वि , त्रि आदि और कुछ सज्ञाओं मे तद्धित प्रत्यय लगाकर , जैसे—पुत्रवत्, भस्मसात् आदि । इसके अतिरिक्त

१—तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्व तदल्पता ।
अप्राशस्त्य विरोधश्च नञर्था षट् प्रकीर्तिता ॥

१९८—ङीप्

(क) अकारान्त[1] और नकारान्त पुलिङ्ग शब्दों के अनन्तर ङीप् (ई) लगाकर स्त्रीलिङ्ग शब्द बनाया जाता है, जैसे—कर्तृ—कर्त्री, दण्डिन्—दण्डिनी, राज्ञी, शुनी।

नोट—ङीप् की ई जुड़ने के पूर्व प्रातिपदिक में नीचे लिखे अनुसार हेर फेर कर लिया जाता है।

व्यञ्जनान्त शब्द का वह रूप ले कर जो तृतीया के एकवचन में होता है, उसका अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है और शतृ, स्यतृ प्रत्ययान्त शब्दों में त् के पूर्व न् जोड़ दिया जाता है, जैसे—(राजन् का तृ० ए० व० राज्ञा है इसका आ गिराकर राज्—हुआ, इससे ई जोड़ कर राज्ञी बना, इसी प्रकार शुनी आदि, पचता से पचत्+ई=पचन्ती)। स्वरान्त शब्दों का अन्तिम स्वर गिरा दिया जाता है (गौर+गौर्+ई=गौरी)।

(ख) नीचे[2] लिखे शब्दों के अनन्तर ङीप् लगाया जाता है—कर में अन्त होने वाले—भोगकर—भोगकरी।

नद, चोर, देव, ग्राह, गर, प्लव—नदी, चोरी, देवी, ग्राही, गरी, प्लवी।

ढ, अण्, अञ्, तयप्, ठक्, ठञ्, कञ्, और करप् प्रत्ययों में अन्त होने वाले शब्द—औपग=औपगी, कुम्भकार=कुम्भकारी, यादृश=यादृशी, द्वितय=द्वितयी, आक्षिक=आक्षिकी, इत्वर=इत्वरी।

---

१ ऋन्नेभ्यो ङीप्। ४। १। ५।

२ टिड्ढाणञ्द्वयसज्दघ्नञ्मात्रच्तयप्ठक्ठञ्कञ्क्वरपः। ४। १। १५।

सञ्ज्ञाओं को द्वितीया के एकवचन में बहुधा क्रियाविशेषण स्वरूप प्रयोग में लाते हैं, जैसे सत्यम्, चिरेण, सुखम् आदि।

(क) नीचे अकारादिक्रम से मुख्य २ प्रचलित क्रियाविशेषण दिए जाते हैं —

अकस्मात्—एकबारगी
अग्रत —आगे
अग्रे—पहले
अचिरम्—, अचिरात्—, अचिरेण— } शीघ्र
अजस्रम्—निरन्तर
अन्तर्—अन्दर
अत —इसलिए
अतीव—बहुत
अत्र—यहाँ
अथ—तब, फिर
अथकिम्—हाँ, तो क्या
अद्य—आज
अध —, अधस्तात्— } नीचे
अपरम्—और
अपरेद्यु —दूसरे दिन
अधुना—अब
अनिशम्—निरन्तर
अन्तरेण—बारे में
अन्तरा—बिना
अन्तरे—बीच में
अन्यच्च—और
अन्यत्र—दूसरी जगह
अन्यथा—दूसरी तरह
अभित —चारों ओर, पास
अभीक्ष्णम्—निरन्तर
अर्वाक्—पहले
अलम्—बस
असकृत्—कई बार
असम्प्रति—, असाम्प्रतम्— } अनुचित
आरात्—दूर, समीप
इत —यहाँ से
इतस्तत —इधर उधर
इति—इस प्रकार

(ग) प्रथम[1] वयस् (अन्तिम अवस्था को छोड़कर) का बोध कराने वाले शब्दों के अनन्तर ङीप् लगता है, जैसे—कुमार कुमारी, किशोरी, वधूटी, किन्तु वृद्धा, स्थविरा।

१९९–ङीप्

(क) पित्[2] शब्दों (नर्तक खनक, रञ्जक, रजक आदि) तथा गौरादिगण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, बदर, उभय, भृङ्ग, अनडुह्, नट, मङ्गल, मण्डल, बृहत्, महत् ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर ङीष् (ई) जोड़ा जाता है, जैसे—नर्तकी, रजकी, गौरी आदि।

—ई जुड़ने के पूर्व १९८ नोट में लिखे परिवर्तन शब्द में हो जाते हैं।

(ख) पुंलिङ्ग[3] शब्द जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिए ङीष् जोड़ा जाता है, किन्तु—पालक शब्द में अन्त होनेवाले शब्दों के अनन्तर नहीं, जैसे—गोप गोपी, शूद्र· शूद्री, किन्तु गोपालक से गोपालिका।

इन्द्र[4], वरुण, भव, शर्व, रुद्र, मृड आचार्य इनके अनन्तर तथा

१ वयसि प्रथमे। ४।१।२०। वयस्य चरम इति वाच्यम्।

२ पिद्गौरादिभ्यश्च। ४।१।४१।

३ पुंयोगादाख्यायाम्। ४।१।४८। पालकान्ताश्च। वा०।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्। ४।१।४९। हिमारण्ययोर्महत्त्वे। यवाद्दोषे। यवनाल्लिप्याम्। वा०।

इत्थम्—इस प्रकार
इदानीम्—इस समय
इह—यहाँ
ईषत्—कुछ, थोड़ा
उच्चै —ऊँचे
उभयत —दोनों ओर
ऋतम्—सच
ऋते—बिना
एकत्र—एक जगह
एकदा —एक बार
एकधा—एक प्रकार
एकपदे—एक साथ
एतर्हि—अब
एव—ही
एवम्—इस तरह
कच्चित्—, कच्चन— } क्या ?
कथम्—कैसे ?
कथञ्चन—, कथञ्चित्— } किसी प्रकार
कदा—कब
कदाचित्—कभी, शायद
कदापि—कभी
कदापि न—कभी नहीं
किञ्च—और
किन्तु—लेकिन
किम्—क्या ? क्यों ?
किमुत—और कितना ?
किम्वा—या
किल—सचमुच
कुत —कहाँ से
कुत्र—कहाँ
कुत्रचित्—कहीं
कृतम्—बस, होगया
केवलम् - सिर्फ़
क्व—कहाँ
क्वचित्—कहीं
खलु—निश्चय करके
चिरम्—देर तक
जातु—कभी भी
झटिति—जल्दी
तत्—इसलिए
तत —फिर
तत्र—वहाँ

(विस्तार बताने के लिए) हिम और अरण्य के अनन्तर, खराब यव के अर्थ में यव के अनन्तर, यवनों की लिपि का बोध कराने के लिए यवन के अनन्तर तथा मातुल, उपाध्याय के अनन्तर ङीप् लगने के पूर्व आनुक् (आन) जोड़ दिया जाता है—इन्द्राणी, भवानी आदि, यवानी (खराब जौ), यवनानी (यवनों की लिपि), मातुलानी, उपाध्यायानी।

(ग) अकारान्त[1] ऐसे जातिवाचक शब्द जिनकी उपधा में य् न हो ङीप लगकर स्त्रीलिङ्ग होते हैं, जैसे—ब्राह्मण —ब्राह्मणी, हरिणी, मृगी।

(घ) उकारान्त गुणवाची शब्दों के अनन्तर स्त्रीलिङ्ग बनाने के लिए विकल्प से ङीप् लगाते हैं, जैसे—मृदु से मृदु अथवा मृद्वी। किन्तु यदि उपधा में उ हो तो ङीप् नहीं लगेगा—पाण्डु पु० तथा स्त्री० दोनो में।

इ अथवा ई मे अन्त होनेवाले गुणवाची शब्दो का पुलिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों मे समान रूप रहता है, जैसे—शुचि, सुधी।

---

१ जातेरस्त्रीविषयादयोपधात्। ४। १। ६३।

तदा—तब
तदानीम्—तब
तथा—उस तरह
तथाहि—जैसे (विशद रूप से वर्णन)
तस्मात्—इसलिए
तर्हि—तब
तावत्—तब तक
तिरः— } —तिर्छे
तिर्यक्— }
तूष्णीम्—चुपचाप
दिवा—दिन में
दिष्ट्या—सौभाग्य से
दूरम्—दूर
दोषा—रात को
द्राक्—शीघ्र, शीघ्र
नूनम्—निश्चय ही
नक्तम्—रात को
न—नहीं
न परम्—परन्तु
नाना—तरह तरह से
नाम—नाम वाला, नामी
निकषा—निकट

नीचैः—नीचे
नूनम्—निश्चित
नो—नहीं
परम्—फिर परन्तु
परश्वः—परसों
परितः—चारों ओर
परेद्युः—दूसरे दिन (कल)
पर्याप्तम्—काफ़ी
पश्चात्—पीछे
पुनः—फिर
पुरतः— } आगे
पुरः— }
पुरस्तात्— }
पुरा—पहले
पूर्वेद्युः पहले दिन (कल)
पृथक्—अलग अलग
प्रकामम्—यथेष्ट, बहुत
प्रतिदिनम्—हर रोज़
प्रत्युत—उलटे
प्रसह्य—ज़बर्दस्ती
प्राक्—पहले
प्रातः—सवेरे

(ग) प्रथम वयस्[1] (अन्तिम अवस्था को छोड़कर) का बोध करानेवाले शब्दों के अनन्तर ङीप् लगता है, जैसे—कुमार कुमारी, किशोरी, वधूटी, किन्तु वृद्धा, स्थविरा।

१९९–ङीष्

(क) पित् शब्दों[2] (नर्तक, खनक, रजक, रजक आदि) तथा गौरादिगण के शब्दों (गौर, मनुष्य, हरिण, आमलक, बदर, उभय, शृङ्ग, अनडुह्, नट, मल्ल, मण्डल, बृहत्, महत् ये इस गण के मुख्य शब्द हैं) के अनन्तर ङीष् (ई) जोड़ा जाता है, जैसे—नर्तकी, रजकी, गौरी आदि।

—ई जुड़ने के पूर्व १९८ नोट में लिखे परिवर्तन शब्द में हो जाते हैं।

(ख) पुंलिङ्ग शब्द[3] जो नर का द्योतक हो, उससे मादा बनाने के लिए ङीष् जोड़ा जाता है, किन्तु—पालक शब्द में अन्त होनेवाले शब्दों के अनन्तर नहीं, जैसे—गोप गोपी, शूद्र शूद्री, किन्तु गोपालक से गोपालिका।

इन्द्र[4], वरुण, भव, शर्व, रुद्र मृड, आचार्य इनके अनन्तर तथा

---

१ वयसि प्रथमे। ४। १। २०। वयस्य चरम इति वाच्यम्।

२ पिद्गौरादिभ्यश्च। ४। १। ४१।

३ पुंयोगादाख्यायाम्। ४। १। ४८। पालकान्तान्न। वा०।

४ इन्द्रवरुणभवशर्वरुद्रमृडहिमारण्ययवयवनमातुलाचार्याणामानुक्। ४। १। ४९। हिमारण्ययोर्महत्वे। यवाद्दोषे। यवनाल्लिप्याम्। वा०।

प्राय —अक्सर
प्रेत्य—मरकर, दूसरी दुनिया में
बलात्—ज़बर्दस्ती
बहि —बाहर
बहुधा—बहुत प्रकार से
भूय —फिर फिर, अधिक
भृशम्—बार बार, अधिकाधिक
मनाक्—थोड़ा
मिथ —परस्पर
मिथ्या—झूठ
मुधा —बेकार
मुहु —बार बार
मृषा—झूठ, बेकार
यत्—जो, क्योंकि
यत —क्योंकि
यत्र—जहाँ
यथा—जैसे
यथाकथा—जैसे तैसे
यथायथा—जैसे जेसे
यदा—जब
यावत्—जब तक
युगपत्—साथ साथ, इकबारगी
विना—विना
वृथा—बेकार
वै—निश्चय
शनै—धीरे धीरे
श्व —कल (आनेवाला दिन)
शश्वत्—सदा
सकृत्—एक बार
सततम्—बराबर, सब दिन
सदा—हमेशा
सद्य —तुरन्त
सना - सब दिन
सपदि—तुरन्त, शीघ्र
समन्तात्—चारों ओर
समम्—बराबर बराबर
समया -निकट
समीपे, समीपम्—निकट
समीचीनम्—ठीक
सम्प्रति—इस समय, अभी
सम्मुखम्—सामने, मुँह दर मुँह
सम्यक्—भली प्रकार
सर्वत —चारो ओर
सर्वत्र—सब कहीं

सर्वथा—सब प्रकार से
सर्वदा—सब दिन
सह—साथ
सहसा—इकबारगी
सहितम्—साथ
साकम्—साथ
साक्षात्—आँखों के सामने
सार्धम्—साथ
साम्प्रतम्—अब, उचित
सायम्—शाम को
सुष्ठु—अच्छी तरह
स्वस्ति—(आशीर्वाद)
स्वयम्—अपने आप
हि—इसलिये
हा—कष्ट (पूर्वं॑िन)

२०३—समुच्चयबोधक शब्द

च—और शब्द का अर्थ संस्कृत में बहुधा च शब्द से बतलाया जाता है, किन्तु जहाँ 'और' हिन्दी में दो जोड़े हुए शब्दों के बीच में आता है जैसे—राम और गोविन्द, वहाँ संस्कृत में च शब्द दोनों के उपरान्त आता है, अथवा अलग अलग दोनों के उपरान्त , जैसे—रामो गोविन्दश्च अथवा रामश्च गोविन्दश्च । च को बहुधा अन्य समुच्चय बोधक शब्दों के अनन्तर भी जोड़ देते हैं, जैसे—अथच, परञ्च, किञ्च ।

अथ—अथो, अथच—वाक्य के आदि में आते हैं और बहुधा 'तब' का अर्थ बताते हैं, इसके पूर्व कुछ वाक्य आचुके हुए होते हैं अथवा प्रकरण में कुछ बीत चुका होता है ।

तु—तो, वाक्य के आदि में नहीं आता, स तु गत —वह तो गया आदि । किन्तु, परन्तु, परञ्च—लेकिन ।

वा—या के अर्थ में । च की तरह इसका भी प्रयोग प्रत्येक शब्द के

(क) अक्षर शब्द के उस भाग को कहते हैं जो एक ही बार के प्रयत्न में स्वच्छन्दता पृथक उच्चारण किया जा सके। एक स्वर के साथ जो व्यञ्जन लगे होते हैं उन्हें मिलाकर वह स्वर अक्षर कहलाता है; जैसे—

प्र, अप्, अज्ज् आदि। यदि उनके साथ कोई व्यञ्जन न भी हो तो अकेला ही वह अक्षर कहलाएगा, जैसे—अपाद शब्द में अ।

(ख) मात्रा समय के उस परिमाण को कहते हैं जो कि एक ह्रस्व स्वर के उच्चारण करने में लगता है। इसलिए ह्रस्व स्वर एक मात्रावाला होता है। दीर्घ स्वर के उच्चारण करने में ह्रस्व से दूना समय लगता है, इसलिए उसमें दो मात्राएँ होती हैं।

अक्षर दो प्रकार के होते हैं

(१) लघु (२) गुरु। "लघु" अक्षर उसे कहते हैं जिसमें स्वर ह्रस्व हो, "गुरु" अक्षर उसे कहते हैं जिसमें स्वर दीर्घ हो।

ह्रस्व स्वर

अ, इ, उ, ऋ और ऌ ह्रस्व स्वर हैं।

दीर्घ स्वर

आ, ई, ऊ, ॠ, ए, ऐ, ओ और औ दीर्घ स्वर होते हैं।

जब[1] किसी ह्रस्व स्वर के उपरान्त अनुस्वार या विसर्ग या संयुक्ताक्षर आवे तो उस ह्रस्व स्वर को छन्द शास्त्र में दीर्घ मानते हैं,

१ सानुस्वारश्च दीर्घश्च विसर्गी च गुरुर्भवेत्।
वर्णः संयोगपूर्वश्च तथा पादान्तगोऽपि वा॥

उपरान्त अथवा दोनों के उपरान्त होता है, जैसे रामो गोविन्दो वा—राम या गोविन्द अथवा रामो वा गोविन्दो वा।

अथवा—इसका भी प्रयोग वा की तरह, उसी अर्थ में होता है।

चेत् यदि—यदि, अगर।

तथापि—तब भी।

नोचेत्—नहीं तो।

यदि—तदि—यदि तो

तत्—इसलिए।

हि—क्योंकि।

यावत् तावत्—जब तक-तब तक।

यदा तदा—जब-तब।

इति—वाक्य के अन्त में समाप्तिसूचक, जैसे—अहम् गच्छामि इति सोऽवदत्। इससे हिन्दी की 'कि' का बोध होता है। 'कि' का बोध यत् से भी होता है, किन्तु यह वाक्य के आदि में आता है, जैसे—सोऽवदत् यदहं गच्छामि।

२०४–मनोविकारसूचक अव्यय

इनका वाक्य से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। मुख्य मुख्य दिए जाते हैं।

हन्त—हर्षसूचक।

आ, हुम्, हम्—क्रोधसूचक।

हा, हाहा, हन्त—शोकसूचक।

बत—दयासूचक।

जैसे—" गन्ध " में " ग " दीर्घ है क्योंकि " ग " के उपरान्त संयुक्ताक्षर " न्ध " आ जाता है, इसी प्रकार " संशय " में " सं " दीर्घ है, क्योंकि "सं" अनुस्वारसहित है, " रामः " में "मः " दीर्घ है, क्योंकि " मः " विसर्गसहित है।

यदि किसी पद्य में पाद के अन्तवाले अक्षर को गुरु होना चाहिए, लेकिन वह ह्रस्व है तो उसे उस स्थान पर गुरु मान लेते हैं। और यदि किसी पद्य में पाद के अन्त वाले अक्षर को ह्रस्व होना चाहिए, परन्तु वह गुरु है तो उस स्थान पर उसे आवश्यकतावशात् लघु मान लेते हैं। ऐसा सम्प्रदाय है।

किसी पद्य का उच्चारण करते समय जहाँ साँस लेने के लिए क्षणभर रुक जाते हैं वहाँ पद्य की ' यति ' होती है। यह यतियाँ व्यवस्थित है, जहाँ यति होती हो वहाँ शब्द का अन्त होना चाहिए, मध्य नहीं।

पद्य दो प्रकार का होता है–(१) वृत्त और (२) जाति

वृत्त

जिस पद्य की रचना अक्षरों के हिसाब से होती है उसे वृत्त कहते हैं। सुविधा के लिए तीन तीन अक्षरों के समूह को गण कहते हैं; जैसे —

" कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः " इस पद्य में (१) " कश्चित्का ", (२) " न्ताविर ", (३) " हगुरु ", (४) " णास्वाधि ", (५) " कारात्प्र ", ये पाँच गण हैं। यहाँ पर (१ में)

किम्, धिक्—धिक्कार सूचक।

अङ्ग, अयि, अये, अहोवत, भो —आदरसहित बुलाने के काम में आते हैं। अरे, रे, रेरे—अवज्ञा से बुलाने में।

२०५-प्रकीर्णक अव्यय

[1] ऊपर कह आए हैं कि जो विभक्ति लिङ्ग और वचन के अनुसार रूप परिवर्तन को प्राप्त न हो वही अव्यय है। इस गणना के अनुसार कई तद्धित प्रत्ययान्त, कई कृदन्त तथा कुछ समासान्त अव्यय शब्द हैं।

[2] तद्धितों में—तसिल् प्रत्ययान्त, त्रल् प्रत्ययान्त, दा प्रत्ययान्त, दानीम् प्रत्ययान्त, अधुना, कर्हि, यर्हि, तर्हि, सद्य से लेकर उत्तरेद्यु तक (५ । ३ । २२), थाल् प्रत्ययान्त, दिक् और कालवाचक पुर, पश्चात्, उत्तरा, उत्तरेण आदि, धमुञ् प्रत्ययान्त (एकधा आदि) शस् प्रत्ययान्त (बहुश, अल्पश आदि), च्वि प्रत्ययान्त साति प्रत्ययान्त, कृत्वसुच् प्रत्ययान्त (द्विकृत्व) तथा इसके अर्थ में आने वाले।

[3] कृदन्तों में—कृदन्तों में जो म् में अन्त होनेवाले हों, जैसे—णमुल् प्रत्ययान्त (स्मार स्मारम् आदि), तुमुन् प्रत्ययान्त तथा जो ए, ऐ, ओ औ में अन्त होनेवाले हों, जैसे जीवसे (तुमर्थ प्रत्यय असे लगा कर), पिबध्यै

१ अव्ययादाप्सुपः । २ । ४ । ८२ ।

२ तद्धितश्च सार्वविभक्तिः । १ । १ । ३८ ।

३ कृन्मेजन्तः । १ । १ । ३९ ।

"क" एक अक्षर है, "श्चि" दूसरा अक्षर है, "त्का" तीसरा अक्षर है, इस प्रकार तीन अक्षरों का एक गण (कश्चित्का) हुआ। इसी प्रकार (२में) "न्ता" एक अक्षर है "वि" दूसरा अक्षर है, "र" तीसरा अक्षर है, फिर तीन अक्षरों का एक गण (न्ताविर) हुआ।

गण आठ होते हैं —

(१) भगण (२) जगण (३) सगण (४) यगण
(५) रगण (६) तगण (७) मगण (८) नगण

आदिमध्यावसानेषु भजसा यान्ति गौरवम्।
यरता लाघवं यान्ति मनौ तु गुरुलाघवम्॥

(१) भगण उसे कहते हैं जिसमे पहला अक्षर गुरु तथा द्वितीय और तृतीय लघु हो।

(२) जगण में मध्य अक्षर गुरु होता है, शेष पहला और तीसरा लघु होते हैं।

(३) सगण में तीसरा अक्षर गुरु होता है और शेष—पहिला और दूसरा—लघु होते हैं।

(४) यगण में केवल पहला अक्षर लघु होता है शेष दो गुरु।

(५) रगण में दूसरा अक्षर लघु होता है, शेष दो गुरु।

(६) तगण मे केवल तीसरा अक्षर लघु होता है शेष दो गुरु।

(७) मगण मे तीनों अक्षर गुरु होते हैं।

(तुमर्थ शब्दै प्र०) ; तथा क्त्वा (और क्त्वार्थ ल्यप्) में अन्त होनेवाले शब्द तथा तोसुन्, कसुन् प्रत्ययों में अन्त होनेवाले शब्द।

अव्ययीभाव समास—अधिहरि, यथाशक्ति, अनुविष्णुम्।

---

१ क्त्वातोसुन्कसुनः । १ । १ । ४० ।
२ अव्ययीभावश्च । १ । १ । ४१ ।

(८) नगण में तीनों अक्षर लघु होते हैं।

लघु का चिह्न S अथवा ⌣ है।

गुरु का चिह्न । अथवा — है।

आठों गण चिह्नों द्वारा नीचे दिखाए जाते हैं —

(१) भगण	ISS या —⌣⌣
(२) जगण	S S या ⌣—⌣
(३) सगण	SSI या ⌣⌣—
(४) यगण	SII या ⌣——
(५) रगण	ISI या —⌣—
(६) तगण	IIS या ——⌣
(७) मगण	III या ———
(८) नगण	SSS या ⌣⌣⌣

(७) जाति

जिस पद्य की व्यवस्था मात्राओं के हिसाब से की जाती है उसे जाति कहते हैं। सुविधा के लिए कभी २ मात्राओं का भी गणों में विभाग करते हैं। प्रत्येक गण चार मात्राओं का होता है। जैसे —

"येनामन्दमरन्दे दलदरविन्दे दिनान्यनायिषत" इस पद्य में "येना", "मन्दम", "रन्दे" गण हैं, क्योंकि "ये" में दो मात्राएँ हैं और "ना" में दो मात्राएँ हैं, इस प्रकार चार मात्राएँ हुई, इस लिए इन चार मात्राओं का एक गण (येना) हो गया।

१—परिशेष

सस्कृत भाषा के वैयाकरण

किसी भाषा का व्याकरण तब बनता है जब या तो भिन्न भाषाओं के बोलने वालो के निरन्तर मेल जोल से अथवा उसी भाषा की कई प्रान्तीय बोलियाँ होजाने से भाषा में कुछ विकार उत्पन्न हो जाता है और भाषा के ऐक्य के नष्ट होने की आशङ्का होती है।

सस्कृत भाषा के आदि ग्रन्थ वेद हैं। वैदिक भाषा मे जब कुछ हेर फेर समय और स्थिति के अनुसार उच्चारण के परिवर्तन के कारण आरम्भ हुआ तब उसको रोकने के लिए तथा वैदिक भाषा को सुव्यवस्थित रखने के लिए वेदो के प्रातिशाख्य बने। बोल चाल की सस्कृत भाषा के नियन्त्रण करने की उस समय कोई आवश्यकता नहीं हुई। पश्चात् सभवत ईसवी सन् के कोई सात आठ सौ वर्ष पूर्व 'भाषा सस्कृत' के भी व्याकरण बनने लगे। पाणिनि के पूर्व बहुत से व्याकरणकार हो गए हैं, यद्यपि उनके ग्रन्थ आज कल उपलब्ध नहीं हैं तथापि उनके अस्तित्व का पता पाणिनि तथा अन्य वैयाकरणो के ग्रन्थो मे उल्लेख होने से चलता है।

सम्प्रदाय के अनुसार भाषा के प्रथम वैयाकरण इन्द्र देवता थे। तैत्तिरीय सहिता में लिखा है —

वाग्वै पराच्यव्याकृताऽवदत्। ते देवा इन्द्रमब्रुवन्निमां नो वाचं व्याकुर्विति। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्। ७।४।७।

यहाँ पर इस बात को ध्यान से देखना चाहिए कि अगर यह पद्य वृत्त होता तो "येना" एक गण न माना जाता, प्रत्युत वहाँ "येनाम" एक गण होता।

मात्रागण सब मिल कर पाँच होते हैं :—

(१) मगण	।।	या — —
(२) सगण	SS।	या ⌣ ⌣ —
(३) जगण	S।S	या ⌣ — ⌣
(४) भगण	।SS	या — ⌣ ⌣
(५) नगण	SSSS	या ⌣ ⌣ ⌣ ⌣

वृत्त तीन प्रकार के होते है :—

(१) समवृत्त—वह होता है जिसमें के चारो चरण (अथवा पाद) एक से होते हैं।

(२) अर्धसमवृत्त—वह होता है जिसमें के प्रथम तथा तृतीय चरण एक तरह के और द्वितीय तथा चतुर्थ दूसरी तरह के होते हैं।

(३) विषम—वह होता है जिसमें के चारो चरण एक दूसरे से भिन्न होते हैं।

संस्कृत काव्य में बहुधा समवृत्त छन्दों का अधिक प्रयोग मिलता है।

इससे प्रतीत होता है कि 'इन्द्र' नाम के कोई देवता अथवा ऋषि थे जिन्होने पहले पहल भाषा का विभाग करके उसका रूप दर्शाया।

व्याकरण शास्त्र का अध्ययन, भारतवर्ष मे विशेषरूप से किया गया है। सैकड़ो वैयाकरण होगए हैं और बीसियों शाखाएं हैं। सब से प्रचलित शाखा पाणिनि मुनि की है।

पाणिनि

पाणिनि मुनि किस प्रान्त मे किस समय हुए इस का निश्चित ज्ञान हम लोगो को प्राप्त नहीं है। उनके ग्रन्थ अष्टाध्यायी से उनके विषय में कुछ पता नहीं चलता। जनश्रुति से उनके विषय मे दो चार बातें मालूम होती हैं।

कहते हैं कि पाणिनि का निवासस्थान शालातुर (पश्चिमोत्तर प्रदेश मे अटक के पास—अब एक उजड़ा हुआ ग्राम) था, इनकी माता का नाम दाक्षी और पिता का शकट था। यह बचपन में उपाध्याय वर्ष कें पास पढ़ने गए, किन्तु थोड़े ही दिनो के अनन्तर मन्द बुद्धि होने के कारण निकाल दिए गए। इससे इनको बड़ा मानसिक कष्ट हुआ और यह जंगल मे जाकर कठोर तप करने लगे। शिवजी महाराज इनकी तपस्या मे प्रसन्न हुए। उन्होने डमरू बजाकर इनको चौदह सूत्रो का ज्ञान दिया। इन्हीं सूत्रों पर पाणिनि ने अष्टाध्यायी बनाई। इनकी मृत्यु सिंह के आक्रमण से हुई।

अष्टाध्यायी मे आठ अध्याय हैं। हर एक अध्याय मे चार पाद हैं और हर एक पाद मे सूत्र हैं। इसी लिए पाणिनि के व्याकरण मे

समवृत्त

समवृत्त कई प्रकार के होते हैं। किसी के प्रत्येक चरण मे १ अक्षर (Syllable) होता है, किसी के २, किसी के ३ और किसी के ४। इसी प्रकार २६ अक्षर तक चला जाता है। यहाँ पर केवल थोड़े से ऐसे समवृत्त दिखाए जाँयगे जो बहुधा साहित्यिक प्रयोग मे आते हैं

८ अक्षर वाले समवृत्त

आठ अक्षर वाले समवृत्तो मे से एक समवृत्त "अनुष्टुप्" है, इसे "श्लोक" भी कहते हैं। इसका लक्षण यह है :—

श्लोके षष्ठ गुरु ज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतु पादयोर्ह्रस्व सप्तम दीर्घमन्ययो ॥

अर्थात् "श्लोक" के सभी चरणो मे छठवाँ अक्षर (Syllable) गुरु तथा पाँचवाँ लघु होता है। सातवाँ अक्षर दूसरे तथा चौथे चरण मे ह्रस्व होता है, और पहिले और तीसरे मे दीर्घ होता है। लक्षण वाला श्लोक ही उदाहरण है।

११ अक्षरवाले समवृत्त

(१) इन्द्रवज्रा

स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ गः

इन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद मे दो तगण, एक जगण फिर दो गुरु अक्षर होते हैं।

तगण तगण जगण ग ग
— — ⏑ — — ⏑ ⏑ — ⏑ — —
जैसे—स्या दि न्द्र । व ज्रा य । दि तौ ज । गौ ग

से अवतरण देते समय तीन संख्याएँ देते हैं, जैसे—'स निर्धारणे' ।२।।२।१०। इस सूत्र का पता यह है कि यह दूसरे अध्याय के दूसरे पाद का दसवाँ सूत्र है। प्रथम संख्या अध्याय का, द्वितीय पाद का और तृतीय सूत्र का नम्बर देती है। कुल किताब में लगभग चार हजार सूत्र हैं। यदि केवल मूलमात्र अष्टाध्यायी छापी जाए तो छोटे साइज के २५ पृष्ठों में आसकती है। संस्कृत ऐसी जटिल और विस्तृत भाषा को इतने में ही नियन्त्रित कर देना महर्षि पाणिनि का ही काम था। संक्षेप के लिए अष्टाध्यायी भारतीय साहित्य में ही नहीं, संसार के साहित्य में अद्वितीय और अनुपम है। कहते हैं कि पाणिनि संक्षेप करने का इतना चाव रखते थे कि यदि वे एक मात्रा भी किसी सूत्र से घटा पावें तो उनको पुत्र की उत्पत्ति होने का सा आनन्द आता था। अष्टाध्यायी ने और सब व्याकरणों को परास्त कर दिया। इसके विषय में भी एक दन्तकथा है। कहते हैं कि 'विश्वामित्र' ने सब वैयाकरणों से कहा कि मेरा नाम सिद्ध करो, सब ने कहा कि सिद्धि स्पष्ट ही है-विश्वस्य अमित्र -विश्व का वैरी। जब पाणिनि से पूछा गया कि तुम बताओ तो यह बोले – विश्वस्य मित्रम्=विश्वामित्र (विश्व का मित्र) और कहा कि मित्रे चर्षौ। ६।३।१३०। सूत्र से श्व का अकार दीर्घ हो जायगा। इस व्युत्पत्ति से विश्वामित्र जी बहुत प्रसन्न हुए और कहा कि तुम्हारा व्याकरण ही संसार में विजय प्राप्त करेगा।

अष्टाध्यायी के अतिरिक्त पाणिनि ने और क्या क्या ग्रन्थ बनाए इसका कुछ निश्चय नहीं है। कहते हैं कि यह कवि भी थे।

(२) उपेन्द्रवज्रा

उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ

उपेन्द्रवज्रा के प्रत्येक पाद में जगण, तगण, जगण तथा दो होते हैं।

⏑ — ⏑	— — ⏑	⏑ — ⏑	— —
उ पे न्द्र	व ज्रा ज	त जा स्त	तौ गौ

(३) उपजाति

अनन्तरोदीरितलक्ष्मभाजौ

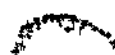
पादौयदीयावुपजातयस्ताः

उपजाति उस वृत्त को कहते हैं जो इन्द्रवज्रा तथा उपेन्द्रवज्रा के मिश्रण से बनता है। उदाहरणार्थ लक्षण ही को ले लीजिए —

जगण	तगण	जगण	ग	ग
⏑ — ⏑	— — ⏑	⏑ — ⏑	—	—
अ न न्त	रो दी रि	त ल क्ष्म	भा	जौ
तगण	तगण	जगण	ग	ग
— — ⏑	— — ⏑	⏑ — ⏑	—	—
पा दौ य	दी या वु	प जा त	य	स्ता

इसमें प्रथम चरण उपेन्द्रवज्रा का है और द्वितीय इन्द्रवज्रा का।

कभी कभी प्रथम तथा तृतीय चरण इन्द्रवज्रा के रहते हैं, द्वितीय तथा चतुर्थ उपेन्द्रवज्रा के।



सुभाषितावली मे इनके नाम के दो एक पद्य दिए भी हैं, किन्तु सभवत यह कपोलकल्पित हैं।

पाणिनि के समय के विषय मे बड़ा मतभेद है। कोई इनको ईसवी सन् के पूर्व आठवीं शताब्दी में रखते हैं तो कोई चतुर्थ में। प्राय ईसा के पूर्व षष्ठ शताब्दी मे इनका होना भारतीय विद्वान् बहुमत से स्वीकार करते हैं।

कात्यायन

कात्यायन ऋषि कम से कम पाणिनि से कोई सौ वर्ष पीछे हुए होगे। इन्होने अष्टाध्यायी के सूत्रों की आलोचना की है। चार सहस्र सूत्रो मे से २५०० को इन्हो ने ठीक मान लिया है और शेष १५०० पर टिप्पणी करके सूत्रो का कार्यक्षेत्र परिमिति अथवा विस्तृत किया है। इनकी इस आलोचना का नाम वार्तिक है। सिद्धान्त कौमुदी मे प्रत्येक सूत्र के अनन्तर वार्तिक दे दिए गए हैं। वार्तिक की पहचान 'वाच्यम्' आदि कृत्यप्रत्ययान्त शब्दों से होती है।

कात्यायन के समय तक भाषा मे इतना हेर फेर हो गया था कि पाणिनि के कुछ सूत्र ठीक नहीं लगते थे, इसीलिए वार्तिक की उपयोगिता है।

पतञ्जलि

यह ईसा से पूर्व दूसरी शताब्दी मे हुए, इनका समय निश्चित है। इन्होने अष्टाध्यायी पर 'महाभाष्य' बनाया। इसमें इन्होंने कात्यायन के मत की समीक्षा करके पाणिनि के मत का समाधान

१२ अक्षरवाले समवृत्त

(१) द्रुतविलम्बित

द्रुतविलम्बितमाह नभौ भरौ

द्रुतविलम्बित के प्रत्येक पाद में, नगण, भगण, भगण और रगण होते हैं।

⏑ ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ ⏑ — ⏑ —

जैसे—द्रु त वि ल म्बि त मा ह न भौ भ रौ

(२) भुजङ्गप्रयात

भुजङ्गप्रयात चतुर्भिर्यकारैः

भुजङ्गप्रयात के प्रत्येक पाद में चार यगण होते हैं।

यगण	यगण	यगण	यगण
⏑ — —	⏑ — —	⏑ — —	⏑ — —
जैसे—भु ज ङ्ग	प्र या त	च तु र्भि	र्य का रैः

१४ अक्षरवाले समवृत्त

वसन्ततिलका

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौगः

वसन्ततिलका के प्रत्येक पाद में तगण, भगण, जगण, जगण और दो गुरु होते हैं।

तगण	भगण	जगण	जगण	ग	ग
— — ⏑	— ⏑ ⏑	⏑ — ⏑	⏑ — ⏑	—	—
जैसे—उ क्ता व	स न्त ति	ल का त	भ जा ज	गौ	गः

किया है। शैली और भाषा-लालित्य के हिसाब से पतञ्जलि का महाभाष्य अद्वितीय ग्रन्थ है। संस्कृत व्याकरण का सम्पूर्ण ज्ञान महाभाष्य के अध्ययन के बिना असम्भव है।

पाणिनि—कात्यायन—पतञ्जलि इन तीन को वैयाकरण 'मुनित्रय' कहते हैं। इनके उपरान्त कितने ही प्रख्यात वैयाकरण टीकाकार हुए। चन्द्रगोमी ने पाणिनि के आधार पर व्याकरण बनाई। जयादित्य और वामन ने काशिका नाम की अष्टाध्यायी की टीका लिखी। जिनेन्द्रबुद्धि ने 'न्यास' नाम की काशिका की टीका लिखी और हरदत्त ने पदमञ्जरी लिखी। इनके अतिरिक्त भर्तृहरि, कैयट आदि और भी कितने एक प्रसिद्ध वैयाकरण हो गए हैं।

ईसवी चौदहवीं शताब्दी से ऐसे ग्रन्थ बनने लगे जिन्होंने पाणिनि की अष्टाध्यायी का क्रम नष्ट कर दिया। व्याकरण के विषयों के अनुसार विभाग किए गए—संज्ञा, सन्धि, कारक, समास, स्त्रीप्रत्यय इत्यादि के हिसाब से सूत्र इधर उधर लौट पौट कर रक्खे गए। इसका परिणाम यह हुआ कि अष्टाध्यायी के सूत्रों से जो सरलता से और संक्षेप में काम निकलता था वह अब कष्ट-साध्य हो गया। अब व्याकरण के ज्ञान के लिये कम से कम बारह वर्ष तक अध्ययन करना आवश्यक होगया। अष्टाध्यायी के स्वतन्त्र अध्ययन का लोप होगया और इन अन्धकार फैलाने वाली कौमुदियों की शरण लेनी पड़ी।

१५ अक्षरवाले समवृत्त

मालिनी

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलोकैः

मालिनी के प्रत्येक पाद में नगण, नगण, मगण, यगण, यगण होते हैं आठवें तथा सातवें अक्षर के बाद यति होती है।

नगण	नगण	मगण
⏑ ⏑ ⏑	⏑ ⏑ ⏑	— — —
जैसे–न न म	य य यु	ते य, मा

यगण	यगण
⏑ — —	⏑ — —
लि नी भो	गि लो कै

१७ अक्षरवाले समवृत्त

(१) मन्दाक्रान्ता

मन्दाक्रान्ताम्बुधिरसनगैर्मो भनौ तौ गयुग्मम्

मन्दाक्रान्ता के प्रत्येक पाद में मगण, भगण, नगण, तगण, तगण और दो गुरु अक्षर होते हैं।

मगण	भगण	नगण
— — —	— ⏑ ⏑	⏑ ⏑ ⏑

तगण	तगण	ग ग
— —	— — ⏑	— —

भट्टोजिदीक्षित

इस प्रकार की पुस्तको मे सब से प्रसिद्ध भट्टोजिदीक्षित की सिद्धान्तकौमुदी है।

भट्टोजि के पिता का नाम लक्ष्मीधर था और गुरु का शेषकृष्ण। भट्टोजि के एक भाई थे जिनका नाम रङ्गोजि था और एक पुत्र था जिसका नाम भानु था। सिद्धान्तकौमुदी के अतिरिक्त कई ग्रन्थ भट्टोजि ने लिखे थे। इनमें से 'शब्दकौस्तुभ' नाम की एक टीका अष्टाध्याय पर है। इनका समय सत्रहवीं शताब्दी (ईसवी) का प्रथमार्ध है।

सिद्धान्तकौमुदी के दो सक्षिप्त सस्करण वरदराज ने बालकों के लिए किए हैं—एक मध्यसिद्धान्तकौमुदी और दूसरी लघु-सिद्धान्तकौमुदी। इनमे से मध्यसिद्धान्तकौमुदी का अधिक प्रचार नहीं है, हां लघुसिद्धान्तकौमुदी खूब पढ़ी जाती है।

२—परिशेष

छन्द

सस्कृत काव्य गद्य और पद्य में होता है। गद्य में पदो का विभाग पादो में नहीं होता।

प्रत्येक पद्य में चार " पाद " होते हैं। पादो की व्यवस्था या तो अक्षरो (Syllable) से या मात्राओ (Syllabic instants) से होती है।

चार अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर छ अक्षर के उपरान्त तदनन्तर फिर सात अक्षर के उपरान्त यति होती है, जैसे—

— — — — ⌣ ⌣ ⌣ ⌣ ⌣ — — ⌣

क थ्रि त्का न्ता, वि र ह गु रु णा, स्वा धि

— — ⌣ — —

का र प्र म त्त ।

यहाँ पर पहिली यति "न्ता" के उपरान्त, दूसरी "णा" के उपरान्त, तीसरी अन्त मे "त्त" के उपरान्त है । इसी प्रकार चारों चरणों मे यति होगी।

(२) शिखरिणी

रसैःरुद्रैश्छिन्ना यमनसभला गः शिखरिणी

शिखरिणी के प्रत्येक पाद में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण, तदनन्तर एक लघु और एक गुरु होता है । छ अक्षर के उपरान्त, तदनन्तर फिर ग्यारह अक्षर के उपरान्त यति होती है।

यगण	मगण	नगण
⌣ — —	— — —	⌣ ⌣ ⌣
स मृ द्ध	सौ भा ग्य,	स क ल
सगण	भगण	ल ग
⌣ ⌣ —	— ⌣ ⌣	⌣ —
व सु धा	या कि म	पि तन्,

यहाँ पर पहिली यति छठे अक्षर "ग्य" के उपरान्त, दूसरी यति ग्यारहवें अक्षर "तन्" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यो है —

समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया किमपि तन्,
महैश्वर्य लीलाजनितजगत खण्डपरशो ।
श्रुतीना सर्वस्व सुकृतमथ मूर्त सुमनसाम्,
सुधासौन्दर्यं ते सलिलमशिव न शमयतु ॥

१९ अक्षरवाले समवृत्त

शार्दूलविक्रीडित

सूर्याश्वैर्यदि मः सजौ सततगाः शार्दूलविक्रीडितम् ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द के प्रत्येक पाद मे मगण, सगण, जगण, सगण, तगण, तगण फिर एक गुरु अक्षर होता है। बारह अक्षर के उपरान्त पहिली यति, तदनन्तर फिर सातवें अक्षर के उपरान्त दूसरी यति होती है। जैसे —

मगण	सगण	जगण	सगण
— — —	⏑ ⏑ —	⏑ — ⏑	⏑ ⏑ —
पा तु न	प्र थ म	व्य व स्य	ति ज ल,

तगण	तगण	ग
— — ⏑	— — ⏑	—
यु ष्मा स्व	पी ते षु	या,

यहाँ पर पहिली यति बारहवें अक्षर "ल" के उपरान्त तथा

दूसरी यति फिर सातवें अक्षर "या" के उपरान्त है। पूरा श्लोक यों है।

पातु न प्रथम व्यवस्यति जल युष्मास्वपीतेषु या,
नादत्ते प्रियमराडनाऽ पि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये व कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सव,
मेय याति शकुन्तला पतिगृह सर्वैरनुज्ञायताम्॥

२१ अक्षरवाले समवृत्त

स्रग्धरा

म्रभ्नै र्यानां त्रयेण, त्रिमुनियतियुता, स्रग्धरा कीर्तितेयम्

स्रग्धरा के प्रत्येक पाद मे मगण, रगण, भगण, नगण, यगण, यगण, यगण, होते हैं। इसमे सात सात अक्षरो पर यति होती है।

भगण	रगण	भगण	नगण
— — —	— ◡ —	— ◡◡	◡◡◡

यगण	यगण	यगण
◡— —	◡— —	◡ — —

	— — —	—◡—	— ◡ ◡
जैसे—	व्या को पे	न्द्री व रा	भा, क न
	◡ ◡ ◡	◡— —	◡— —	◡— —
	क क प	ल स, त्वी	त था सा	सु द्दा सा,

रध, भनज, लगा स्यु, रथौ

जसा, जगौ च, भवती, यमुद्र, ता

जाति

जैसा कि पहिले कह आए हैं, "जाति" छन्द उसे कहते हैं जिसमें के गण मात्रा (Syllabic instants) के हिसाब से व्यवस्थित किए जाते हैं। "जाति" का सब से साधारण भेद "आर्या" है, जो कि नव प्रकार की होती है —

पथ्या विपुला चपला मुखचपला जघनचपला च।
गीत्युपगीत्युद्गीतय आर्यागीतिश्च नवधार्या॥

आर्या

यस्या पादे प्रथमे, द्वादशमात्रास्तथा तृतीये ऽपि।
अष्टादश द्वितीये, चतुर्थके पञ्चदश साऽर्या॥

अर्थात् आर्या के प्रथम तथा तृतीय चरण म १२ मात्राएँ होती हैं, द्वितीय मे १८ और चतुर्थ में १५ मात्राएँ होती हैं। उदाहरणार्थ लक्षण का ही पद्य है।

नोट—छन्दों के अधिक ज्ञान के लिए श्रुतबोध, वृत्तरत्नाकर तथा पिङ्गलमुनि रचित छन्द सूत्र शास्त्र पढ़ना चाहिए।

३—परिशेष

रोमन अक्षरों मे संस्कृत लिखने की विधि

संस्कृत भाषा को यूरोपीय विद्वान् बड़े चाव से पढ़ते हैं। केवल मनोरंजन के लिए ही नहीं, बहुत सी बातों मे उन्हो ने संस्कृत ग्रन्थों से हम भारतीयो की अपेक्षा अधिक लाभ भी उठाया है। इनके आधार पर भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर उपादेय ग्रन्थ भी लिखे हैं, जिन से हम लोगों का भी कुछ उपकार हो सकता है। बहुधा संस्कृत शब्दो को वे रोमन अक्षरो मे लिखते हैं। हम लोगों को भी उस विधि को जान रखना आवश्यक है। पुरातत्व का अन्वेषण करते समय इस ज्ञान का पग पग पर काम पड़ता है।

a	ā	i	ī	u	ū	ṛ	ṝ	ḷ	e	o	ai	au
अ	आ	इ	ई	उ	ऊ	ऋ	ॠ	ऌ	ए	ओ	ऐ	औ

चन्द्रबिन्दु ˘ (स्वर के ऊपर) अथवा ~

अनुस्वार ṁ अथवा ṃ

विसर्ग ḥ

क्	ख्	ग्	घ्	ङ्
k	kh	g	gh	ṅ
च्	छ्	ज्	झ्	ञ्
c	ch	j	jh	ñ
ट्	ठ्	ड्	ढ्	ण्
ṭ	ṭh	ḍ	ḍh	ṇ

त्	थ्	द्	ध्	न्
t	th	d	dh	n
प्	फ्	ब्	भ्	म्
p	ph	b	bh	m
	य्	र्	ल्	व्
	y	r	l	v
	श्	ष्	स्	ह्
	s	s	s	h

कभी २ ऋ ॠ ऌ को क्रम से ri rī lri च्, छ् को ch, chh, श्, ष् को s, sh भी लिखते हैं।

इस प्रकार इन अक्षरों को जोड़ कर शब्द लिखे जाते हैं, उदाहरणार्थ।

रश्मि—	rasmi
प्रद्योत—	pradyota
क्षत्रिय—	ksatriya
उदीर्णधन्वा—	udīrnadhanvā
क्लृप्त—	klpta
संस्कृति —	samskrtih

* समाप्त *

Printed by Ha izan Ali Shah at the National Press, A